आधुनिक काव्य प्रवृत्तिया . एक पुनर्मूल्याकन

डा० गणेश खरे

आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियां : एक पुनर्मूल्यांकन

डा० गणेश खरे
शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय,
राजनांदगांव, म० प्र०

पुस्तक संस्थान
१०१/५० ए नेहरु नगर, कानपुर १२

Adhunik Kavya Pravrattiyan ek Punarmulyankan
by Dr Ganesh Khare
Price Rs Twenty five only

पुस्तक	आधुनिक काव्य प्रवृत्तियां एक पुनर्मूल्यांकन
लेखक	डा० गणेश खरे
प्रकाशक	पुस्तक संस्थान १०९/५० ए, नेहरु नगर, कानपुर–२०८०१२
मुद्रक	विवेक प्रिण्टर्स ब्रह्मनगर कानपुर–२०८०१२
आवरण मुद्रक	भारत सिल्क स्क्रीन ब्रह्मनगर कानपुर–२०८०१२
पुस्तक बंध	अब्दुल गफूर एण्ड संस, कलनगज कानपुर
संस्करण	प्रथम, १९७६
मूल्य	पच्चीस रुपये

भूमिका

द्विवेदी-युग के बाद हिन्दी कविता विचार और शिल्प, दोनों ही क्षेत्रों में विविध-आयामी और विकासशील रही है। एक ओर इसने पुरातनता से संघर्ष किया है तो दूसरी ओर अपने को आधुनिकता और नयी संस्कृति से जोड़ा है। स्वतन्त्र परिवेश और आज के बदलते हुए मूल्य उसमें बड़ी सार्थकता के साथ रूपायित हुए हैं। भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति की अन्तःसंघाति ने भी आधुनिक कविता को अनुप्रेरित किया है, जिसमें नयी दृष्टि और विचारणा का मार्ग प्रशस्त हुआ है तथा शिल्प को भी नये आयाम मिले हैं। इस विविधता के कारण ही आधुनिक कविता को विभिन्न समीक्षा-दृष्टियों से परखा गया है और उसके उदात्त और अनुदात्त पक्षों को रेखांकित किया गया है। यद्यपि इधर आधुनिक काव्य में सम्बन्धित समीक्षा-कार्य प्रचुर मात्रा में हुआ है पर वह अधिकांश स्व दृष्टि मुखी है वस्तु मुखी नहीं। समीक्षकों ने अपनी दृष्टि को प्रमुख मानकर एक ही कृति पर इतने अनेक विरोधी मत दिये हैं कि जिनमें उच्चस्तरीय छात्रों और अध्येताओं के सामने, उस विशेष कृति के सम्बन्ध में एक धुंध सी छा जाती है। यह भ्रान्ति प्रमुख रूप से मनोवैज्ञानिक प्रगतिवादी अतियथार्थवादी और अस्तित्ववादी समीक्षा-दृष्टियों से उत्पन्न हुई है। लेखक और युग-परिवेश की दृष्टि से किसी कृति का स्वस्थ मूल्यांकन बहुत कम समीक्षकों द्वारा किया गया है। ठीक यही स्थिति काव्य-प्रवृत्तियों के मूल्यांकन और विश्लेषण में भी रही है। किसी भी काव्य-प्रवृत्ति का मूल्यांकन उसकी अपनी ही दृष्टि से होना चाहिए, ऊपर से आरोपित समीक्षा-मान से नहीं।

डा० गणेश खरे की प्रस्तुत कृति को मैंने आद्यन्त पढ़ा है और इस पर अनेक तर्क-वितर्क एवं चर्चाएँ भी हुई हैं। उन्होंने बिना किसी रूढ़ दृष्टि से आबद्ध हुए, स्वतन्त्र रूप से आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन और विश्लेषण किया है इसीलिए वे इन प्रवृत्तियों के स्वरूप-अंकन में निर्विवाद रूप से सफल हुए हैं। इस पुनर्मूल्यांकन में उनकी दृष्टि सिद्धान्त और व्यवहार, दोनों पर रही है अतः उनके निष्कर्ष प्रामाणिक और वास्तविकता से युक्त हैं। उन्होंने आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों के विकास-स्रोतों को बड़ी गहराई से पकड़ा है और उनको पूरे अधिकार और सूझ बूझ के साथ सहज और स्पष्ट रूप में प्रतिष्ठापित किया है। कहना न होगा कि इस कृति में आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों के वैशिष्ट्य और शिल्पगत आयामों का, उनकी व्यापकता के बीच में पूर्ण सामञ्जस्य के साथ मूल्यांकित किया गया है। यह कृति सामयिक

काव्य के स्वरूप और उसकी स्थिति का परिज्ञान कराने में निश्चित ही समर्थ है।

इस कृति के परिशिष्ट में दिया गया पाश्चात्य काव्य-चिंतन वस्तुतः इस कृति का पूरक है क्योंकि इस अंश में विवेचित उपपत्तियों ने हमारे आधुनिक काव्य और समीक्षा-मानों को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। कुछ हिन्दी-कवि एवं समीक्षक तो इनमें आकंठ डूबे दिखाई देते हैं क्योंकि उन्होंने इन प्रवृत्तियों को फैशन के रूप में बलात् ग्रहण कर लिया है।

डॉ० गणेश खरे आधुनिक काव्य के गहन अध्येता हैं। वे लगभग अठारह वर्षों से इसी काल के अध्ययन, अनुसंधान और चिंतन में रत हैं। इस दिशा में उनकी इससे पूर्व भी कई कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं जिन्होंने अनेक मौलिक निष्कर्ष साहित्य जगत् को दिये हैं। आशा है उनकी प्रस्तुत कृति का भी साहित्य-जगत में पूर्ववत् स्वागत होगा।

१५-१-१९७६

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र'
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
सी० एम० दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बिलासपुर (म० प्र०)

दो शब्द

आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों पर हिन्दी साहित्य में अनेक स्वतन्त्र और शोधपरक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। समीक्षात्मक स्फुट निबन्धों के रूप में तो इन प्रवृत्तियों पर विपुल सामग्री प्राप्त है। काव्यात्मक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, कलात्मक या सौन्दर्यशास्त्रीय, प्रगतिशील, मनोवैज्ञानिक, यथार्थवादी, अतियथार्थवादी, अस्तित्ववादी आदि दृष्टि-कोणों से इन काव्य प्रवृत्तियों के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन भी किया जा चुका है। तुलनात्मक समीक्षा के माध्यम से भी इन काव्य प्रवृत्तियों के वैशिष्ट्य, सीमाओं और उपलब्धियों का आकलन किया जा चुका है। इन स्थितियों में आज किसी नये दृष्टि कोण से इन काव्य प्रवृत्तियों के अध्ययन–अनुसंधान के स्थान पर इन विभिन्न दृष्टियों के मध्य सामंजस्य विधान की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। प्रस्तुत कृति पुनर्मूल्यांकन की इसी दिशा में किया गया प्रयास है।

इसमें इस शताब्दी की प्रमुख काव्य–प्रवृत्तियों— छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता आदि पर काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से पुनः विचार किया गया है और तत्सम्बन्धी वास्तविकताओं का निस्संग दृष्टि से आकलन किया गया है। इसके परिशिष्ट में आधुनिक हिन्दी काव्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्प्रभावित करने वाली पाश्चात्य काव्य प्रवृत्तियों का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। मेरा विश्वास है कि इस कृति से हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं का पथ बहुत कुछ प्रशस्त हो सकेगा।

अन्त में मैं अपने मित्र और बन्धु डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र' के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा हूँ जिन्होंने इस कृति की भूमिका लिखकर मुझ पर अपने अशेष प्रेम भाव का प्रदर्शन किया है। मूल रूप में यह कृति आज से ७–८ वर्ष पहले डा० चन्द्र के साथ ही अध्यापन कार्य करते हुए बिलासपुर में लिखी गई थी अतः इसकी रचना क्रिया का जितना अधिक परिज्ञान उनको है, उतना अन्य किसी को नहीं। इस पुस्तक के साथ उनके सान्निध्य की अनेक स्मृतियाँ भी जुड़ी हुई हैं अतः इसके भूमिका-लेखन पर उनका पूरा पूरा अधिकार भी रहा है।

१–१–७६

गणेश खरे

काव्य के स्वरूप और उसकी स्थिति का परिज्ञान कराने में निश्चित ही समर्थ है।

इस कृति के परिशिष्ट में दिया गया पाश्चात्य काव्य-चिंतन वस्तुत इस कृति का पूरक है क्योंकि इस अंश में विवेचित उपपत्तियों ने हमारे आधुनिक काव्य और समीक्षा-मानों को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। कुछ हिन्दी-कवि एवं समीक्षक तो इनमें आकंठ डूबे दिखाई देते हैं क्योंकि उन्होंने इन प्रवृत्तियों को फैशन के रूप में बलात ग्रहण कर लिया है।

डॉ० गणेश खरे आधुनिक काव्य के गहन अध्येता हैं। वे लगभग अठारह वर्षों से इसी काल के अध्ययन अनुसंधान और चिंतन में रत हैं। इस दिशा में उनकी इससे पूर्व भी कई कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं, जिन्होंने अनेक मौलिक निष्कर्ष साहित्य जगत को दिये हैं। आशा है उनकी प्रस्तुत कृति का भी साहित्य-जगत में पूर्ववत स्वागत होगा।

१५-१-१९७६

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र'
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
सी० एम० दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बिलासपुर (म० प्र०)

दो शब्द

आधुनिक काव्य प्रवत्तियों पर हिन्दी साहित्य में अनेक स्वतन्त्र और शोधपरक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। समीक्षात्मक स्फुट निबन्धों के रूप में तो इन प्रवत्तियों पर विपुल सामग्री प्राप्त है। काव्यात्मक, दार्शनिक, सांस्कृतिक कलात्मक या सौन्दर्यशास्त्रीय, प्रगतिशील मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी, अतियथार्थवादी अस्तित्ववादी आदि दृष्टिकोणों से इन काव्य प्रवत्तियों के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन भी किया जा चुका है। तुलनात्मक समीक्षा के माध्यम से भी इन काव्य प्रवत्तियों के वैशिष्ट्य सीमाओं और उपलब्धियों का आकलन किया जा चुका है। इन स्थितियों में आज किसी नये दृष्टिकोण से इन काव्य प्रवत्तियों के अध्ययन–अनुसंधान के स्थान पर इन विभिन्न दृष्टियों के मध्य सामंजस्य विधान की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। प्रस्तुत कृति पुनर्मूल्यांकन की इसी दिशा में किया गया प्रयास है।

इसमें इस शताब्दी की प्रमुख काव्य–प्रवत्तियों— छायावाद रहस्यवाद हालावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता आदि पर काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से पुनः विचार किया गया है और तत्सम्बन्धी वास्तविकताओं का निस्संग दृष्टि से आलकन किया गया है। इसके परिशिष्ट में आधुनिक हिन्दी काव्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्प्रभावित करने वाली पाश्चात्य काव्य प्रवत्तियों का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। मेरा विश्वास है कि इस कृति से हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं का पथ बहुत कुछ प्रशस्त हो सकेगा।

अन्त में, मैं अपने मित्र और बन्धु डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल चन्द्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा हूँ जिन्होंने इस कृति की भूमिका लिखकर मुझ पर अपने अशेष प्रेम भाव का प्रदर्शन किया है। मूल रूप में यह कृति आज से ७–८ वर्ष पहले डा० चन्द्र के साथ ही अध्यापन कार्य करते हुए बिलासपुर में लिखी गई थी अतः इसकी रचना-प्रक्रिया का जितना अधिक परिज्ञान उनको है उतना अन्य किसी को नहीं। इस पुस्तक के साथ उनके सान्निध्य की अनेक स्मृतियाँ भी जुड़ी हुई हैं अतः इसके भूमिका-लेखन पर उनका पूरा पूरा अधिकार भी रहा है।

१–१–७६

गणेश खरे

विषय सूची

—०—

१ | छायावाद

छायावाद के स्वरूप–विश्लेषण, उदभव और विकास स सम्बन्धित शोध काय और समीक्षायें हिन्दी साहित्य म अब तक पर्याप्त सख्या मे सामने आ चुकी हैं और अब तो इस काव्य प्रवृत्ति के पुनमूल्यांकन का काय भी प्रारम्भ हो चुका है। श्री सुमित्रानन्दन पत और डा० रामदरश मिश्र ने अपनी पुनमूल्यांकन सम्बन्धी कृतियो म जहां छायावादी काव्य को नये दृष्टिकोण स देखने परखने की चेष्टा की है वहा उन समस्त असगतियो को भी सामने ला दिया है जो इस काव्यान्दोलन के स्वरूप विश्लेषण एव सश्लेषण के समय विभिन्न समीक्षको ने प्रस्तुत की थी। यहाँ हम छाया वाद क स्वरूप निर्धारण तथा उसकी मूल प्रवृत्तिया के परिज्ञानाथ उसके मूल्यांकन पुनमूल्यांकन से सम्बन्धित विभिन्न परिभाषाओ और व्याख्याओ की तात्विकता पर विचार करेंगे।

'छायावाद' शब्द का निर्माण तथा प्रयोग

छायावाद शब्द क निर्माण कर्ता श्री मुकुटधर पाण्डेय का कथन है कि इसे उन्होने 'छायावादिता' शब्द के आधार पर १९२० ई० मे गढा था। उन्हीं के शब्दों मे मिस्टिक कविता की बगला भाषा की एक आलोचना म एक जगह उसकी 'छायावादिता की ओर सकेत किया गया था। मैंने 'छायावादिता से ही 'छायावाद' शब्द गढा था। या बगला मे मिस्टिसिज्म के अथ म छायावाद का प्रचलन कभी न था और न है।'[1] आपने इस नई काव्य प्रवृत्ति के नामकरण के सन्दभ म श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी से भी परामश किया था। आपने उस युग की नई कविताओ मे पाई जाने वाली भक्ति विनय रहस्य अध्यात्म जिज्ञासा आदि की प्रमुखता के कारण भक्तिवाद' नाम सुझाया था। आपकी यह मान्यता रही है कि मिस्टिक कविताओ म भक्ति की प्रधानता रहती है और मिस्टिक कवि भी सूफी या हिन्दू के निराकार वादा स तो की तरह भक्त कवि रहे हैं।[2] किन्ही कारणो से पाण्डेय जी को यह नाम

---

१ पत का काव्य–डा० कु० प्रेमलता वाफना प २२ पर उद्धत पाण्डय जी का पत्र

२ सरस्वती' जनवरी फरवरी १९७२ श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, कुछ ऐतिहासिक तथ्य, कुछ ससमरण, पृ ५४

पसन्द नहीं आया किन्तु उन्होंने 'श्री शारदा' में 'छायावाद' पर धारावाहिक रूप में लिखित अपने चार समीक्षात्मक निबन्धों में छायावाद को मिस्टिसिज्म का पर्याय कहा है,[1] आध्यात्मिकता और घन भावुकता जिसके अभिन्न अंग हैं।[2] उन्हीं के शब्दों में 'छायावाद' एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक ठीक वर्णन करना असम्भव है क्योंकि ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर सांकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं।[3]

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि न तो इस काव्य प्रवृत्ति का नामकरण सुविचारित ढंग से हुआ है और न आरम्भ में निर्धारित उसकी विशेषतायें ही उसकी मूल चेतना को स्पष्ट करने वाली रही हैं। छायावाद का नामकरण करते समय पाण्डेय जी के मन में भले ही व्यंग्य भाव न रहा हो किन्तु आगे चलकर यह शब्द और काव्य प्रवृत्ति द्विवेदीयुगीन समीक्षकों के हास्य व्यंग्य और विरोध का गम्भीर रूप से शिकार हुई है। यह क्रम १९२१ ई० से प्रारम्भ होकर १९२७ ई० तक बराबर चलता रहा है।

छायावाद : व्यंग्य और विरोध

जून १९२१ ई० में सरस्वती में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से एक छोटा सा सरस निबन्ध प्रकाशित हुआ था जिसके लेखक सुशील कुमार थे किन्तु यह छद्म नाम था, मूल लेखक सरस्वती के तत्कालीन सम्पादक स्वयं बख्शी जी थे।[4] चार सुशिक्षित व्यक्तियों के मध्य होने वाले वार्तालाप का मूल विषय है—एक छायाचित्र जो पन्त जी की एक कविता के आधार पर बनाया गया है। चित्र के नाम पर बढ़िया फ्रेम में मढ़ा मोटा कागज है जिसके बीच [illegible] प्राय वर्णित है। कोई इसे निराकार ब्रह्म की विकट छाया कहता है तो कोई अनंत की अस्पष्टता को स्पष्ट करने का प्रयत्न। वार्ता के अन्त में एक सज्जन हरि किशोर बाबू के शब्दों में यह तो कला की नीरवता है जिसकी कल्पना का उत्पात है, प्रतिभा का विकास है और मनन का विराम है। इस वार्ता में स्वयं कवि पन्त भी भाग लेते हैं और वे भी कविता के नाम पर एक [illegible] प्रस्तुत करते हैं। इस निबन्ध में कवि सम्राट पन्त जी ने इस नई काव्य प्रवृत्ति की जो प्रमुख विशेषतायें बताई हैं वे उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार हैं—'भावों का [illegible] प्रकार [illegible] है अस्पष्टता। भाव ऐसे अस्पष्ट हो जायें कि वे कल्पना के अनन्त गर्भ में [illegible] हो जायें। मेरी यह सम्मति है कि [illegible]

बनते है और अक्षर अविनाशी हैं, अज्ञेय हैं अनन्त हैं अतएव हमें भाषा को यह रूप देना चाहिये जिससे वह नीरव हो जाय। वह कर्णश्रुति न होकर हृदयगम्य हो, इन्द्रियगोचर न होकर आत्मा से ग्राह्य हो।[१] इसी समय के आसपास बख्शी जी ने पन्त जी से 'मौन निमन्त्रण' और 'शिशु' जैसी रचनायें सुनी थी जिससे उनका दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ था और वे पन्त जी की रचनाओं को सरस्वती में प्रमुख स्थान देने लगे थे इस तरह बख्शी जी के मन में छायावाद के प्रति जो व्यंग्य भाव था वह समाप्त हो गया।

मई १९२७ की सरस्वती में 'आजकल की कविता और कवि' शीर्षक से एक समीक्षात्मक निबन्ध प्रकाशित हुआ जिसके लेखक सुकवि किंकर थे। यह भी छद्मनाम था। इसके मूल लेखक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। 'आपने लिखा कि' छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है, किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पडे तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।[२] छायावादी अपनी ही मनस्तुष्टि के लिये कविता लिखते हैं।[३] छायावादी गूढार्थ विहारी हैं उनमें कविलक्ष्य गुण नहीं है।[४] छायावादी कवि तत्व हुता हैं, कवि नहीं, उनमें आडम्बर रचना ज्यादा कवि कम में कुशलता प्राप्ति की चेष्टा कम है। शुद्ध लिखना तक सीखने के पहले ही वे कवि बन जाते हैं और अनोखे अनोखे उपनामों की लांगूल लगाकर अनाप शनाप लिखने लगते हैं।[५]

इसी वर्ष सुधा के दिसम्बर अंक में 'मायावादी' उपनाम से छायावाद पर एक व्यंग्यात्मक कविता प्रकाशित हुई जो इस समय तक की समग्र छायावाद विरोधी विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व करती है जिनका प्रवर्तन द्विवेदी युग के साहित्यकार एवं आचार्य कर रहे थे। कविता इस प्रकार है—

छायावाद चलाया किसने है किसकी यह माया
हिन्दी भाषा में यह प्यारा शब्द कहां से आया ?
कविता जो न समझ में आई, छपकर छायावादी
वृद्ध मियाँ न्याय करने के लिए हाय अब आदी
मिस्टिसिज्म' का नाम मारकर हो उसके प्रतिपक्षी
छायावाद उसे बतलाते हैं साहित्यिक पक्षी।
कोई पूछ नहीं रहा है क्या है छायावाद

१ छायावाद डा० नामवर सिंह, पृ १० ११ से उद्धृत
२ संचयन साहित्यकार से प्रयाग पृ ८६
३ संचयन पृ ८६
४ वही, पृ ९१
५ वही पृ ९२

[३] मूल्यनिष्ठ काव्य प्रवृत्ति

इस प्रकार छायावाद के सन्दर्भ में 'वैयक्तिक अनुभूति' का आशय उसके शाब्दिक अर्थ से नहीं लिया जा सकता। इस रूप में वह भ्रान्तियों को प्रश्रय देने वाला है। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने तो यहाँ तक लिखा है कि समीक्षकों ने स्वानुभूति या वैयक्तिक अनुभूति का ठीक ठीक अर्थ ही नहीं समझा। आपके अनुसार महत या उदात्त काव्यों में इस प्रचुर मात्रा में स्थल होते हैं (जैसे मृत्यु) जिनकी स्वानुभूति कवि को हो ही नहीं सकती फिर भी वह उनका वर्णन या विवरण इस प्रकार तन्मय होकर प्रस्तुत करता है जैसे कि वह अनुभूतियाँ उसकी निजी हों। वस्तुतः ऐसे स्थलों पर कवि की रचनात्मक कल्पना क्रियाशील रहती है और वह सम्भाव्य अनुभूतियों का सर्जन करने में योग देती है। इन्हीं सब कारणों से आपने छायावादी काव्य को व्यक्तिनिष्ठ न मानकर मूल्यनिष्ठ या मूल्यकेन्द्रित माना है[1] जो उसका मूल प्रकृति और चेतना के अनुरूप एक उचित अभिधा है।

छायावाद को मूल्यनिष्ठ काव्य मानने से उसकी स्वच्छन्द चेतना के मूल स्रोतों का सम्बन्ध भी निर्विवाद रूप से राष्ट्रीय चेतना से जुड़ जाता है।

[४] आध्यात्मिकता और रहस्य भावना

आचार्य वाजपेयी जी ने छायावाद में जिस आध्यात्मिकता का स्वरूप परिलक्षित किया है उसकी मूल प्रेरणा धार्मिक न मानकर मानवीय और सांस्कृतिक निरूपित की है तथा उसे २०वीं शताब्दी की वैज्ञानिक एवं भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया कहा है। डा० रामदरश मिश्र का कथन है कि वस्तुतः वाजपेयी जी ने आध्यात्मिकता को पहचानने तथा उसकी मूल प्रेरणा को निर्देशित करने में भी भूल की है। उनका कथन है कि जहाँ छायावादी काव्य में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से व्यक्त हुई है वहीं वाजपेयी जी ने आध्यात्मिक स्वर की तलाश की है।[2] यह राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना भी वैज्ञानिक युग के आने से निर्मित हो रही थी उसकी प्रतिक्रिया में नहीं।[3] छायावाद युगीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया नहीं प्रत्युत उनकी एक अनिवार्य परिणति है अतएव इस सन्दर्भ में डा० मिश्र का उपर्युक्त कथन सत्य है।

आपने छायावाद पर आरोपित अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि के खण्डन के सन्दर्भ में डा० नगेन्द्र का अधोलिखित मत उद्धृत किया है वास्तव में अन्तर्मुखी दृष्टि डालते हुये उसको वायवी अथवा अतीन्द्रिय रूप देने की यह प्रवृत्ति ही छायावाद की

---

१ छायावाद पुनर्मूल्यांकन पन्त पृ० २८ २९ ३० ३१।

२ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, पृ० ११

३ वही, पृ० १३

मूल वत्ति है। उसकी सभी अन्य प्रवत्तियों की इसी अन्तर्मुखी वायवी वत्ति के आधार पर व्याख्या की जा सकती है। आगे आपने लिखा है कि आज के बुद्धिजीवी कवि के लिए वासना को सूक्ष्मतर करना तो साधारणत सम्भव है परन्तु आध्यात्मिक अनुभूति होना उसके लिये सहज सम्भव नहीं है और यह स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि गत युद्ध के बाद जिन कवियों के हृदय में छाया वाद की कविता उद्भूत हुई उन पर उस समय किसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभूति का आरोप नहीं किया जा सकता।[१]

छायावादी काव्य के मूल स्रोतों के इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के बाद भी आपने यह स्वीकार किया है कि छायावादी कवियों में नैतिक और आध्यात्मिक प्रभावों के कारण एक विशेष प्रकार का परिष्कार आरम्भ से ही था। कुछ आध्यात्मिक क्षण तो प्रत्येक भावुक जीवन में आते ही हैं। अतएव छायावाद की रहस्योक्तियाँ एक प्रकार से जिज्ञासायें हैं जो छायावाद के उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिक दर्शन के द्वारा और भी पुष्ट हो गई हैं। परन्तु वे धार्मिक साधना पर आश्रित नहीं हैं। उनका आधार वही भावना वही दर्शन चिन्तन और आरम्भ में कहीं कहीं मन की छलना है।[२]

इस युग के कवियों पर नैतिक और आध्यात्मिक प्रभावों का कारण भी स्पष्ट है। भारतीय संस्कृति में मानवीय जीवन के सभी उदात्त मूल्य आध्यात्मवाद में ही निहित हैं। छायावादी कवि सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतनाओं से संयुक्त रहे हैं अत एव उन्होंने कहीं कहीं तो आयासपूर्वक अध्यात्म दर्शन को प्रस्तुत करके अपनी रचनाओं में गरिमा लाने की चेष्टा की है।[३] छायावादी काव्य में आध्यात्मिकता के समिश्रण या सप्रभाव में युगीन परिस्थितियों ने भी विशेष योग दिया है। उस समय देश में रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द रामतीर्थ अरविन्द महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ आदि ने राष्ट्रीयता तथा आध्यात्मिकता को समन्वित करके अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना लिया था। अरविन्द के शब्दों में राष्ट्रीयता की भावना एक धर्म है जो ईश्वर से प्रादुर्भूत हुई है। वह मर नहीं सकती क्योंकि वह अजर अमर ईश्वर ही है।[४] इस राष्ट्रीयता के पीछे अद्वैत के अध्यात्म का स्वर था जो प्राणिमात्र को समाप्त और स्वतन्त्र मानता है। डा० शम्भुनाथ सिंह के शब्दों में सामाजिक विष

---

१ आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ छायावाद

२ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन प १३ से उद्धत

३ आँसू कामायनी के अंतिम तीन सर्ग जुही की कली, शेफालिका एवं तारा नौका विहार आदि रचनायें इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं

४ नाश-आनल इज इज ए रिलीजन दैट कम्स फ्राम गाड नाश आनल इज कननाट डाइ बिकाज इट इज ए गाड—अरविन्द घोष

मत ।आ से छुटकारा पान क लिय छायावादी कवियों न काव्य क क्षत्र म प्रच्छन्न रूप से अ यात्म का सहारा लिया[1] और इस प्रकार उन्होंने अपन युग तथा वयक्तिक जीवन के अभावों की पूर्ति की।

जहा तक छायावाद और रहस्यवाद का प्रश्न है वह छायावाद का एक अग तो है किन्तु पयाय नही। इस सदभ में डा० नगन्द्र का स्पष्ट कथन है कि छायावाद के अन्तगत और भी बहुत सी विचारधाराय काम कर रही हैं जिनका आध्यात्मिकता स कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है।[2]

[५] छायावाद और रहस्यवाद

इन दोनो प्रवत्तिया मे पार्थक्य प्रस्तुत करत हुए आचाय वाजपयी जी न ठीक ही लिखा है कि छायावाद व्यष्टि सौन्दय बोध की भावना है और रहस्यवाद समष्टि सौन्दय बोध की। रहस्यवाद म व्यष्टि अन्तर मूलक अखण्ड सौन्दय तथा समस्त चेतन की सष्टि होता है।[3] छायावाद क मूल विषय है प्रकृति मानव जीवन प्रम और सौन्दय किन्तु रहस्यवाद म परम सत्ता के प्रति प्रम भावना निवदित की जाती है। छायावाद म जहा प्रकृति स्वतन्त्र रूप स प्रस्तुत हो सकती है वहा रहस्यवाद म वह आध्यात्मिक सौन्दय स ही रजित रहती है। छायावादी का य म प्रतीक योजना जहा कवि क सूक्ष्म भावो के सप्रेषण म सहायक सिद्ध होती है वहा रहस्यवाद म वह उसकी एक अनिवाय अभि यजना शली बनकर अवस्थित रहती है। छायावाद म कवि भावनाओं की कोई सास्कृतिक दाशनिक पष्ठभूमि हो हो यह आवश्यक नही किन्तु रहस्यवाद म उन्ह किसी न किसी दशन का आधार आवश्यक हुआ करता है। इन्ही सब कारणों स छायावाद को इहलौकिक तथा मानवीय भूमिका का का य कहा गया है और रहस्यवाद का अतीन्द्रिय सत्तात्मक और परोक्ष वस्तु स सम्बन्धित भावनाओ का।[4] इस तरह अपन प्रगीतात्मक अभि यजना शिल्प, नवीन सौन्दय बोध, रागात्मक सवदन विस्मय की भावनाओ कल्पना बाहुल्य और मानवीय जीवन मूल्यो की एकरूपता क कारण रहस्यवाद छायावाद क यापक परिवश म तो समाहित हो जाता है किन्तु अपने मूल और तात्विक अर्थो म वह छायावाद स पूरी तरह पथक है। उस छायावाद का पर्याय मानना भ्रम को जन्म दना है।

छायावादी परिवेश म पल्लवित इस का य का रहस्यवाद प्राचीन हिन्दी रहस्य वाद से भी पूरी तरह पथक है। मध्ययुगीन सन्तो का रहस्यवाद ससार को मिथ्या

१ छायावाद युग डा० शम्भूनाथ सिंह, प ६० ६१
२ आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवत्तिया प १५
३ आधुनिक का य रचना और विचार आचाय नन्ददुलार वाजपयी प ३९ ४०
४ आधुनिक का य रचना और विचार आचाय न ददुलारे वाजपयी पृ ३५

मानने वाला जीवन रस वंचित, परिपूर्ण समर्पणशील और आत्मा तथा ब्रह्म के मिलन की अतीन्द्रिय अनुभूतियों पर आधारित मोक्ष-कामी है किन्तु अस्तित्व चेतना से युक्त आधुनिक रहस्यवाद में पंत जी के शब्दों में नव विश्व जीवन तथा विश्व चैतन्य की खोज और जिज्ञासा की अनुभूति के साथ भाव मुक्ति मानव मुक्ति विश्व मुक्ति तथा लोक मुक्ति की ही भावना प्रधान है[1]।

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन में रहस्यवाद की स्वाभाविक अवस्थिति पर प्रकाश डालते हुए एक अंग्रेज विद्वान समीक्षक ने लिखा है कि बौद्धिक जिज्ञासा और सौन्दर्य प्रियता की मूल प्रवृत्तियों से युक्त स्वच्छन्दतावाद जब दर्शन का संस्पर्श करता है तब वह रहस्यवाद और आत्मवाद का पक्षधर बन जाता है।[2] छायावादी कवियों में भी जो सूक्ष्म रहस्य चेतना आध्यात्मिक और मानवतावादी आदर्शवाद की विशेषताएं परिलक्षित होती है वे उनकी स्वच्छन्द जीवन दृष्टि के साथ दार्शनिक पृष्ठभूमियों के संस्पर्शों का फल हैं।

[६] द्विवेदीयुगीन प्रतिक्रिया-विद्रोह या विकास ?

आचार्य वाजपेयी जी ने छायावाद को द्विवेदीयुग की प्रतिक्रिया मानकर युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसके स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया का पर्याप्त स खण्डन किया है जबकि तथ्य इसके विपरीत है। छायावाद के प्रमुख आधार का स्पष्टीकरण करते हुए डा० नगेन्द्र ने उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा है। स्थूल' शब्द की व्यापकता का स्पष्टीकरण करते हुए आपने लिखा है कि इसकी परिधि में सभी प्रकार के बाह्य रूप रंग रूढ़ियां आदि सन्निहित हैं और इसके प्रति विद्रोह नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेकनीक का विद्रोह है।[3] श्री पंत जी की यह परिभाषा भी अपर्याप्त तथा एकांगी के साथ साथ अस्पष्ट भी प्रतीत हुई है क्योंकि इसमें सूक्ष्म के अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। आपके ही शब्दों में यदि सूक्ष्म का अर्थ अभिव्यंजना के वैचित्र्य या चातुर्य से है तो वह सूक्ष्मता नहीं कही जा सकती। यदि सूक्ष्म चेतन या भाव तत्व से सम्बन्ध रखता है तो उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह न कहकर अधिक से अधिक स्थूल का सूक्ष्म में रूपान्तर कहा जा सकता है।[4] किन्तु इस अर्थ को भी आप छायावाद के स्पष्टीकरण के सदर्भ में परिपूर्ण नहीं मानते क्या

१ छायावाद पुनमूल्यांकन पृ० १८ १९।
२ रोमांटिसिज्म हेज इट्स चेंज फिलासफी एवम मिस्टिसिज्म एण्ड आइडियलिज्म —रोमांटिक रिवाइवल, पृ० १३
३ सुमित्रानन्दन पंत डा० नगेन्द्र, पृ० २
४ छायावाद पुनमूल्यांकन, पृ० २४।

कि आपके अनुसार छायावाद न तो स्थूल के प्रति विद्रोह करता है न उसका संस्कार या रूपान्तर हो प्रत्युत वह नये मूल्य की प्रतिष्ठा करता है'। यहाँ यह तथ्य भी स्मरणीय है कि यद्यपि छायायुगीन कवियों ने स्थूलता का परित्याग तो किया तथापि उनकी समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्यसत्ता आकाशचारी न होकर स्थूल या यथार्थदृष्टि पर ही आधारित रही है अतः इस युग में स्थूल और सूक्ष्म के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भी रहा है।

इस सन्दर्भ में डा० रामविलास शर्मा तथा डा० रामदरश मिश्र के विचार भी उल्लेखनीय हैं। डा० शर्मा के अनुसार छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा वह तो थोथी नैतिकता रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह था। डा० मिश्र भी स्वीकार करते हैं कि छायावादी कविता ने नव जीवन का आलोक पाकर नये जीवन मूल्यों की स्थापना की और जर्जर सामंतवादी मूल्यों को ध्वस्त किया। आपने कामायनी में जल प्लावन की व्यक्तिवादी चेतना की संज्ञा दी है और उनके फलस्वरूप होने वाले देव नाश के विनाश को सामंती वैभव का नाश ही माना है[3]। इसमें सन्देह नहीं कि छायावादी कवियों का चेतना का एक अंश तत्कालीन सामंती और साम्राज्यवादी शक्तियों से संघर्ष करता रहा है किन्तु वह प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व के आरोप कल्पनाओं की समृद्धि स्वानुभूत सुख दुःखों की अभिव्यक्ति और सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना की सापेक्षिता में अतिशय मन्द है। यदि हम कामायनी के जल-प्लावन को व्यक्तिवादी चेतना का प्रतीक मानें तो उसके फलस्वरूप मनु द्वारा रचित नये संसार की तुलना हम छायावादी कवियों की समष्टिगत चेतना और नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा से करनी होगी और निश्चित ही ऐसा करने पर नये प्रश्न खड़े हो जायेंगे। श्री मिश्र जी ने यह स्वीकार किया है कि वर्तमान समाज के आस्था-अनास्थाशील शंकाशील अहंनिष्ठ और निरंतर आत्म-मथनशील मनु के जीवन की समस्याओं का समाधान लोक के बीच नहीं होता लोक से दूर कैलास पर होता है। 'कामायनी की यह सारी रहस्यवादी परिणति भावुक है कलात्मक है किन्तु अव्यावहारिक है भावुकता पर आधारित है[5]। यदि इस कथन को कुछ देर के लिए स्वीकार भी कर लिया जाय तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि समस्त छायावादी काव्य की व्यष्टि और समष्टि चेतना का यही प्रारूप है। जिस व्यक्तिवादी चेतना को रामदरश जी व्यक्तिगत स्वाधीनता और मुक्त चेतना का पर्याय मानते

१ छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ० २४

२ संस्कृति और साहित्य पृष्ठ ३६

३-४ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन पृ० २१।

५ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, पृ० ३२।

हैं, यदि उसका रचनात्मक मेनार मनु का जीवन है और उसकी परिणति भावुकता पर आधारित एव अ यावहारिक है तब छायावाद की गरिमा का सारा चित्र ही धूमिल पड जाता है।

✓ इस तरह छायावाद को द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया या विद्रोह के स्थान पर उस युग म जीवन के हर क्षेत्र से सहज अ त स्फुर्ति होने वाली स्वच्छ द चेतना का फल मानना अधिक न्याय-सगत प्रतीत होता है। यह दूसरी बात है कि उसके विकास म द्विवेदीयुगीन स्थूलता तथा सामत साम्राज्यवादी वर्जना न अपन ढग से सहयोग दिया है।

समन्वित दृष्टिकोण

अभी तक हम छायावाद के स्वरूप विश्लेषण म आचार्य वाजपेयी तथ डा० नगेन्द्र जी की परिभाषाओं का ही मुख्य आधार बनाकर चले हैं। निस्सदेह इन दोनो आचार्यों न छायावाद के सौष्ठव और मनोवैज्ञानिक पक्षो के उदघाटन म अपनी प्रतिभा का श्रेष्ठ अश समर्पित किया है किन्तु जसा कि हमने देखा उनकी परिभाषायें और विवेचनायें अपन आप म परिपूर्ण नही हैं। उनम कुछ तो अपरिभाषित पद है और कुछ छायावाद की मूल प्रकृति क विरुद्ध तथ्य। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी न परिभाषा की इन जटिलताओ स बचते हुए छायावाद की जो अधोलिखित तीन विशेषतायें[1] निरूपित की है व इस युग की समग्रता को अपने म आत्मसात करने म बहुत दूर तक समर्थ है।—आपने लिखा है कि छायावाद नाम उन आधुनिक कविताओं के लिए बिना विचारे ही द दिया गया था—

(१) (क) जिनम मानववादी दृष्टि की प्रधानता थी,
(ख) जो वस्तु व विषय को कवि की व्यक्तिगत चितना और अनुभूति के रंग मे रगकर अभिव्यक्ति करती थी,
(ग) जिनम मानवीय आचारो क्रियाओ चेष्टाओ और विश्वासो के बदले हुए मूल्यो को अगीकार करने की प्रवृत्ति थी,
(घ) जिनमे छन्द अलंकार, रस, ताल, तुक आदि सभी विषयो मे गतानुगतिकता से बचने का प्रयास था और
(ङ) जिनम शास्त्रीय रूढियो के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई पड्ती थी।

(२) छायावाद एक विशाल सास्कृतिक चेतना का परिणाम था। यद्यपि उसमे नवीन शिक्षा क परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट ह तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नही था, कवियो क भीतर व्याकुलता न ही नवीन भाषा शली म अपने को अभिव्यक्त किया और

१ हिंदी साहित्य, पृ० ४६१-४६२।

(३) सभी उल्लेखनीय कवियो म थोडी बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थी। जिन कवियो ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढियो के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया उनके इस भाव का कारण तीव्र सास्कृतिक चेतना ही थी।'

छायावाद प्रमुख छायावादी कवियो की दृष्टि मे

छायावाद के तत्व विश्लेषण म छायावाद के प्रमुख कवियो ने अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। यह भी सच है कि जितनी गहराइ तक इनकी तत्वाभिनिवेशिनी दष्टि गयी है उतनी दूरी तक इस युग के समीक्षको की दष्टि भी नही जा सकी है। अतएव बिना इनके विचारो को समझे यह परिच्छेद अधूरा ही माना जायगा।

[८] प्रेम सौन्दयमयी स्वच्छद चेतना–

श्री जयशकर प्रसाद ने छाया का सम्बध मोती के भीतर छाया की तरलता स मानकर और उस काति की तरलता को अग के लावण्य की सना देकर सस्कृत साहित्य म भी उसकी अवस्थिति दखी है। यथा 'इस दुलभ छाया का सस्कृत के काय उत्कष काल म अधिक महत्व था'। इस प्रकार प्रसाद जी छायावाद का सीधा सम्बध सस्कृत की प्रेम–सौन्दयमयी स्वच्छद–चेतना स जोडकर एक ओर उसके पतक–सास्कृतिक–साहित्यिक सूत्रो का स्पष्ट करते हैं दूसरी ओर छायावाद का पाश्चात्य स्वच्छदतावाद का अधानुकरण कहने के भ्रमो का महत्त्व भी कम कर देते हैं।

छायावाद म आप अभिव्यक्ति और अनभूति के बीच पूर्ण तादात्म्य आवश्यक मानते हैं। एसा न होने पर उसम अस्पष्टवाद एव अभिव्यक्ति म विशृखलता आ जाती है[²]। अनुभूति पक्ष की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए आपने लिखा है कि जब वहति विकल काया न मुचति चेतनाम की विवशता वेदना का चैतन्य के साथ चिरबन्धन म बाँध देता है तब वह आत्मस्पश की अनुभूति सूक्ष्म आतर भाव का व्यक्त करने म समथ होती है। ऐसा छायावाद किसी भाषा के लिए शाप नही हो सकता[³]। इसके कला पक्ष की विशेषताओ का उदघाटन करते हुए आपने उसम ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता सौन्दयमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता की अवस्थिति आवश्यक मानी है[⁴]।

प्रसाद जी द्वारा निर्देशित उपर्युक्त विशेषताओ म जो प्रमुख उल्लेखनीय बात है वह है—छायावादी स्वानुभूति की विवति का स्पष्टीकरण। आपने एक ओर जहाँ इसमे वहति विकल कायो कहकर इसकी सहज अन्त स्फुरण शक्ति की ओर सकेत किया है वही सवदना का चैतन्य (पत जी के शब्दो म विश्व चैतन्य) के साथ

१–४ काव्य और कला तथा अन्य निबध—यथाथवाद और छायावाद पष्ठ १२५ १२६।

अनुबन्धित कर उसे 'आत्मस्पर्श की अनुभूति' की संज्ञा दी है जो छायावादी सूक्ष्म अन्तर भावों को अभिव्यक्ति की भंगिमा के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ सिद्ध होती है। कहना नहीं होगा कि छायावाद के पतन सम्बन्धी तथा उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति के पक्षों की इतनी सूक्ष्मता के साथ किसी अन्य ने विवेचना नहीं की।

[९] भाव, भाषा और छन्द की मुक्ति

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने छायावाद की विस्तृत विवेचना नहीं की किन्तु उसके एक प्रमुख और शक्तिशाली तत्व की ओर संकेत किया है कि बंगभाषा में रवीन्द्रनाथ की अकेली शक्ति तीस कवियों का जीवन तथा द्विजेन्द्रलाल देकर साहित्य के हृदय के द्वन्द्व से निकली और फली है। हिन्दी में छायावादी कहलाने वाले कवियों से स्वतंत्र आन्दोलन हुआ है।[1] आपने यह भी स्वीकार किया है कि भावों की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ (छायावाद में) भाषा, भाव और छन्द तीनों स्वतन्त्र हैं।[2] छायावाद के स्वरूप विश्लेषण के प्रकरण में पहली बार निराला जी ने काव्य की मुक्त चेतना के साथ मुक्त छन्द का समर्थन किया है जो इस काव्य प्रवृत्ति की महती विशेषता और उपलब्धि भी है।

[१०] नवीन मानवीय मूल्यों की रचना

श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने तो 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' शीर्षक से एक ग्रन्थ ही लिखा है। इसके अतिरिक्त भी आपने अपनी कृतियों की लम्बी लम्बी भूमिकाओं में छायावाद के स्वरूप विश्लेषण पर विशद चर्चा किया है। आपने पहली बार इस काव्य प्रवृत्ति के व्यापक सांस्कृतिक राष्ट्रीय परिवेश का उद्घाटन करते हुए उसे विश्व चेतना और नवीन मानवीय मूल्यों का प्रतिष्ठापक कहा है। छायावाद के प्रवर्तन परिस्थितियों आदि से लेकर उसके सम्बन्ध में प्रचलित सभी भ्रामक मान्यताओं का भी आपने निष्ठा और दृढ़ता के साथ खण्डन कर उसके मूल्यांकन की दिशा में भी नये संकेत दिये हैं। इस परिच्छेद में जगह जगह आपके इन विचारों की चर्चा की गई है।

[११] स्वानुभूत सुख-दुखों की काव्य सृष्टि

श्रीमती महादेवी वर्मा ने भी छायावाद की मूल प्रकृति और उसकी विशेषताओं पर विस्तार से विचार किया है। आपने पहली बार इस नाम की उपयुक्तता को स्वीकार करते हुये लिखा है कि उसके (छायावाद) जन्म में प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका

1 प्रबन्ध पद्म : निराला, पृ. १८
2 प्रबन्ध प्रतिमा : निराला, पृ. २७०

या कि मनुष्य का हृदय अपनी अभियक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छ द छ " म चित्रित उन मानव अनुभूतियो का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझ तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।[1]

छायावाद क प्रचलित अनक नामो क मूल स्रोतो का स्पष्टीकरण करत हुय आपने लिखा है कि छायावाद का कवि धम क अध्यात्म से अधिक दशन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूत्त और अमूत्त विश्व को मिलाकर पूणता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि न जीवन की अखण्डता (समष्टिगत चेतना) का भावन किया हृदय की भाव भूमि पर उसने प्रकृति म बिखरी (सूदमगत) सौ दय सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनो के साथ स्वानुभूत सुख दुखो को मिलाकर एक एसी काय सष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद हृदयवाद अध्यात्मवाद रहस्यवाद छाया वाद आदि अनेक नामा का भार सम्भाल सकी।[2]

छायायुगीन पलायनवत्ति का स्पष्टीकरण करत हुय आपन लिखा है कि यह युगीन आर्थिक प्रश्नो सामाजिक विषमताओ सास्कृतिक दष्टिकोणो आदि स सघष म पराजित होन का प्रतिफल न होकर परिभाषातीत मन की एक आवश्यक प्रेरणा है।[3]

[१२] भारतीयता के सन्निकट

आपने यह भी स्वीकार किया है कि छायावाद क प्रतिनिधि कवि भारतीय सस्कृति, दशन तथा प्राचीन साहित्य स विशेष परिचित रहे हैं अतएव यह का य प्रवत्ति भारतीय काय की मूल प्रेरणाओ के निकट है।[4] भारतीय प्रकृतिवाद को आपन दशन के सववाद का का य म भावगत अनुवाद कहा है[5] और इस सदभ म वदो और छाया वादी का य से सध रात्रि, निगन सूय प्रकृति और जीवन क चित्र स सम्बधित समान उद्धरण भी प्रस्तुत किय हे और इस तरह भाषा की मूल प्रवत्तियो को एक कहते हुय छायावाद म प्रकृति चेतना का जीवन की सनातन सहगामिना के रूप म निरूपित किया है।[6] आपके ही शब्दो म छायावाद म यह सववाद अधिक सूक्ष्म रूप पा गया है जिसम जड तत्व से चेतन का अभिन्नता सूक्ष्म सौ दर्यानुभूति को ज म दती है और व्यष्टिगत चेतना से व्यापक चेतना की एकता भावात्मक दशन सहज

१ साहित्यकार की आस्था तथा अय निबध श्रीमती महादवी वर्मा प ६५
२ वही प ६६
३ वही पृ ७८
४ वहा प ७५
५ वही प ७०

कर देती है।[1] निश्चित ही छायावाद में वर्णित प्रकृति की जिन विशेषताओं का स्पष्टीकरण श्रीमती वर्मा ने किया है उनकी ओर अन्य समीक्षकों का ध्यान नहीं गया है।

[१३] समृद्ध कल्पना-बाहुल्य और दीप्त रंगों का फैलाव

छायावाद सर्वत्र प्रकृति के बीच में जीवन का उद्गीथ होने के कारण आपके अनुसार इसमें समृद्ध कल्पना की सूक्ष्म रेखाओं का बाहुल्य और दीप्त रंगों का फैलाव स्वाभाविक हो गया है। यही कारण है कि छायावादी कल्पनाएँ बहुरंगी और विविधरूपी हैं।[2] छायावाद में दुःख और विषाद के तत्वों का स्पष्टीकरण करते हुए आपने यह स्वीकार किया है कि यह करुणा की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद ही रहा है।[3] अपने इस कथन की भी आपने मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। आपने लिखा है कि गीत में गाया हुआ पराया दुःख भी अपना हो जाता है और अपना भी सबका, इसी से व्यक्तिगत हार से उत्पन्न व्यथा एक समष्टिगत करुण भाव में एकरस जान पड़ती है। छायायुग का काव्य स्वानुभूतिमयी रचनाओं पर आश्रित है। अतः व्यापक करुण भाव और व्यक्तिगत विषाद के बीच की रेखा यहाँ और भी अस्पष्ट हो जाती है।[4]

इस प्रकार श्रीमती वर्मा की इन विवेचनाओं ने छायावाद की मूल प्रकृति और उसके सांस्कृतिक दार्शनिक मूल स्रोतों के स्पष्टीकरण में बहुत अधिक सहायता दी है।

[१४] अनन्त जीवन की गहरी संवेदना

इस सन्दर्भ में इसी युग के एक प्रमुख कवि डा० रामकुमार वर्मा के विचार भी द्रष्टव्य हैं। आपने छायावाद का हृदय की एक अनुभूति निरूपित करते हुए लिखा है कि वह भौतिक संसार के क्रोड में प्रवेश कर अनन्त जीवन के तत्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन से जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है।[5] अपने इस कथन द्वारा आपने छायावादी काव्य और जीवन का अभिन्न सम्बन्ध स्थापित कर दिया है।

इसी प्रसंग में छायावादोत्तर कवि-समीक्षक श्री अज्ञेय जी ने इस तथ्य के ठीक

१ वही पृ० ८१।
२ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० ८६–८७
३ वही पृ० ८०
४ वही पृ० ८८
५ साहित्य चिन्तन डा० रामकुमार वर्मा पृ० १२४–५।

विपरीत बात नहीं है। आपके अनुसार महायुद्धोत्तर अव्यवस्था और पराजयवाद ने इस अन्तराल को और भी गहन कर दिया। फलत संवदनशील कृतिकार म गहरा अंतद्वन्द्व प्रकट हुआ। यह अंतद्वन्द्व उसे साधारण जन से दूर ले गया इस दूरी के बोझ ने अंतमन को नयी तीव्रता दी। उसने नये कवि म एक अभूतपूर्व आध्यात्मिक व्याकुलता उत्पन्न की। छायावादी काव्य मुख्यतः इसी व्याकुलता की अभिव्यक्ति करने के प्रयत्नो का परिणाम था।[1] अज्ञेय जी ने साधारण जन स दूरी और अभूतपूर्व आध्यात्मिक व्याकुलता जस पदो का स्पष्टीकरण नही किया है। यदि दूरी का तात्पर्य कलात्मक सौष्ठव स है तो निश्चित ही छायावाद का शिल्प कौशल और भाषा सामर्थ्य साधारण जन के स्तर से ऊपर उठा है और यदि इस दूरी का आशय छायावाद काव्य के जीवन रस से वंचित होने और आकाशचारी कल्पना से सम्बंधित है तो निश्चित ही तथ्य इसके विपरीत हैं। इसी प्रकार हम देख चुके हैं कि छायावाद म धार्मिक आध्यात्मिकता की व्याकुलता के स्वर हैं ही नहीं और जो आध्यात्मिकता आई भी है वह न तो साधारण जन की दूरी के बोध से आक्रान्त है और न कवियो के महायुद्धोत्तर अव्यवस्था और पराजयवाद से प्रसूत अंतद्वन्द्वो स।

[१५] प्रथम महायुद्ध से लेकर द्वितीय महायुद्ध की कविता छायावाद

हिन्दी साहित्य म छायावाद के स्वरूप विश्लेषण के प्रयास और भी अनेक विद्वानो समीक्षको न किए हैं किन्तु उन्होने प्रकारान्तर स उपयुक्त विशेषताओ और परिभाषाओ को ही स्वीकृत कर लिया है अत उनकी विवेचनाओ म कोई नयी उल्लेखनीय बात नहीं दिखाई देती। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अवश्य छायावाद की पूर्व स्वीकृत विशेषताओ को गिनाते हुए (यथा व्यक्तिवाद गीततत्व स्वात्मकता मार्मिकता, कवि और उसके राग विराग की प्रधानता प्रकृति पर कवि भावनाओ का आरोपण प्रकृति का मानव रूप अभिव्यंजना म लाक्षणिकता वक्रता संगीतात्मकता आदि) कहा है कि प्रथम महायुद्ध स द्वितीय महायुद्ध तक की कविता की मुख्य प्रवत्तियाँ हैं—छायावाद।[2] आपका यह कथन यद्यपि अस्पष्ट और अतिव्यापक है तथापि इसमे छायावादी काव्य प्रवत्तियो की परिसीमाओ का बोध अवश्य हो जाता है। यदि आप प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ या अंत की बात स्पष्ट कर देते तो निश्चित ही आपके इस कथन स छायावाद की दोनो सीमाओ के निर्धारण म महत्वपूर्ण सहायता मिलती। फिर भी छायावाद की सीमाएँ हिन्दी साहित्य म विवाद का विषय नहीं हैं। सामान्यत सभी विद्वानो ने झरना स लेकर कामायनी या उच्छ्वास स लेकर युगान्त के बीच के समय को छायावाद की संज्ञा स विभूषित किया है। राजनीतिक भाषा म इसे हम

१ पुष्करणी अज्ञेय पृ० ६

२ आधुनिक इतिहास डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २५६

प्रथम महायुद्ध के अन्त और द्वितीय के लगभग प्रारम्भ तक का समय कह सकते हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि में इसे गांधी जी के राजनीतिक नेतृत्व का शीर्ष काल भी कहा गया है।

[१६] एक सम्पूर्ण काव्य दृष्टि और काव्य सृष्टि

इसी संदर्भ में डा० रवीन्द्रनाथ 'भ्रमर' तथा श्री नित्यानंद पटेल के छायावाद से सम्बन्धित पुनर्मूल्यांकन के कार्य और निष्कर्ष भी उल्लेखनीय हैं। डा० भ्रमर ने समन्वयवादी दृष्टि से कार्य किया है और छायावाद को एक सम्पूर्ण काव्य-दृष्टि माना है। वे इसमें कभी रहस्यवाद, कभी स्वच्छन्दतावाद, कभी प्रतीकवाद, कभी इनसे परे और कभी इनके मिश्रित रूपों और प्रवृत्तियों को भी देखते हैं और इसी कारण इसे 'एक व्यापक और बहुमुखी काव्य प्रवृत्ति' कहते हैं।[१] किन्तु आपकी इन पदावलियों के द्वारा छायावाद का कोई मूर्त रूप हमारे सामने नहीं आता।

डा० भ्रमर ने निजी रुचि तथा पुनर्मूल्यांकन के दृष्टिकोण का परिचय देते हुए छायावाद के प्रारम्भ की सीमा को थोड़े पीछे कर दिया है। इस संदर्भ में आप हिन्दी साहित्य कोश सम्मत अपना तर्क देते हुए लिखते हैं कि १९१३–१४ में इन्दु नामक मासिक पत्रिका में उस पद्धति की रचनायें प्रकाशित होने लगी थीं जिन्हें छायावाद की नयी धारा के प्रवर्तन का श्रेय मिला है।[२] दूसरी जगह आप लिखते हैं कि छायावाद का अभ्युदय १९१६ ई० के आसपास माना जाता है निराला की 'जुही की कली' १९१६ ई० की रचना बताई जाती है।[३] आप छायावाद में प्रारम्भ से ही शैलीशिल्प की प्रौढ़ता और दीप्ति मानकर चले हैं। 'कामायनी' की प्रकाशन तिथि को आपने १९३५ ई० माना है। आपकी दृष्टि से यही छायावाद की दूसरी सीमा है। १९३६ से छायावाद का पतन प्रारम्भ हो गया था। फिर भी आप १९४७ ई० तक छायावादी नामी शैली शिल्प में रची जाने वाली कविताओं का सिलसिला जारी मानते हैं। १९३५–३६ के बाद के आठ–दस वर्षों की छायावादी कविता को आप उत्तर छायावाद के नाम से अभिहित करते हैं।[४] इस प्रसंग में यही टिप्पणी पर्याप्त होगी कि डा० भ्रमर द्वारा प्रस्तुत और संस्तुत तथ्यों में से अधिकांश सही नहीं हैं।

[१७] जीवन मीमांसा का काव्य

श्री नित्यानन्द पटेल ने अपने 'पूर्व निवेदन' में कृतज्ञतापूर्वक यह स्वीकार कर

---

१ छायावाद : एक पुनर्मूल्यांकन : डा० रवीन्द्र भ्रमर, पृ० २९।
२ वही पृ० ४८।
३ वही पृ० १९२।
४ वही पृ० ४७।

लिया है कि 'विशेष रूप से डा० नगेन्द्र, श्री मानव और डा० नामवर सिंह द्वारा प्रस्तुत आलोक की सहायता से ही हम विषय को यथामति विशद कर सके हैं।'[1] समर्थ आलोचकों की भूल का स्पष्टीकरण करते हुए आपने लिखा है कि 'तथापि छायावाद युग में प्रकृति सम्बन्धी जीवन मीमांसा सम्बन्धी आध्यात्मिक विरह मिलन सम्बन्धी गांधीवाद से प्रभावित राष्ट्र सम्बन्धी, लौकिक प्रेम सम्बन्धी, दुख वेदना सम्बन्धी, मानवता सम्बन्धी बहुत से गीत लिखे गये हैं परन्तु ये सब गीत छायावाद की परिधि में नहीं आते'[2]। आपके शब्दों में छायावाद की सुबोध परिभाषा इस प्रकार है—सजीवता संवेदना एवं मानव हृदय भावों से अनुप्राणित प्रकृति के शक्ति रूप का मानवरूप से आत्मरसात्मक अनुरंजित चित्रण छायावाद है।[3] प्रसाद की 'कामायनी' को आप छायावादी महाकाव्य नहीं जीवन मीमांसा का महाकाव्य मानते हैं।[4] आप के अनुसार १९३६ के बाद भी छायावादी धारा कुछ कृशता लिए हुए अन्य धाराओं के साथ साथ बह ही रही है यह खुशी की बात है।[5] छायावाद के पतन की बात में सन्देह व्यक्त किया है और उनके अनुसार १९३७ के बाद की कविताओं में भाव और कला की दृष्टि से उनका अच्छा निखार हुआ है।[6] आपने मेरे नगपति मेरे विशाल (दिनकर) मधुवन की छाती को देखो सूखी कितनी इसकी कलियां (बच्चन) तथा मपाली के आंखें चमक उठी मस्ती से मदमुग्ध प्यासी वसुधा की नामक गीत से कुछ उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि छायावादी प्रभाव युवा कवियों के तन मन में घर करके बस गया है—ऐसी अवस्था में उसके पतन की बात क्या बतुकी-सी नहीं लगती ?[7]

इसी पुस्तक की भूमिका में डा० रामधारी सिंह दिनकर ने 'क्या आंसू केवल प्रकृति काव्य है ? क्या अनुभूति' केवल प्रकृति का वर्णन करती है ? क्या अन्तर्जगत कोरी प्रकृति कविता है ? आदि प्रश्न उठाकर प्रो० नित्यानंद जी के विचारों का खण्डन कर देते हैं कि जो छायावाद को केवल प्रकृति काव्य मानते हैं वे ठीक ठीक सही राह पर नहीं हैं।[8]

---

१ छायावाद नया मूल्यांकन नित्यानन्द पटेल पृ० १२।
२ छायावाद नया मूल्यांकन, पृ० १७।
३ वही, पृ० १८।
४ वही, पृ० १३२।
५ वही, पृ० २०८।
६ वही, पृ० २०८।
७ वही पृ० २०८–१२।
८ वही पृ० ९।

इस प्रकार आजकल छायावाद के नव या पुनर्मूल्यांकन के नाम से उसके विश्लेषण संश्लेषण के जो प्रयास हो रहे हैं उनमें वैज्ञानिक शोध की तुलना मे निजी दृष्टिकोण और पूर्वाग्रहता की ही अधिकता है। ऐसे तथ्य इस काव्य प्रवृत्ति के मूल्यांकन के मार्ग म अवरोध और अन्तर्विरोध ही उत्पन्न कर रहे हैं।

संश्लिष्ट काव्य प्रवृत्ति

✓समग्र छायावाद एक ऐसी संश्लिष्ट काव्य प्रवृत्ति है जिसमे आत्मनिष्ठता के साथ साथ प्रकृति और मानवीय चेतना का उज्ज्वल सौन्दर्य निरूपण, अखिल मानव भावो के सत्य स्वरूप का विश्लेषण युगीन सांस्कृतिक दार्शनिक राष्ट्रीय सचेतना के प्रकाश म नव मानवता से सम्बर्धित नव मूल्यो की शोध सर्जना और स्वच्छन्द जीवन तथा रचनात्मक कल्पना दृष्टि से परिपूर्ण एवं परम्परा की लीक से हटकर काव्य कला तत्वो के नूतन और प्रोत्तिक्र प्रतिमानो का प्रयोग मिलता है। इसम सत्य शिव और सुन्दर पक्षो स समन्वित एक समग्र व्यक्तित्व और मानवीय जीवन का कलात्मक पुनर्सृजन है छाया नहीं।

✓निराला जी की 'तुलसीदास' तथा पंत जी की युगवाणी निश्चय ही ये दो ऐसी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो एक युग के अन्त तथा दूसरे युग के प्रारम्भ प्रवेश की सूचना देती हैं। 'युगान्त' पंत जी की सौन्दर्य-दृष्टि और प्रकृति चेतना का युगान्त है छायावाद का नहीं।

✓छायावाद के पतन या पराभव के मूल म चाहे जो कारण रहे हों पर उसका यह अर्थ नहीं है कि १९३८ ई० के बाद छायावादी काव्य लिखा ही नहीं गया। देवी जी की 'दीपशिखा' (४२), निराला जी की 'अणिमा' (४३) के गीत तथा अर्चना-आराधना (५० ५३) का छायावादी शिल्प और स्वयं पंत जी के स्वर्ण काव्य का छायावादी रूपविधान इस बात का प्रमाण है कि यह प्रवृत्ति प्रगतिशील, प्रयोग तथा नयी कविता की युगीन प्रवृत्तियों के तार स्वरो म दबकर और युग चेतना के विरुद्ध छायावादी कवियो के प्रौढ़ संस्कारो के रूप म जीवित रही है। एक दीपशिखा के अपवाद को छोड़कर १९३८ की परवर्ती छायावादी कृतियो म वह तेजस्वितापूर्ण रूप और वैभव नहीं दिखाई देता जो आंसू 'कामायनी' 'पल्लव' 'गुंजन', 'गीतिका' 'अनामिका', 'नीरजा' 'सांध्यगीत' आदि कृतियों म दिखाई देता है। दीपशिखा के अपवाद का कारण देवी जी की एकनिष्ठ विरह-साधना है जो प्रगति या प्रयोग धर्मी चेतना स पूरी तरह अप्रभावित है।

पतन के कारणों का विश्लेषण

✓छायावाद के पतन के कारणों का विश्लेषण करने वालो म छायावादी कवि ही प्रमुख हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा ने उसके आत्म पक्ष की कमियो की ओर ध्यान आकृष्ट किया और श्री पंत जी ने उसकी कला-चेतना की

ओर। देवी जी का कथन है कि "छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्य लोक में ही वह भावात्मक दृष्टिकोण मिला जीवन में नहीं, इसी से वह अपूर्ण है।'

कुछ अन्य विचारकों ने छायावाद की कमियों और ह्रास के कारणों पर प्रकाश डाला है। डा० इन्द्रनाथ मदान का कथन है कि छायावाद का पथ व्यक्ति के विद्रोह से और इति पलायन से हुई, विद्रोह में उसका प्रगतिवादी पक्ष व्यक्त हुआ और पलायन में प्रतिक्रियावादी।' (निबन्ध और निबन्ध पृ० २६६) इसमें सदेह नहीं कि छायावाद में पलायन, कल्पनाशीलता आत्म केन्द्रीयता आदि की प्रवत्तियाँ रही हैं किन्तु ये जीवन संघर्ष से पलायन नहीं है और न इस भूमिका पर छायावाद की क्षति हुयी है। छायावाद का चरम शीर्ष कामायनी है इसी के बाद यह युग लगभग समाप्त हो गया किन्तु कामायनी जीवन संघर्ष का काव्य है पलायन का नहीं उसमें जिस नूतन मानवता का प्रदर्शन किया गया है वह इच्छा क्रिया और ज्ञान की समरसता पर आधारित है।

दिनकर जी छायावाद का व्यक्तिगत सुख दुःख का रोदन' कहते है और जन कल्याण की दृष्टि से उसके व्यक्तिवाद को निरर्थक मानते है। डा० मुरली छायावाद में अनुभूति की सचाई का अभाव अभिव्यक्ति में अस्पष्टता साधारणीकरण के लिए आवश्यक प्रेषणीयता का अभाव, यथार्थ से दूरी, निराशा और अभाव की पीडा कवि मन की कुण्ठाग्रस्त स्थिति आदि अनेक अभावों को देखते हैं और इन्हे ही उसके ह्रास के प्रमुख कारण निरूपित करते हैं। वे उसमें शैली तथा ... के ... की अति रेकता तथा भीतरी प्राणशक्ति का अभाव भी निरूपित करते हैं।

निश्चित ही ये तत्व आंशिक रूप से छायावाद के पतन में सहायक सिद्ध हुए हैं किन्तु युगीन परिस्थितियाँ और प्रगतिशील वातावरण ही ऐसा प्रमुख उपकरण है जिसके कारण छायावादी कवि ही उस दिशा में उन्मुख हो गये। प्रसाद जी का देहावसान हो गया और श्रीमती महादेवी वर्मा ने दीपशिखा' के बाद कवितायें लिखना ही लगभग बन्द कर दिया पंत जी ने युग का साथ दिया और निराला जी तो प्रारम्भ से ही अधिक बहिर्मुखी और वस्तुवादी रहे हैं अतः युग की आवश्यकताओं के अनुरूप आप भी प्रगतिशीलता की ओर बढ़ गये और इस तरह छायावाद का समापन हो गया।

२ | रहस्यवाद

रहस्यवाद के मूल स्रोत

प्रात काल सुनहला प्रकाश बिखराने वाला और दोपहर को प्रचण्ड दीप्ति से चमकने वाला ये सूर्य क्या है ? ये चाँद तारे, ग्रह नक्षत्र सब क्या हैं ? इन्हें किसने रचा ? क्यो रचा ? इनकी निरन्तर परिक्रमा का क्या उद्देश्य है? नर नारी जीवन मरण निर्माण विनाश,क्या, किसलिए? इन्द्रधनुष की सुषमा बरसातो का वज्राघात,बादलो की भयावनी गड़गड़ाहट और प्रलयकारिणी वृष्टि कोकिल की श्रुति प्रिय ध्वनि और पपीहे की अविरल पुकारें—क्या ? किसके लिए ? प्रकृति के इन राग रजित रूपो और भयावह दृश्यो के रहस्यो ने आदिम अवस्था मे ही मानव मन म मुग्धता और क्षुब्धता, श्रद्धा और भय की भावनायें भर दी थी रहस्यवाद के प्राथमिक सूत्र मानव की इसी आदिम जिज्ञासा भावना म दिखाई देते हैं।

ऋग्वेद (१०/१२९/६ ७) के दो सूक्तो म इस सदर्भ मे लिखा है कि— कौन ठीक ठीक जानता है ? कौन यह सच सच बता सकता है कि इस सृष्टि का उद्भव कहाँ स हुआ कसे हुआ ? सृष्टि का निर्माण स्वत ही हुआ या किसी ने किया ? यह सब कुछ वही अतरिक्षवासी ही जानता है ? या वह भी जानता है या नहीं किसे पता ?'

कामायनी के मनु भी प्राकृतिक रहस्या क प्रति इसी प्रकार की मुग्धता और जिज्ञासा प्रगट करते हैं—

> महानील इस परम व्योम मे
> अतरिक्ष म ज्योतिर्मान ।
> ग्रह-नक्षत्र और विद्युत्कण
> किसका करते-से सधान ।
> छिप जाते हैं और निकलते
> आकर्षण म खिचे हुए

तृण वीरुध लहलहे हो रह
किसके रस स सिंच हुए ।
ह अनत ! रमणीय कौन तुम
यह मैं कस कह सकता ?
हे विराट ! ह विश्वदेव ! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान । (आशा सग)

(१) रहस्यवाद एक अनुभूत्यात्मक सत्ता—

ऋषि मुनियो दार्शनिको और योगियो ने उस अनत शक्ति का स्वरूप जानने की चेष्टा की पर व उसकी अनुभूति तो कर सके अभिव्यक्ति नहीं, इसीलिए रहस्यवाद को अनुभूत्यात्मक सत्ता कहा गया और यह माना गया कि उसे वही समझ सकता है जो तन्मय होकर उसी म लीन हो जाय या अद्वत हो जाये। अद्वतवाद की जब य रहस्यात्मक भावनायें अत प्ररित होकर अपन सुतीव्र भावावेग क साथ सांगी तिक रूप धारण करती हैं तब रहस्य गीतो की सष्टि होती है। रहस्यवाद की इन्ही विशेषताओ को ध्यान म रखकर आचाय रामचन्द्र शुक्ल न लिखा है—

'चितन क्षत्र म जो अद्वतवाद है वही भावना के क्षत्र म रहस्यवाद है ।

यहाँ चिंतन क क्षत्र स आशय दाशनिक जगत स है। दार्शनिक ग्रन्थो म भी उस अद्वतवादी परमसत्ता को विराट कहा गया गया है उसका ठीक ठीक स्वरूप निर्धारण नही किया जा सका। सभी लोग उस अज्ञय अगम्य अकथ असीम अनादि, अनत नेति नेति कहकर चुप हो गय हैं। हिन्दी के सवश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि कबीर दास भी उस रहस्यात्मक दीप्ति को 'कहिबे कूँ शोभा नही, देखा ही परमाण कह उठत हैं। रहस्यानुभूति का आप प्रेम की अकथ कहानी कहकर उस 'गू गे क गुड से उपमित करते हैं।

डा० नगेन्द्र रहस्यवाद क मनोवज्ञानिक पक्ष का उदघाटन करत हुए कहत हैं कि बहिरग जीवन से सिमट कर जब कवि की चतना ने अन्तरग म प्रवेश किया तो कुछ बौद्धिक जिज्ञासाए—जीवन और मरण सम्ब धी प्रकृति और पुरुष सम्बन्धी आत्मा और विश्वात्मा सम्बन्धी—का य म आ जाना सम्भव ही था और वे आईं, उसक चितन स्वरूप रहस्यवादी कविता उदभूत हुई। इस परिभाषा कथन म रहस्य वादी का य की रचना प्रक्रिया पर तो प्रकाश पड जाता है कि तु उसका स्वरूप विश्लेषण सम्यकरूपेण नही हो पाता।

(२) अज्ञात और अव्यक्त सत्ता के प्रति आत्मनिवेदन

बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी निम्नलिखित परिभाषा मे रहस्यवाद क मूल स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है—'अज्ञात और अव्यक्त सत्ता के प्रति जिसम

भाव प्रकट किए जाते हैं, वही कविता रहस्यवाद की कही जा सकती है। दूसरे शब्दों में व्यक्त जगत में परोक्ष की अनुभूति का अभिव्यंजन रहस्यवाद है। कला की दृष्टि से यह एक शैली विशिष्ट है जिसमें इस त्रिविध चराचर के मूल में विद्यमान कारण भूत रहस्यमयी चेतन सत्ता पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके प्रति अनुरागजनित आत्मसमर्पण की भावना का अभिव्यंजन किया जाता है।' कला की दृष्टि से रहस्यवाद को एक शैली विशिष्ट नहीं माना जा सकता। वस्तुत उसकी स्वतंत्र की एक सांस्कृतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि है, वह काव्य का बाह्य उपकरण नहीं, प्रत्युत अंत करण की एक आध्यात्मिक चेतना के रूप में वह काव्य में अभिव्यक्त होती है। इससे अधिक सुलझी हुई और तात्त्विक परिभाषा गंगाप्रसाद पाण्डेय की है।

(३) हृदय की दिव्य अनुभूति

पाण्डेय जी के अनुसार 'ईश्वर तथा विश्व का सब उ, इस विश्व की क्रियाशीलता का रहस्य उसकी उत्पत्ति उसका विनाश, आदिकाल से मनुष्य को मुग्ध तथा क्षुब्ध किए है। इस क्षुब्धता में अशान्ति का आवेग है। अत शांतिप्रिय नर समाज इस चिर रहस्य गुत्थी को सुलझाने का प्रयास कर रहा है, हमारी ससीम चेतना असीम चेतना की निरंतर खोज करती रहती है। इसी खोज की मधुर अभिव्यक्ति काव्य में रहस्यवाद का रूप धारण करती है। सारांशत रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी अपने ससीम और पार्थिव अस्तित्व में उस असीम एवं स्वर्गिक महा अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है।"

इस परिभाषा के आरम्भ में पाण्डेय जी ने मानव की सहज जिज्ञासा, विस्मय मुग्धता और क्षुब्धता का आख्यान किया है जो रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी है किन्तु केवल जिज्ञासा रहस्यवाद नहीं है उसमें असीम के साथ ससीम के मिलने की उत्कंठा भी सुतीव्र कोटि की हो, इसका संकेत उन्होंने उपयुक्त परिभाषा के अंत में किया है। मध्य में उन्होंने एक विशेष वस्तु की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। सभी जिज्ञासाकुल क्षुब्ध और मुग्ध व्यक्ति रहस्यवादी नहीं होते, केवल वे ही इस सीमा के अंतर्गत आते हैं जो शांतिप्रिय हैं और चिर रहस्यमयी जीवन मरण, विनाश निर्माण आदि से सम्बन्धित गुत्थियों के सुलझाने में मनोयोगपूर्वक दत्तचित्त हैं। जो व्यक्ति इस कार्य में लय नहीं हैं और असीम ससीम के एकाकार से विमुख हैं वे रहस्यवादी नहीं हैं। पाण्डेय जी ने रहस्यवाद के इन मूल तत्त्वों को उपयुक्त परिभाषा में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है किन्तु वे भी उसके सम्यक स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं कर सकते हैं, उनकी उक्त परिभाषा में अतिव्याप्ति का दोष है।

(४) जड़ चेतन के एकीकरण की गहरी वास्तविकता

बाबू गुलाबराय के अनुसार 'प्रकृति में मानवी भावों का आरोप [illegible]

क एकीकरण की प्रवत्ति छायावाद की एक विशेषता है और उसके मूत अमूत स तुलना करने वाले अलंकार-विधान म जसे विखरी अलकें ज्यों तक जाल लहरों के लिए इच्छाओं सी असमान तथा मानवीकरण प्रधान लाक्षणिक प्रयोगों म परिलक्षित होती है। जब यह प्रवत्ति कुछ अधिक वास्तविकता धारण कर अनुभूतिमय निजी सम्बंध की ओर अग्रसर होती है तभी छायावाद रहस्यवाद म परिणत हो जाता है।

वस्तुत गुलाबराय ने इसम छायावाद की ही विशेषताओं का प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। छायावाद का भी वे केवल कलात्मक पक्ष प्रस्तुत करते हैं। उसके अन रंग पक्ष म निहित सांस्कृतिक गरिमा को उपेक्षित करके उसकी मानवीकरण तथा लाक्षणिक प्रवत्ति का उल्लेख करके वे कहते हैं कि जब य प्रवत्तियाँ अधिक वास्तविक होंगी और अनुभूत्यात्मक ढंग से अग्रसर हुई तो रहस्यवादी काव्य की सृष्टि हो जायगी कि तु तथ्य इसके विपरीत है। छायावाद को रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी नहीं कहा जा सकता उसका मनोमय ससार पथक है यह दूसरी बात है कि रहस्यात्मक प्रवत्तियाँ—जिज्ञासा कुतूहलादि भी उसम विद्यमान रहती हैं कि तु रहस्य एक साधना की वस्तु है कल्पना की नहीं छायावाद काव्य के मूल म कल्पना का सजनात्मक रूप निहित है जबकि कबीर के काव्य म उनकी साधना प्रमुख रही है। कल्पना के बल पर जिस कल्पनाच्छादित रहस्यवाद की सृष्टि होगी वह साधक कवि की अनुभूत्यात्मक रहस्य भावनाओं स आलोकित नहीं हो सकता इसलिए कबीर के रहस्य गीतों में छायावादी तत्वों का अभाव होने हुए भी विशुद्ध रहस्यवादी प्रवत्तियाँ अभिव्यजित हैं जिन्हें कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

(५) ब्रह्म के प्रति प्रणय निवेदन

छायावाद और रहस्यवाद के इस सूक्ष्म अ तर को विश्वम्भर मानव ने समझने की चेष्टा की है और लिखा है कि प्रकृति को चेतना प्रदान करना छायावाद है और ब्रह्म के प्रति प्रणय निवेदन करना रहस्यवाद है। किन्तु इसम उनका छायावाद विषयक दृष्टिकोण अव्याप्ति दोष स ग्रस्त है। प्रकृति को चेतना प्रदान करने के अतिरिक्त छायावाद और भी बहुत कुछ है जिसका संकेत करना मानव जी भूल गये हैं।

(६) समष्टि सौन्दय बोध

वाजपेयी जी के अनुसार छायावाद व्यष्टि सौन्दय तथा रहस्यवाद समष्टि सौन्दय-बोध की रचना है। मानव जीवन की विविध इकाइयों के भीतर आध्यात्मिक सत्य की झलक व्यष्टि सौन्दय-बोध है। जब यही सौन्दय-बोध अधिक उदात्त होकर व्यष्टि सौन्दय की सत्ता को अपने म आत्मसात कर लेता है तो वही भावभूमि समष्टि

बोध बन जाती है अत आध्यात्मिक सौन्दय-बोध छायावादी काव्य का स्वरूप है, इसी की उदात्त भूमिका पर रहस्यवाद का अंकन होता है। छायावाद प्रथम और रहस्यवाद द्वितीय सोपान है। आध्यात्मिक तत्त्व दोनों मे हैं किन्तु छायावाद म ईश्वर की सृष्टि का आधार लेकर उसके सुन्दर पक्ष का चयन करते हैं तथा रहस्यवाद म सुन्दर असुन्दर की बात को सुनाकर एक समरस भूमिका का उद्‌बोधन किया जाता है। छायावादी काव्य मानवीय जीवन म सौन्दर्य को व्यक्त करता है, किन्तु रहस्यवाद ईश्वर म एकाकार होने की आकुलता को लेकर चलता है इसीलिए छायावाद म मानवीय सवेदनाओं की अधिकता है, किन्तु रहस्यवाद म आत्मा-परमात्मा का निर्देश अधिक रहता है। छायावाद म वस्तुओं की स्वतन्त्र सत्ता रहती है जबकि व ही लौकिक वस्तुयें रहस्यवाद मे प्रतीक का रूप धारण करके अभिव्यंजित होती हैं।'

वाजपेयी के इस लम्बे उद्धरण स हमारे कई कार्य एक साथ सम्पन्न हो जाते हैं। ऊपर जो कतिपय विद्वान छायावाद को शैली विशेष कहते हैं, उनका निराकरण हो जाता है और छायावाद तथा रहस्यवाद के मूलभूत अन्तर तथा साम्य का भी दिग्दर्शन हो जाता है। उपयुक्त अश म वाजपेयी जी ने भी छायावाद को प्रथम और रहस्यवाद को द्वितीय सोपान कहा है किन्तु इसके पूव व छायावाद को व्यष्टि सौन्दय बोध और रहस्यवाद को समष्टि सौन्दय कह चुके हैं। व्यष्टि सौन्दय-बोध या मानवीय जीवन की उदात्त भूमिका पर ही समष्टि सौन्दय-बोध अथवा रहस्यवाद की सृष्टि होती है यह तथ्य किसी भी रहस्यवादी कवि की कृति म देखा जा सकता है, स्वय वाजपेयी जी ने भी इस स्वीकार किया है। अतएव यहाँ वाजपेयी जी का अथ छायावाद और रहस्यवाद को क्रमश प्रथम और द्वितीय सोपान कहने म उसके ऐतिहासिक काल क्रम से नहीं रहा है और न ऐसा कभी सम्भव भी है।

(७) अनुराग जनित आत्म विसर्जन

श्रीमती महादेवी का रहस्यवाद मध्यकालीन भक्त कवि की चेतना से कम किन्तु इस सदी की शक्तिवादी प्रवृत्ति से अधिक प्रभावित है फिर भी उनकी रहस्य चेतना साधनात्मक दार्शनिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर विकसित हुई है उन्होंने युग चेतना के अनुरूप भारतीय रहस्यवादी भावना का क्रमिक विकास किया है। इस दृष्टि से 'रहस्यवाद' पर उनके वक्तव्य विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

देवी जी के अनुसार जब प्रकृति की अनेकरूपता परिवर्तनशील विभिन्नता म, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन म और दूसरा उसके ससीम हृदय म समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस सम्बन्ध म मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों म जब तक अनुराग जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक य मधुरता

सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया।' देवी जी की इस परिभाषा को उद्धृत करते हुए डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि देवी जी ने 'परिभाषा के नाम पर एक ऐसी कहानी छेड़ दी जो केवल रहस्यवादियों को ही समझ में आ सकती है। मैं रहस्यवादी नहीं हूँ फिर भी महादेवी जी की सहजता तथा स्वाभाविकता को समझ रहा हूँ। मैं ही क्या उसे कोई भी साहित्यिक क्षेत्र में थोड़ा सा दखल रखने वाला व्यक्ति समझ सकता है। उसमें जटिलता न तो भाषा-विषयक है न विचारों की अस्पष्टता सम्बन्धी ही है। यदि कोई जटिलता है तो मिश्रित वाक्य विन्यास की। मिश्रित वाक्य विन्यास कोई दोष नहीं माना गया हाँ आशय स्पष्ट होना चाहिए। देवी जी की उपर्युक्त परिभाषा में उनकी सहज काव्यात्मक और आलंकारिक भाषा को देखा जा सकता है किन्तु वह तो उनकी भाषा मात्र की विशेषता है क्या गद्य क्या पद्य सर्वत्र उन्होंने एक ही प्रकार की मिश्रित इकाई से सम्पन्न काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है कोई उनकी मौलिक विशेषता ही न समझे तो इसमें देवी जी का क्या दोष? गुप्त जी की समझ में यह भी नहीं आया कि देवी जी के इस चक्र व्यूह का प्रथम सोपान कहाँ से प्रारम्भ होता है। इस सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि वह उनके आरम्भिक शब्द से ही प्रारम्भ होता है और अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा इस पदावलि के साथ समाप्त हो जाता है। इस प्रथम सोपान से देवीजी का आशय छायावादी काव्य चेतना से ही है जिसमें कवि ने प्रकृति की अनेकरूपता परिवर्तनशील विभिन्नता के साथ तादात्म्य किया और उसका मानवीकरण करके हमारे सामने प्रस्तुत किया। प्रकृति की इस सचेतनता के मूल में उसकी अपरिमित जिज्ञासाएँ कुतूहल की भावनायें रही हैं जो इस प्राकृतिक शक्ति की असीम चेतना और कवि की ससीम चेतना को अनुबंधित करके अभिव्यंजित हुई हैं। इसी के बाद रहस्यवाद का द्वितीय सोपान प्रारम्भ हुआ जिसकी विशेषताओं के विषय में कोई भ्रांति नहीं है। रहस्यवाद की प्रथम और द्वितीय सोपान की विशेषताओं का सूक्ष्म निराकरण वाजपेयी जी ने किया है जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

(८) अलौकिक शक्ति से शान्त और निश्छल सम्बन्ध

डा० रामकुमार एक साथ बहुत कुछ हैं। वे कवि हैं नाटककार हैं शोधकर्ता और समीक्षक हैं। उन्हें रहस्यवादी कवि कहा जाता है और रहस्यवाद के ऊपर आपका गम्भीर अध्ययन भी है। आपके अनुसार रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त

और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता।' इस परिभाषा में आई हुई कुछ पदावलियों यथा, अन्तर्निहित प्रवृत्ति, दिव्य और अलौकिक शक्ति तथा उससे सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता आदि भी कतिपय हिन्दी के डाक्टरों की समझ में नहीं आई हैं किन्तु तथ्य तो स्पष्ट हैं उनमें भ्रान्ति नहीं है। हाँ, जहाँ तक जीवात्मा का परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने की आकुलता का प्रश्न है, इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है, इसलिये वर्मा जी की यह परिभाषा अव्याप्ति दोष से ग्रस्त है।

उपर्युक्त प्राधिकारिक समीक्षकों तथा कवियों के अतिरिक्त हिन्दी में हर दूसरे लेखक ने रहस्यवाद की अपनी निजी परिभाषा प्रस्तुत की है। किन्तु यदि उन पर विचार किया जाय तो वे उपर्युक्त परिभाषाओं का ही यत्किंचित परिवर्तित रूप हैं। पुनरुक्ति के कारण हम उन्हें प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं।

अंग्रेजी में रहस्यवाद को (Mycticism) कहा जाता है। यह शब्द (My) मूल धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है चुप रहना। मिस्टिक या मिस्टिकल का पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित ने अपने प्रमाणिक कोष में जो अर्थ दिया है, वह इस प्रकार है—गूढ़ार्थ, गुह्य, गुप्त, गोप्य और रहस्य। रहस्यवाद या मिस्टिसिज्म पर गम्भीर अन्वेषण और विवेचन का कार्य करने वाले स्पेन्सर तथा अडरहिल के मत हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

(९) आनन्दमयी भावातिरेकता की स्थिति

स्पेन्सर के अनुसार 'रहस्यवाद हृदयमूलक धर्म है और जब वह किसी (अनन्त अज्ञात) शक्ति से संस्पर्शित हो जाता है तब आनन्दमयी भावातिरेकता की स्थिति का जन्म होना स्वाभाविक है। यहाँ तक कि उसके साथ भावात्मक नृत्य और गीत भी उन्मित हो जाते हैं।

Mysticism is a religion of the heart and when the heart is touched it is natural that there should be divine ecstacies, accomponied even by rapturous dancing and singing

—Joyous Musticism : Spencer

(१०) भगवत्सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला

अडरहिल ने रहस्यवाद को मानवीय व्यक्तित्व का विलयन कहा है। उसके अनुसार वस्तुतः रहस्यवाद तभी उत्पन्न होता है जब साधक या कवि अपने व्यक्तित्व को किसी महत् शक्ति में विलीन कर देता है। व्यक्तित्व विलयन के इस व्यापार में तर्क नहीं प्रत्युत श्रद्धा की अतीव आवश्यकता होती है। अडरहिल ने यह बात स्वीकार

करते हुए कहा है कि रहस्यवाद भगवत्सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला है। रहस्यवादी वह व्यक्ति है जिसने किसी न किसी सीमा तक इस एकता को प्राप्त कर लिया है अथवा जो उसमें श्रद्धा विश्वास रखता है और जिसने इस एकता सिद्धि को अपना चरम लक्ष्य बना लिया है। (प्रक्टिकल मिस्टिसिज्म)।

थिआलाजिया जर्मनिया ने इस तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'He who would know before he believeth cometh never to true knowledge –Theologia Germania

अर्थात वह जो श्रद्धा विश्वास के पूर्व ही किसी वस्तु को बुद्धि के द्वारा समझने की चेष्टा करता है सत्य के वास्तविक रूप को नहीं जान सकता। भारतवर्ष में भी रहस्यानुभूति को समझने के लिए श्रद्धा को आवश्यक उपकरण समझा गया है।

(११) विवेकजन्य मूकता

जर्मनी के एक अन्य महान दार्शनिक रहस्यवादी ने अपने ग्रन्थ में ईश्वरानुभूति की अनिर्वचनीयता की विशद चर्चा के उपरान्त सेंट आगस्टाइन का अधोलिखित उद्धरण अपने मत की पुष्टि में प्रस्तुत किया है—

'ईश्वर के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति का सर्वोत्तम कथन यही हो सकता है कि वह अपने अन्त विवेक और बुद्धिमत्ता के बल पर उसके सम्बन्ध में मौन धारण कर ले।' (लाइट लाइफ एण्ड लव प १–२।) इस विवेकजन्य मूकता का यही आशय है कि ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जायगा वह कम ही रहेगा। नेति–नेति का भी यही अर्थ है।

(१२) अन्तर्ज्ञान का आश्रय

अभीष्ट लक्ष्य तक साधक को पहुँचाने का एक ही साधन होता है और वह अन्तर्ज्ञान ही है। अन्तर्ज्ञान का अर्थ है आत्मा द्वारा परमात्मा की प्रत्यक्षानुभूति। इस विषय में डा० रानाडे ने लिखा है कि 'अन्तर्ज्ञान बुद्धि भावना अथवा इच्छा शक्ति का विरोध न करके इन सबको भेदकर इनके पीछे स्थित रहता है रहस्यवादी साधना में बुद्धि इच्छा शक्ति और भावना सभी आवश्यक हैं बस इन्हें अन्तर्ज्ञान का आश्रय मिलना चाहिए। रहस्यवाद में अन्तर्ज्ञान की प्रमुखता के कारण ही उसे अनुभूत्यात्मक व्यापार कहा गया है जिसे बुद्धि के द्वारा न तो व्यक्त किया जा सकता है, न उसका विवेचन विश्लेषण और कदाचित इसीलिए विश्व के सभी महान रहस्यवादी कवि रहस्य सत्ता के विश्लेषण के समय अपनी असमर्थता स्वीकार करके उसे 'गूँगे का गुड़' कह उठते हैं। कबीर ने यही किया। रवीन्द्र ने भी यही किया। प्रसाद जी ने भी अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली।

जी० एम० वाट ने (The Intuition of God) में भी यही बात कही है।

अन्तर्नान का स्वरूप विश्लेषण करते हुये उन्होंने साधक की कठिनाइयों की ओर भी संकेत किया है। उन्हीं के शब्दों में रहस्यवादी अपनी साधना में ऐसी राहों से गुजरता है, जहाँ से कोई न गुजरता हो। उसे वह चीज प्राप्त होती है जो केवल परम्परा पालन से नहीं मिल सकती, वह है—तीव्र और प्रत्यक्ष अन्तर्दृष्टि के एक क्षण में ईश्वर की अनुरागमयी अनुभूति।' (पृ० २१)।

(आ) रहस्यवाद की विविध अवस्थायें

रहस्यवाद में कवि और परमोच्च सत्ता के बीच वही सम्बन्ध होता है जो आराधक और आराध्य, उपासक और उपास्य साधक और साध्य अथवा ज्ञाता और ज्ञेय के बीच होता है अतएव संतों ने अपनी साधना द्वारा साध्य को प्राप्त करने के लिए जितनी अवस्थाओं का वर्णन किया है, उतनी ही अवस्थायें रहस्यवाद की भी हो सकती हैं। संक्षेप में उन्हें हम इस क्रम से प्रस्तुत कर सकते हैं।

(१) परमात्मा के प्रति आश्चर्य कुतूहल और जिज्ञासा की भावनायें

यह कवि या साधक की प्रथम अवस्था है जब वह ईश्वर की लीला से विस्मय विमुग्ध होकर केवल किसी अज्ञात और महान सत्ता का आभास पाने लगता है। परम सत्ता के प्रति रहस्यभरी यह जिज्ञासा की भावना प्रायः हर रहस्यवादी कवि की रचनाओं में मिल जाती है। रहस्य और विस्मय की भावनायें छायावादी काव्य की भी प्रमुख विशेषतायें हैं। किन्तु केवल यही अवस्था रहस्यवाद का चरमोत्कृष्ट रूप नहीं है, यह तो उसका प्रथम सोपान है। उदाहरणार्थ, पंत जी की 'मौन निमंत्रण' शीर्षक प्रगीत रचना में केवल जिज्ञासा कुतूहल की भावनायें ही व्यक्त हुई हैं, एकाकारता या तन्मयता की अवस्था का चित्रण नहीं है।

विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने नक्षत्रों से कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन।

वैदिक ऋषि तथा प्रसाद की जिज्ञासाओं का स्वरूप हम इस निबंध के आदि में देख चुके हैं। रहस्यवादी काव्य में यह प्रथम अवस्था आवश्यक रूप में हो यह तथ्य अनिवार्य नहीं है। उदाहरणार्थ, गुरु के उपदेश से कबीर ईश्वर की ओर आकृष्ट हो जाते हैं अतएव उनके पदों में यह प्रथमावस्था विरल या प्रायः नहीं के बराबर मिलती है—

जानी जानी रे राजा राम की कहानी
अंतर जोति राम परकासा गुरु मुख विरले जानी—कबीर।

(२) सवत्र परमात्मा की झाकी देखना तथा आत्मा परमात्मा के अद्व त सम्ब ध के प्रति दृढ आस्था

अध्ययन चिंतन मनन (आत्म ज्ञान) अथवा गुरु उपदेश के द्वारा जब साधक को आत्मा परमात्मा के बीच अभेद सम्ब ध का ज्ञान हो जाता है और जब वह अपन इष्ट को सवत्र, प्रकृति क कण कण म देखन लगता है तब रहस्यवाद की द्वितीय अवस्था प्रारम्भ होती है। अद्व तावस्था का ज्ञान और परम सत्ता का सवत्रिक रूप से दशन-य दो तथ्य इस अवस्था म विशेष आवश्यक होत हैं। भगवत गीता म परम सत्ता को ही इस सष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है—

यच्चापि सवभूताना बीज तदहमजु न।
नतदस्ति बिना यत्स्या मया भूत चराचरम।

गीता १०/३९

अर्थात् ह अजु न, समस्त प्राणियो की उत्पत्ति का कारण मैं ही हूँ। जो कुछ जड चतन है वह मरे बिना नही है। अथ यह है कि जड जगम-सवत्र ईश्वर की सत्ता विद्यमान है सब ईश्वर क अश हैं और कवि या साधक जब इस तथ्य को जान जाता है तब उसक अत करण म उस परम सत्ता के प्रति रागात्मकता प्रगाढ होती जाती है। कबीर का निम्न दोहा इस प्रसग म देखा जा सकता है—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

पन्त जी ने रहस्यवाद की इस द्वितीय अवस्था को अपन एक प्रगीत म इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

एक ही छबि क असख्य उडगन
एक ही सब म स्पदन।
एक छबि के विभाव म लीन,
एक विधि के आधीन॥
एक ही ता असीम उल्लास
विश्व म पाता विविधाभास॥ (परिवतन)

(३) दशन लालसा, परमात्मा के प्रति गहरा आकषण, प्रेम और विरह का अनुभव

ईश्वर की सावत्रिक झाकी देखन क अनन्तर कवि या साधक के अ त करण म जो विशेष अनुभूति जाग्रत होती है वह उसक दशन की उत्कृष्ट लालसा है। इस अवस्था विशेष म भक्त साधक या ज्ञाता क अन्त करण म परमोच्च सत्ता क प्रति गहरा आकषण उदभूत होता है और वह उसक प्रेम विरह की विविध अनुभूतियां करन

लगता है। कबीर अपने पदों में इस अवस्था में 'कबर मिलैंगे आइ' की रट लगाकर परम तत्व के दर्शन की प्रार्थना करते हैं—

विरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलैंगे आइ॥

नित्य दर्शन की यह पिपासा गम्भीर वियोग वर्णन में समाप्त होती है। कबीर के पदों में इस स्थिति की अत्यन्त मार्मिक अनुभूतियाँ मिलती हैं—

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़िया छाला पड़या, राम, पुकारि-पुकारि॥
आइ न सकौं तुज्झ पै, सकूं न तुज्झ बुलाइ।
जियरा या ही लेहुगे, विरह तपाइ-तपाइ॥

महादेवी के निम्नांकित गीत में उनकी प्रथम मिमनावस्था की अनुभूति स्मृति और वर्तमान काल की वियोग व्यथा का स्वरूप देखा जा सकता है—

इन ललचाई पलकों पर,
पहरा था व्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला,
उस चितवन ने पीड़ा का।

गई वह अधरों की मुस्कान, मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।
गए तबसे कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण!

[४] परमात्मा के साथ आत्मा के अनेक सम्बन्धों की स्थापना

यह चतुर्थ अवस्था है। इस सोपान पर आकर कवि या साधक विविध प्रकार से परमात्मा के साथ अपने सम्बन्धों की चर्चा करके उसका सान्निध्य पाने के लिए विह्वल हो उठता है। कबीर दास जी ने इस सन्दर्भ में विशेष मार्मिक पद लिखे हैं—

हरि मोर पीव मैं हरि की बहुरिया, या
हरि मोर पीव भाई हरि मोर पीव
हरि बिनु रहि न सकै मोर जीव॥

पति-पत्नी अथवा दाम्पत्य जीवन के रूप में ही आत्मा परमात्मा के पारस्परिक मधुर सम्बन्धों का प्रकटीकरण सम्भव है और इसी रूप में हिन्दी में इसका प्रकृष्ट स्वरूप मिलता है। पत्नी के हृदयोद्गारों की जितनी अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति पति से हो सकती है, उतनी अन्य किसी से नहीं हो सकती, अन्य सम्बन्धों में नीति, मान, मर्यादा, सामाजिक, धार्मिक बन्धन, स्पष्ट अभिव्यक्ति पर नियन्त्रण करते हैं। अतएव

जितने भी हिन्दी के रहस्यवादी कवि हुए हैं उन्होंने दाम्पत्यरूप म ही अपनी विह्वलता, मिलनोत्कण्ठा व्यक्त की है। सूफी कवियों ने भी यही माग अपनाया किन्तु वहा पर फारसी के प्रभाव के कारण ईश्वर को प्रियतमा तथा आत्मा को प्रियतम या साधक माना गया है। जायसी आदि ने अपने रहस्यवाद म पदमावती को परमात्मा मानकर ही रत्नसेन रूपी आत्मा से उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करवाये हैं। हिन्दी मे आत्मा प्रियतमा तथा परमात्मा प्रियतम के रूप म प्रस्तुत किया गया है।

ईश्वर के प्रति मार्मिक विरहानुभूति से सम्बन्धित कबीर का एक पद हम उद्धृत कर रहे हैं

बालम आओ हमरे गेह रे तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहे तुम्हारी नारी मोको यह सदेह रे।
एक मेक ह्व सेज न सोवे तब लग कस नेह रे।
अन्न न भावे नींद न आवे गह बन धरे न धीर रे। —कबीर।

गोस्वामी तुलसी जी ने अपने रहस्यात्मक पदा म स्वामी और सेवक के आदर्शों तथा कर्तव्यों की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है

ब्रह्म तू हौं, जीव, तू ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा, सब विधि हितु मेरो।

तू ब्रह्म है मैं उसका क्षुद्र अंशजीव हू तू ठाकुर है और मैं अनुचर हू। तू तात, मात, गुरु सखा सब कुछ होकर मेरा हित चिंतक है। इस तरह विविध प्रकार से उन्होंने ईश्वर से अपने सम्बन्धों को स्थापित किया है।

सत कवि रदास ने भी यही काय किया है। वे अपने एक पद म कहते हैं—

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती,
जाकी जोति बर दिन राती।
प्रभु जी, तुम मोती हम धागा
जसे सोनहिं मिलत सुहागा।

आधुनिक युग म निराला जी ने भी तुम और मैं शीर्षक कविता म इसी अद्वैतवादी सम्बन्ध को विविध प्रकार क सम्बन्धों द्वारा व्यक्त किया है

तुम तुग हिमालय शृग
और मैं चचल गति सुर सरिता
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त कामिनी कविता
तुम प्रेम और मैं शान्ति।

महादेवी जी ने भी 'बीन भी हू मैं तुम्हारी रागिनी भी हू' नामक प्रगीत म यही बात अभिव्यंजित की है। इस प्रकार परमात्मा के साथ आत्मा के विविध

स्वरूपो का निर्धारण करना रहस्यवाद की सामान्य विशेषता ही है। इस अवस्था विशेष मे अद्वैतवादी भावना की अविकल अभिव्यक्ति होती है।

आत्म समर्पण और पूर्णत तादात्म्य भावना

यह रहस्यवाद की अंतिम अवस्था है जहा साधक या कवि पूर्णत आत्म समर्पित होकर अपने व्यक्तित्व का विलयन परमात्मा म कर देता है। रहस्यवाद का यही चरम रूप है। साध्य साधक का महामिलन, अंश और अंशी की एकाकारता या व्यष्टि का समष्टि म पर्यवसान ही रहस्यवाद का अंतिम लक्ष्य होता है जो इसी अवस्था विशेष मे सहज सिद्ध होता है। इस संदर्भ म कबीर के कतिपय पद द्रष्टव्य हैं

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउ।
गल राम की जेवडी, जित खीचें तित जाउ॥

कबीर की पूर्णत आत्मसमर्पण की भावना अच्छी तरह व्यक्त हुई है।

बहुत दिनत थै मैं प्रीतम पाये
भाग बडे घर बैठे आये।
मगलचार मॉही मन राखौ
राम रसाइण रसना चाखौ।
—
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा
सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा॥

—कबीर

इस पद म मिलन के अवसर की आन दातिरकता का चित्रण किया गया है। कबीर न कुछ नही किया राम न ही अनुग्रहपूर्वक अपना कर उन्ह अचन सौभाग्य प्रदान किया है।

मीराबाई की पदावली म भी रहस्यवाद की इस अवस्था के अगणित मार्मिक चित्र मिल जाते हैं। वे पूर्णत ईश्वर की अनन्य आराधिका हैं जो कुछ वह देगा, वही लेंगी, जो पहनाएगा पहनेंगी, और यदि वह बेचना भी चाहेगा तो मीरा चुप चाप, प्रियतम के आदेशानुसार बिक भी जायेंगी। समर्पण की ऐसी अनन्त भावना और एकान्त निष्ठा की ऐसी सघन अभिव्यक्ति अन्य रहस्यवादी कवियो मे नही मिलती। वस्तुत मीरा का नारी हृदय और वियोगजन्य उनकी वेदनायें सहज निश्छल रूप मे उनके गीतों म अभिव्यक्त हो गई हैं। निम्नांकित गीत म उनकी प्रियतम के प्रति अगाधनिष्ठा और प्रेमजन्य अनन्यता का दिग्दर्शन देखा जा सकता है

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई, साधो सकल लोक जोई।

अब तो बात फैल गई जान सब कोई।
मीरा प्रभु लगन लागी, होनी होय सो होई।

जो कुछ होना हो, होता रहे मीरा की प्रीति तो एकमात्र गिरिधर से है, वही उनके जीवन अवलम्बन हैं। समाज का उन्हें किंचित भी भय नहीं है, कोई कुछ भी कहता रहे पर वे अपने पथ पर अडिग है और वस्तुत कौटुम्बिक भर्त्सना का पात्र बनकर भी उन्होंने वन में निकल जाना श्रेयस्कर समझा, किन्तु अपनी इस विराट प्रीत को वे किंचित भी कम न कर सकी।

आधुनिक युग में महादेवी के रहस्यप्रगीतो में भी आत्म समर्पण और एकाकारता के अच्छे चित्र मिलते हैं किन्तु देवी जी मिलन चाहते हुए भी अपने व्यक्तित्व का विलयन नहीं चाहती, इसलिए विरह ही उनका एकमात्र आराध्य बन गया है

हो गई आराध्य मय मैं
विरह की आराधना ले।

उनकी एकाकारता का चरम रूप निम्नांकित गीतांश में देखा जा सकता है

आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।

डा० रामकुमार वर्मा के रहस्यगीतों में भी यत्र-तत्र समर्पण की भावनायें और एकाकारता का आनंद अभिव्यक्त हुआ है किन्तु वे मूलत रहस्यवादी कवि न होकर प्रेम और शृंगार के कवि हैं। रहस्य उनकी एक मनोवृत्ति रही है और अधिकतर उन्होंने रहस्यवाद का प्रथम दो तीन अवस्थाओं के ही चित्रांकित किए हैं। वस्तुत जो रहस्य की *मूल साधना समर्पण और एकाकारता* होती है, उस सोपान पर वे पहुँच नहीं सके हैं।

ऊपर रहस्यवाद की जिन अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है वे क्रमश इसी रूप में साधक या कवि के अंत करण में जागृत होती है यह वस्तु नहीं है यह उनका एक उद्भूत होने का सामान्य क्रम है। कवि अपनी प्रतिभा के बल पर आरम्भिक अवस्थाओं का चित्रण न करके भी अपनी साधना के श्रेष्ठ सोपानों पर आ सकता है।

(५) रहस्यवाद के विभिन्न सोपान

यहां हम दार्शनिक और साधनात्मक रहस्यवाद के भी विभिन्न सोपानों की चर्चा कर देना आवश्यक समझते हैं। ऊपरवर्जित अवस्थाओं का वक्ता त है, वे अवस्थायें रहस्यगीतों में पाई जाती हैं। साधकों ने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधारण प्राण विश्व प्राण और महाप्राण—ये तीन सोपान माने हैं। प्रथमावस्था में साधक स्वप्राण की साधना में तल्लीन रहता है द्वितीय अवस्था में साधक की आत्मचेतना

समस्त जगत से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है और अंतिम अवस्था में साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है। इन्हें हम दूसरी पदावली में जागरण, आत्मा का व्यापकत्व तथा समर्पण और एकाकार की स्थितियां भी कह सकते हैं।

सूफी रहस्यवाद में शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत—साधना के इन चार मार्गों के आधार पर रहस्यानुभूति की विविध अवस्थाओं को—चार सोपानों में विभक्त कर दिया गया है। इन्हें हम जिज्ञासात्मक अवस्था, विश्वासपूर्ण अवस्था, विरहानुभूति की तथा आत्मा-परमात्मा के मिलने की अवस्था कह सकते हैं। इनमें और उपर्युक्त विवेचित हिन्दी रहस्यवाद की अवस्थाओं में केवल नाम का अंतर है मूल वस्तु प्रायः एक ही है। पश्चिमी रहस्यवाद में अवश्य अवस्थाओं का संकेत किया गया है। यद्यपि इनमें भी पूर्णतः साम्य है किन्तु वहां पूर्णतादात्म्य के पूर्व एक गहन अंधकार की अवस्था मानी गई है, जिससे गुजरकर और परीक्षित होकर ही साधक साक्षात्कार और आत्म विसर्जन कर पाता है।

(ई) रहस्यवाद के भेदोपभेद

पाश्चात्य और भारतीय प्रायः सभी विद्वानों ने रहस्यवाद के प्रमुख निम्नांकित भेद किए हैं —

(१) ज्ञान और दार्शनिकता प्रधान रहस्यवाद
(२) दाम्पत्य मूलक या प्रेमपरक रहस्यवाद।
(३) सौन्दर्य मूलक रहस्यवाद।
(४) भक्ति और उपासना सम्बन्धी रहस्यवाद तथा
(५) प्राकृतिक रहस्यवाद।

बाबू गुलाबराय जी ने साधनात्मक रहस्यवाद को भी रहस्यवाद का एक भेद कहा है किन्तु उन्होंने सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद को पृथक महत्व न देकर उसे दाम्पत्य मूलक रहस्यवाद के साथ संयुक्त कर दिया है और इस प्रकार उनके भी भेदोपभेदों की संख्या ५ ही है। हमने यहां पाश्चात्य विद्वान स्पजन के आधार पर रहस्यवाद के भेदोपभेदों को प्रस्तुत किया है।

[१] दार्शनिक रहस्यवाद

स्पजन के अनुसार रहस्य भावना दार्शनिक तब कही जायगी जब कवि अपनी धारणायें इस ढंग से सामने रखे कि वह बुद्धि और भावना को समान रूप से प्रभावित करे। ऐसे लेखक प्रायशः बुद्धिवादी होते हैं और उनका मूल सम्बन्ध सत्य से रहता है।

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तत कथ्यौ ग्यानी।

कबीर के इस दोहे म दार्शनिक रहस्यवाद के ही दर्शन होते हैं। निराला की 'तुम और मैं' रचना भी दार्शनिक रहस्यवाद का अच्छा उदाहरण है।

दार्शनिक रहस्यवाद म जिज्ञासा आश्चय, कुतूहल की भावनायें प्रमुख रहती हैं, इनम तक कम दार्शनिक चेतना और अंतिम सत्य को जानने की चेष्टा अधिक रहती है।

[२] प्रेमपरक रहस्यवाद

रहस्यवाद का मधुरतम रूप प्रमपरक रहस्यवाद म ही व्यंजित होता है। पति पत्नी के प्रम की गुह्यता प्रियतमा की प्रिय के वियोग म विरह कातर विदग्ध भावनायें, निवेदन, द य समपण एकाकार आदि की विविध मन स्थितियाँ इसी म निर्व्याज रूप से अभिव्यजित हो पाती हैं। प्रेमपरक रहस्यवाद म दि य या अलौकिक प्रेम को ही जीवन की रहस्यात्मकता का सुलझाव समझा जाता है कबीर, जायसी मीरा महादेवी आदि की रचनाओं मे रहस्यवाद के प्रेमपरक रूप का निमल और पुनीत रूप अभिव्यजित हुआ है   कबीर न तो अपने नयनो की कोठरी मे पुतली का पलग बिछाकर और पलको की चिक डालकर अपने प्रियतम को बिठाकर रिझाया है।

नयनन की करि कोठरी, पुतली पलग बिछाय।
पलकन की चिक डारि क पिय को लीन्ह बिठाय ॥

[३] सौ दयमूलक रहस्यवाद

सौ दय को आध्यात्मिकता का भावात्मक प्रकाशन कहा जाता है। अपने प्रियतम के अविनश्वर सौ दय की यापक झाकी प्रस्तुत करके उसके प्रति आकृष्ट होना या सौन्दर्य को दिव्य रूप और रहस्यात्मक रूप म प्रस्तुत करके सौन्दयमूलक रहस्य वाद की सष्टि की जाती है। यहाँ प्रियतम का दि य सौन्दय ही साधक की चेतना को उद्दीप्त करके उसे अपरिमित आह्लाद प्रदान करता है। प्रसाद जी के 'तुम कनक किरण के अ तराल म लुक छिपकर चलते हो क्यो   नामक प्रगीत मे सौ दयमूलक रहस्यवाद की ही अभिव्यजना हुई है। इस रचना म उ होने उपादान लक्षणा के द्वारा लाज भरे सौ दय को प्रस्तुत किया। वे सौ दय की स्थूलता को न दखकर उसकी अती द्रिय या वायवीय दि यता का वणन करते हैं और उसके अन्तराल मे निवास करने वाला अरुणिम सौ दय चेतना की रहस्यात्मकता को वे कुतूहल और विस्मय की दष्टि से देखते हैं।

[४] भक्ति और उपासना सम्ब धी रहस्यवाद

रहस्यवादी चेतना का चरम परिपाक भक्ति और उपासना मे ही होता है। भक्ति और उपासना की भावना के कारण ही रहस्यवादी काव्य का सृष्टि भी हुई, अनन्य प्रेम और अपूव आस्तिकता, श्रद्धा और भक्ति की भावनायें इस प्रकार के

रहस्यवाद में अपने उत्कृष्ट रूप में अभिव्यंजित होती हैं। नवधा भक्ति और उपासना की विभिन्न पद्धतियों का समावेश भी भक्ति और उपासना सम्बन्धी रहस्यवाद में होता है।

सूर, तुलसी और मीरा के पदों में भक्ति और उपासना-परक रहस्यवाद की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक काल में भक्ति और उपासना की भावना की जगह आस्तिकता शेष है, इसलिए प्रेमपरक रहस्यवाद के दर्शन तो महादेवी जी के गीतों में मिल जाते हैं किन्तु उनके गीत भक्ति उपासना के अन्तर्गत समाहित नहीं किए जा सकते। वैसे स्फुट रूप से प्रसाद, निराला और महादेवी के गीत भी इस प्रकार की विशेषताओं से समन्वित हैं पर वे अपवाद ही कहे जायेंगे।

(५) प्राकृतिक रहस्यवाद

ईश्वर की सौन्दर्य छवि समस्त सृष्टि में देखने, परमात्मा के प्रति अपने विविध प्रकार के सम्बन्धों की नियोजना तथा तन्मयता और एकीकरण की अभिव्यक्ति के मूल में प्राकृतिक जगत के प्रतीकों का ही सहारा कवि को लेना पड़ता है और कहीं कहीं प्रकृति के माध्यम से ही वे उस परमसत्ता की झांकी प्रस्तुत करने लगते हैं, ऐसे स्थलों पर प्राकृतिक रहस्यवाद की सृष्टि हो जाती है। इनमें से प्राकृतिक प्रतीक योजना का बाहुल्य तो सभी रहस्य कवियों में मिलता है किन्तु विशुद्ध रूप से प्राकृतिक रहस्यवाद की सृष्टि आधुनिक युग की देन है। यह प्रकृति छायावाद का ही अग्रिम चरण है। छायावाद प्रकृति को सचेतन रूप में देखता है रहस्यवादी–छायावादियों ने उस सचेतन सत्ता को परमसत्ता के रूप में निरूपित किया है। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के अनेक प्रगीत इस श्रेणी में आ जाते हैं। प्रसाद का 'हे सागर संगम अरुण नील', 'कामायनी' के 'आशा' सर्ग में—'महानील इस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान' वाला अंश निराला की जुही की कली महादेवी की, 'रूपसि तेरा घन केश पाश' या 'रूपसि ! तेरा नतन सुन्दर, आलोक तिमिर सित असित धार' आदि प्रगीत इस प्रसंग में उदाहरणस्वरूप देखे जा सकते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद के केवल दो ही भेदों की चर्चा की है—

(१) भावात्मक रहस्यवाद और

(२) साधनात्मक रहस्यवाद।

वस्तुतः रहस्यवाद के जिन भेदोपभेदों की चर्चा ऊपर की गयी है वे भावात्मक रहस्यवाद की ही शाखायें हैं। साधनात्मक रहस्यवाद में योग और कर्मकाण्ड की साधना प्रमुख होती है। गोरख कबीर के कतिपय पद महायानी बौद्धों, शाक्तों और तांत्रिकों का रहस्यवाद इसी प्रकार का था। श्री रामजीलाल वधौतिया ने 'हिन्दी साहित्य और विभिन्नवाद' शीर्षक की अपनी रचना में साधनात्मक रहस्यवाद का उदाहरण

इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

अवधू जागत नींद न कीज।
काल न खाइ, कल्प नही व्यापै, देही जुरा न छीज।
उलटी गग समुद्रहि सौखे ससिहर सूर गरास।
नवगिह मारि रोगिया वठे जल मे ब्यव प्रकास।
डाल गह्या प मूल न सूय मूल मह्या फल पावा।
बोवई उलटि शरप कौ लागी, घरणि माहारस खावा।
यठि गुफा म सब जग देष्या बाहरि कछू न सूझ।
उलट धनिक पारधी मारयो यहु अचरज कोइ बूझै।

साधनात्मक रहस्यवाद म योग सम्बधी गुह्य बाता की भरमार होने के कारण बुद्धिज य उत्तरवासियो के अनिरेक और कम काण्डो के आधिक्य के कारण नीरसता अस्पष्टता गुह्यता नग्नता, अश्लीलता तथा बौद्धिकता आ गयी है। इसी कारण बहुत समय तक तो बौद्धा, तात्रिको शाक्ता का यह काव्य साहित्य का अग ही नही माना जाता रहा है किन्तु उसमे भी, (भले ही सीमित मात्रा म सही) रसास्वादन की क्षमता है, और अनेक लोग पम्कर आज भी उसम तामयता का अनुभव करते हैं, अतएव अब वह भी साहित्य की श्रेणी म परिगणित किया जाने लगा है।

डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने रहस्यवाद के उपयुक्त सभी भेदा को औपचारिक अप्राकृतिक और अनावश्यक कहा है और उन्हाने अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए रहस्यवाद का निम्न दो रूपो मे विभक्त किया है —

(क) यथाथ रहस्यवाद और
(ख) काल्पनिक रहस्यवाद।

प्राचीन सत कवि—कबीर दादू को उन्हाने यथार्थ रहस्यवादी कहा है और आधुनिक कवि—प्रसाद पत निराला आदि को काल्पनिक रहस्यवादी। उनके इस आदि से मतलब क्या महादेवी से है, स्पष्ट नहा होता। उनके अनुसार सच्चे रहस्य वादी जीवन के अन्त तक रहस्यवादी रहत हैं किन्तु काल्पनिक रहस्यवादिता का रग समय क साथ फीका पड जाता है जसे पत और निराला के साथ हुआ।

गुप्त जी का यह विभाजन बहुत दूर तक समीचीन है किन्तु विषय की स्पष्टता के लिए हमे इनका विस्तृत विभाजन करना ही पडगा। उपयुक्त भेद रहस्य वाद के विभिन्न अग न होकर भेद विभेद ही हैं। यह दूसरी बात है कि कभी कभी एक भेद की कतिपय विशेषताएँ दूसरे म भी सम्मिश्रित दिखाई द जाती हैं।

(उ) रहस्यवाद उद्भव और विकास

[क] वदिक साहित्य मे

परमोच्च सत्ता विषयक जिज्ञासा भारतवष म अत्यन्त प्राचीन काल स मिलती

है। ऋग्वेद म प्राकृतिक रहस्य के प्रति बौद्धिक जिज्ञासायें अत्यधिक मात्रा म मिलती हैं। इसका एक उद्धरण हम आरम्भ म उद्धत भी कर चुके है। यहाँ पर हम अथववेद का एक उदाहरण वदिक जिज्ञासा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए दे रह हैं–

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्नि क्व प्रेप्सन पवत मातरिश्वा
यत्र प्रेप्सन्तीर भियन्त्यावत स्कम्भं न ब्रूहि कतम स्विदेव ■ ।

अथववद १०–७–४

अथ यह सूय किसकी अभिलाषा म प्रकाशमान है, यह पवन कहा पहुचने की इच्छा से कहाँ प्रवहमान है य सब कहा के लिए जा रह हैं वह आश्रम बताओ, वह कौन सा पदाथ है ?

इस प्रकार वदिक वाग्मय मे रहस्यवाद की प्रथमावस्था जिज्ञासा, कुतूहल, विस्मय आदि भावनाओ की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है।

(ख) उपनिषदो मे

उपनिषदा म इस मूल सत्ता के अन्वेषण का गभीर दाशनिक प्रयत्न है। सबसे पहले उनम आत्मा को अजर अमर, चिरन्तन और सावदेशिक तथा सावकालिक माना गया। एतरेय उपनिषद का यह कथन इस स दभ म उल्लेखनीय है—

पहले यह जगत एक मात्र आत्मा ही था। उसके सिवा और कोई क्रियाशील वस्तु नही थी उसन यह सोचा कि मैं लोको की रचना करूँ।' इस प्रकार इस जगत क नाना व्यापारो और वस्तुओ के मूल म आत्मा की सत्ता को मानकर उसकी अखण्डता और सावदेशिकता प्रतिपादित की गयी। भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उसे अमर माना गया। वह आदि अन्त से रहित अनादि, अनन्त और शाश्वत कही गयी और इसका ज्ञान केवल अन्तर्ज्ञान के द्वारा ही सम्भव माना गया। मुण्डकोपनिषद म इस अन्तर्ज्ञान के सम्बन्ध म इस प्रकार कहा गया है—

'सत्यन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येणनित्यम् ।
अन्त शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो य पश्यन्ति यतय क्षीणदोषा । (३–१–५)

अर्थात् सत्य, तप, सम्यक ज्ञान, ब्रह्मचय स इस अन्तर्ज्ञान या आत्मदशन की उपलब्धि होती है। तब साधक अपने शरीर के भीतर ही शुभ्र ज्योति के दशन करता है।

आत्मदशन की इस साधना को बहुत जटिल और कठिन बताया गया है। ऋषियो न इसे क्षुरस्य धारा अर्थात छुरे की धारा के समान पना कहा है। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति क लिए योग का भी सहयोग लिया जाता है। कठोपनिषद और मुण्डकोपनिषद मे इस विषय म कहा गया है कि इन्द्रियाँ, मन, हृदय या कल्पना से परमब्रह्म का दशन सहज नही है उस प्राण को ऊर्ध्व करके और ब्रह्म का अनवरत

ध्यान करव ही पाया जा सक्ता है। रहस्यवा॰ म योग का यह प्रयोग हि ॰ी क सिद्धो नाथो एव सन कवियो न किया है। यौगिक क्रियाओ और साधनाओ का आत्म ज्ञान की प्राप्ति म सहयोग आवश्यक बताकर सिद्धो, नाथो न इस परम सत्ता का गुह्य बना दिया और उसे प्राप्त करन के लिए गुह्य साधनाओ का प्रयोग भी करन लग। यह साधना अ तराभिमुखी थी जिसम लौकिक विधि विधाना का कोई स्थान नहीं था। इसलिए भी इसे गुह्य कहा जाने लगा था। इसक ठीक विपरीत परमब्रह्म की प्राप्ति के लिए समाज म एक अ य साधारण उपासना पद्धति भी प्रचलित थी जिसम सामाजिक विधि विधानो का याग तथा इसम लोक धम की प्रतिष्ठा के साथ ब्रह्म की उपासना और प्राप्ति पर बल दिया जाता था। भक्त कवियो न इसी दूसरा सहजोपासना वाली पद्धति का अवलम्बन लिया और ब्रह्म के अ॰ त दशन करन का प्रयास किया। इस भक्ति पद्धति म अन॰यता का भाव सर्वाधिक अपेक्षित था। यह पूणत प्रम और श्रद्धा पर आश्रित थी।

(ग) मध्य काल मे

गुह्य साधना तत्र और याग के अतिचार स कुछ ही दिना म भ्रष्ट हो गयी। उसका आवरण ओढकर ढोंगियो ने ऐस सम्प्रदाया की स्थापना की जिसम बाह्य आचार विधानो को एकदम उपेक्षित कर भरवी चक्र तारा, कृत्या आदि का तान्त्रिक उपा सना पर बल दकर उच्छ खलता और अनतिकता का नग्न प्रदशन किया गया। दक्षिण म देवदासी की प्रथा भी इसी तांत्रिक साधना की उपज थी। धीरे धीरे एक ब्रह्म टूट–टूट कर अनक देवी दवताओ म बिखर गया और तांत्रिक इन देवी–देवताओ को प्रसन्न करने के लिए नर-बलि, पशुबलि भी दन लग। इस समपण का उद्देश्य यह था कि य नर या बच्चे प्रभु स प्रेम कर आज॰म उसी की साधना म रत रहे किन्तु इस कमकाण्ड का भयकर दुष्परिणाम भारत को भोगना पडा।

इस प्रकार वदिक कालीन शाश्वत ब्रह्म सत्ता की जिज्ञासा वेदातो (उपनिषद काल) म आत्मा के रूप म प्रतिष्ठित हुई। तत्पश्चात आगमो म उस मानवीय भाव ना॰ा का सान्निध्य मिला और अ त म योगियो, तांत्रिको क ह थो म फूलती फलती हुई वह अ तत भरवीचक्र दवदासी आदि की साधना म परिणत होकर नष्टभ्रष्ट हो गयी।

(घ) भक्ति युग मे

भक्ति काल युग म सूर तुलसी, मीरा आदि की उपासना साकार ब्रह्म की उपासना है। कबीर आदि सत कवि निराकार ब्रह्म का लकर चले हैं। सूफी कविया न साकार ब्रह्म को ही अपनी साधना का लक्ष्य बनाया है। इन सभी क मूल प्रेरणा स्रोत उपनिषद् और आगम पुराण रहे हैं। अतएव रहस्य भावना का तात्विक क

समान विकृत रूप इनमें नहीं मिलता। सूफी कवि फारसी रहस्यवाद से प्रभावित रहे हैं।

विषय की स्पष्टता के लिए यहाँ हम इस युग के प्रमुख रहस्यवादी कवियों के रहस्य-विषयक दृष्टिकोण तथा उनकी प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

ऐतिहासिक क्रम विकास की दृष्टि से कबीर का नाम सर्वप्रथम आता है। ये हिन्दी के प्रथम और अन्यतम रहस्यवादी कवि हैं। कबीर 'राम की बहुरिया' हैं और उनके राम घट घट के वासी हैं। सम्पूर्ण जगत उनकी आभा से प्रदीप्त है। उन्हीं के वियोग में वे तड़पते रहते हैं। एवलिन अंडरहिल ने 'वन हंडरेड पोयम्स आफ कबीर' की भूमिका में भाव विदग्ध होकर लिखा है कि "कबीर उन इने गिने सर्वोत्कृष्ट रहस्यवादियों की कोटि में हैं जिनमें संत आगस्टाइन रुयसब्रुक तथा सूफी कवि जलालुद्दीन रूमी प्रमुख हैं। उन्होंने वह प्राप्त किया जिसे हम ईश्वर के प्रति एक संश्लेषणात्मक दृष्टिकोण कह सकते हैं। उन्होंने दिव्य तत्व के व्यक्तिगत और व्यक्ति निरपेक्ष, अन्तर्यामी और सीमातीत गत्यात्मक एवं स्थयात्मक पक्षों तथा दर्शन के निरपेक्ष ब्रह्म और भक्ति के परम विश्वसनीय सखा के पारस्परिक चिर विरोध का अन्त कर दिया। उन्होंने बाहरी असंगत दीख पड़ने वाली इन धारणाओं को एक के पश्चात एक लेकर यह सामंजस्य पैदा नहीं किया वरन आध्यात्मिक चेतना की ऐसी ऊँचाइयों पर पहुँच कर किया—जैसा कि रूयसब्रुक ने कहा है—वे सब घुल मिलकर एकाकार हो जाती हैं और जहाँ वे पूर्ण व पूरक तत्व से दीप्त पड़ते हैं।"

उपर्युक्त उद्धरण के द्वारा कबीर की रहस्य भावना पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है साथ ही उनका महत्व भी विज्ञापित हो जाता है।

मीरा की रहस्यभावना संत कवियों की रहस्यभावना से बहुत साम्य रखती है। संत कवि रैदास उनके गुरु ही रहे हैं। किन्तु मीरा सगुण कृष्ण रूप की उपासिका हैं। संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म को अपनी उपासना का लक्ष्य बनाया है यद्यपि कबीर के पदों में सगुण निर्गुण दोनों का समन्वय है। 'सूली ऊपर सेज पिया की' आदि पंक्तियों में मीरा ने भी निर्गुण ब्रह्म का संकेत दिया है।

तुलसी और सूर में सार्वत्रिक रूप से रहस्यभावना नहीं मिलती। ये भक्त-कवि अधिक हैं। भक्तों के अन्यतम लक्षण इनके काव्य में मिलते हैं। विह्वलता, अशरण शरणता, दैन्य अनुनय विनय और उद्धार की कातर प्रार्थनायें इन कवियों के पदों में सर्वाधिक हैं। 'केशव कहि न जाये का कहिए' आदि तुलसी के पदों में रहस्य भावना का भी परिपाक मिलता है पर इन्होंने दाम्पत्य परिणय वाली रहस्य पद्धति का अवलम्बन नहीं लिया। सूर ने भी कृष्ण की लीलाओं का ही सर्वाधिक वर्णन किया है। हाँ यत्रतत्र, यथा रास प्रकरण, राधा का कृष्ण के हृदय में अपनी छाया देखकर

मान करना, कृष्ण का यशोदा माँ को मुँह खोलकर अपना विराट रूप दिखाना, उनका बहुनायकत्व आदि से सम्बन्धित पदों में रहस्यवाद का गम्भीर रूप दिखाई देता है।

जायसी आदि प्रेममार्गीय सूफी कवियों का रहस्यवाद संत कवियों से पृथकता लिए हुए है। उनका रहस्यवाद डा० भटनागर के अनुसार भागवत के प्रेम मूलक रहस्यवाद जैसा है। जहाँ जीव और ईश्वर विषयक शोध का अन्त हो जाता है ठीक वहीं से इनका रहस्यवाद प्रारम्भ होता है और फिर वह जीव और ईश्वर का सम्बन्ध मस्तिष्क की वस्तु न रहकर हृदय की वस्तु हो जाता है। उस समय जीव ईश्वर के सम्बन्ध में एक मधुर भावना की सृष्टि होती है। इस भावना में परस्पर का आकर्षण और तीव्र मिलनाकांक्षा है। इस आकर्षण को स्त्री–पुरुष के पारस्परिक आकर्षण के रूपक द्वारा उपस्थित किया जाता है। इस पर फारसी रहस्यवाद का अधिक प्रभाव पड़ा है।

(ऊ) फारसी रहस्यवाद

फारस में इस्लाम का प्रभुत्व हो जाने पर भी वहाँ के धार्मिक कट्टर पंथियों ने इस्लामी धर्म को ग्रहण नहीं किया था। मुहम्मद साहब आत्मा और परमात्मा में वही सम्बन्ध मानते हैं जो बंदा और मालिक का होता है। यह सम्बन्ध पैगम्बर के द्वारा स्थापित किया जाता है। इस्लाम में पैगम्बर की आज्ञा का उल्लंघन कुफ्र माना गया है। इसलिए उसमें रहस्य जैसी भावना उपासना को अधिक स्थान न मिल सका किन्तु फारस में परम्परा से चली आती हुई प्राचीन गुह्य साधना का प्रभाव इस्लाम से पहले विद्यमान था अतः इन गुह्य साधनावादी संतों ने अपनी साधना को क्रमबद्ध रखा। सूफी संतों ने इस्लाम की कट्टरता का विरोध करके इसी गुह्य साधना, सुरा–प्रेमोन्माद तथा उससे उत्पन्न चमत्कार को आत्मभूत कर मधुर भाव से खुदा की उपासना प्रारम्भ की। फारस में इस मधुर भावना के प्रवर्तक बायजीद बुस्तामी को माना जाता है जो इस्लाम के खलीफा अली के अनुयायी थे। कतिपय विद्वान इस फारसी मधुरोपासना पर ईसाई रहस्यवादी संतों का प्रभाव मानते हैं जो शामी रहस्यसाधना से प्रभावित थे।

वैसे तो खोजने पर इस्लाम धर्म रहस्यवादी भक्ति–पद्धति के सूत्र हजरत मुहम्मद के तापसी साधना, रात्रि जागरण, व्रत प्रार्थनाओं आदि की महत्ता तथा उपयोगिता में भी मिल जाते हैं आरम्भिक सूफी इस्लाम से एक होकर भी चले हैं किन्तु हिजरी की दूसरी शताब्दी में संत राबिया (बसरा की एक महिला) को रहस्य वादी प्रेमोपासना की प्रचारक कहा गया है। तीसरी शताब्दी में इस्लाम के ईश्वरवाद के विरोध में सर्वेश्वरवाद का उदय हुआ इन सूफी मतों ने अहं ब्रह्मास्मि की तरह 'अनहलक' (मैं ही खुदा हूँ) का नारा लगाकर विश्व के कण–कण में उसकी अलौकिक सत्ता के दर्शन किये। आगे चलकर सीरिया में अबू सुलेमान अल दारानी ने

ज्ञान और आनन्द के माध्यम से रहस्यानुभूति के सिद्धान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा की। अभ
तक इस उपासना पद्धति में ईश्वर के प्रति भक्ति-भावना का प्रदर्शन, उससे मिल
की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति—लौकिक प्रणय और सुरापान की शब्दावली में होत
थी। ईरान के अन याजिद (८७४ ई०) ने सर्वेश्वरवाद को सिद्धान्ततः स्वीकार कर
फना का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। तीसरी सदी हिजरी में सूफी सम्प्रदाय निर्मित
गया था। इन्होंने कुरान की अपने ढंग से व्याख्या विवेचना करके खुदा को भी सूफ
मान लिया था। मौलाना रूम, हाफिज, उमर खय्याम, गजाली, रूमी निजामी सादी
जामी आदि यहां के रहस्यवादी कवियों में अग्रगण्य हैं। फारसी रहस्यवादी कवि
पर जब इस्लाम का अत्याचार बढ़ा तो ये भारत की ओर बढ़ने लगे। भारत
दार्शनिक चिन्तन-मनन तथा विचारधाराओं से ये कविगण पहले ही प्रभावित हो चु
थे क्योंकि खलीफा हारूं रशीद के समय यहां के अनेक दार्शनिक ग्रन्थ फारस गये थे
इन सूफी संत कवियों को बौद्ध की करुणा, अहिंसा और प्रेम-भावना, भागवत ध
की माधुर्योपासना आदि ने बहुत आकृष्ट किया था। भारत के शान्त वातावरण
रहकर सूफियों ने अपनी साधना जारी रखी। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती, सरमद आ
ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया और हिन्दी में जायसी, कुतबन, कासिम शा
मंझन, उस्मान आदि ने अपनी प्रेममार्गी रहस्य साधना से समलंकृत अनेक कृति
प्रदान की हैं।

ईसाई रहस्यवाद

यूरोप में रहस्यवाद के प्रारम्भिक बीज हम यूनान के कवियों और दार्शनि
में मिलते हैं। पाइथोगोरस दार्शनिक होता हुआ भी रहस्यवादी था। आरम्भिक रहस्
वादी कर्मकाण्डों को किया करते थे। प्लेटो ने आरफिरों के बाह्य और कर्मकाण
रहस्य साधना का मजाक उड़ाया है और कतिपय अच्छी वस्तुओं को उनसे ग्रह
भी किया है। प्लेटो को भी रहस्यवादी कहा जाता है। उसके सियोसिजम में रहस्य
नुभूतियों का प्रतीकात्मक रूप प्रस्तुत है। उसके शिष्य प्लोटिनस की गणना विश्व
महान रहस्यवादियों में की जाती है। अरब यूरोप के रहस्यवादियों पर उसका व्याप
प्रभाव पड़ा है।

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसामसीह का समस्त जीवन ही रहस्यवादी भूमिक
पर प्रस्तुत है। स्वयं बाइबिल रहस्यवाद की एक उच्चतम कृति मानी गई है। इस
'एपिशिल्स' नामक अंश में ईश्वर के प्रत्यक्ष साक्षात्कार की अलौकिक अनुभूति
वर्णन है। ईसाई धर्म के अन्तर्गत रहस्यवादी संत साधक आरम्भ से दिखाई देते हैं
इस प्रकार सुप्रसिद्ध दार्शनिक और रहस्यवादी प्लाटिनस तथा नव्यप्लेटोवादियों
विचारों की गहरी छाप पड़ी है। डायोनाइसस, जान स्कोटस एरिजेना, केरना

बर्नार्ड, माइस्टर, एकहार्ट, टालर, सूसा, टेरेसा, थॉमस के निकोलस कूनो, रायसब्रिक्स, बोएम, दान, ब्लेक, ब्रूग के सेंटजान, सालसबे, फ्रांसिस, मदाम गुयों मालिनाज आदि की परिगणना प्रमुख ईसाई रहस्यवादियों में की जाती है।

पश्चिमी रहस्यवाद के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने कहा है कि ३० ई० पू० यहूदी फिलो ने सर्वप्रथम रहस्यवाद का तत्व चलाया। ११वीं–१२वीं शताब्दी के मुख्य भिक्षुओं ने ईश्वर और मनुष्य के बीच आत्मा प्रणाली के प्रयोगात्मक लक्षण की बात चलाई। असीसी के संत फ्रांसिस ने प्रभु ईसा और उस संसार के लिए प्रेम मदिरता का अनुभव किया जो ईश्वर सम्बद्ध आत्माओं को पवित्र सृष्टि के रूप में दिखाई पड़ता है और जहाँ सब भाई बहन हो जाते हैं --(समीक्षा शास्त्र)।

यूरोप में छठवीं शती से लेकर १६वीं शताब्दी तक साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव था जिसमें यूनानी दार्शनिकों के विचारों की पूरी-पूरी छाप थी। सन्त असीसी ने मधुर भाव की उपासना का प्रचार किया। इसका मूल कारण कतिपय विद्वान अरबी प्रभाव मानते हैं क्योंकि उस समय रोम पर अरबों का प्रभुत्व था। अरबों के साथ ही वहाँ सूफी रहस्यवादी धारणा भी पहुँची होगी। सूफियों की तरह ईसाई रहस्यवादियों ने भी माधुर्य भाव की उपासना पद्धति पर बल दिया। ब्लेक, एयरक्राम्ब, यीट्स, वर्ड्सवर्थ, शेली, कालरिज आदि कवियों ने इसी लीक पर चलकर अपने रहस्यकाव्यों की सृष्टि की। इन पर १८वीं शती के सन्त ग्रगरी तथा बर्नार्ड की उस तुरीयावस्था (Trance) का प्रभाव कहा गया है जिसमें साधक ब्रह्म की अनुभूतियों को विविध प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत करता था। आगे चलकर अंग्रेजी कवियों पर फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन का भी प्रभाव पड़ा। यीट्स, बादलेयर आदि के प्रतीकात्मक ईसाई रहस्यवाद से कुछ अंशों में रवीन्द्र ने भी प्रेरणा ग्रहण की है और रवीन्द्र के माध्यम से पाश्चात्य ईसाई रहस्यवाद का प्रभाव हिन्दी के आधुनिक रहस्यवादी काव्य पर पड़ा है।

आधुनिक रहस्यवाद

आधुनिक रहस्यवाद के विषय में आचार्य शुक्ल का कहना है कि उसकी उत्पत्ति सेमेटिक भावना से हुई है अतएव वह विदेशी वस्तु है। वस्तुतः शुक्ल जी को काव्य में रहस्यवाद से चिढ़ है। रहस्यवादी विचार धारा को वे काव्य में कोई स्थान नहीं देते। इसीलिए रहस्यवादी कवियों का वे सहृदयतापूर्वक मूल्यांकन नहीं कर सके हैं। आधुनिक रहस्यवाद को विदेशी वस्तु कहकर वे उसकी उपेक्षा करते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में प्रसाद जी का कथन है कि 'रहस्यवाद (अनहलवाद) सेमेटिक धर्म भावना के विरुद्ध है एवं ईसा मंसूर और सरमद आदि अद्वैत भावना से प्रभावित थे'। आधुनिक रहस्यवाद के विषय में भी उनका अभिमत उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि

"वतमान हिन्दी म इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दयमयी व्यजना होने लगी है। वह साहित्य म रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। वतमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है इसमे सन्देह नही है।'

इस सदभ मे आधुनिक युग की प्रमुख रहस्यवादी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा क विचार भी उल्लेखनीय हैं। उन्होने लिखा है कि 'आज गीत म हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप मे ग्रहण कर रहे है उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया ग्रहण की लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के साकेतिक दाम्पत्य भाव सूत्र मे बाधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन द सका, उस पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना दिया।

प्रसाद और महादेवी जी के उपयुक्त वक्तव्यो से यह स्पष्ट है कि आधुनिक रहस्यवाद विदेशी वस्तु नही प्रत्युत भारतीय रहस्यवाद की ही परम्परा का अग्रिम विकास है। भले ही उसकी मूल वस्तुयें भारतीय हो किन्तु छायावादी सभी कवि अपन प्रारम्भिक काल म रवीन्द्र की रहस्य-चेतना मे प्रभावित रहे हैं अत प्रत्यक्षरूप से रवीन्द्र के माध्यम स उन पर पाश्चात्य रहस्यवाद का भी न्यूनाधिक प्रभाव पडा है इस अस्वीकार नही किया जा सकता। फिर आधुनिक रहस्यवाद ठीक वही रहस्यवाद नही है जो कबीर या मीरा का है, प्रत्युत वह २०वी शताब्दी की वयक्तिक चेतना से प्रभावित है। *युगीन चेतना क अनुसार स्वरूप निर्धारण क कारण आधुनिक तथा* प्राचीन रहस्यवाद मे पर्याप्त अन्तर आ गया है जिस सक्षेप मे इस प्रकार देखा जा सकता है।

प्राचीन और आधुनिक रहस्यवाद

हम कह चुके हैं कि भारतवष म उपनिषद वष्णव, सहजिया, सूफी आदि सम्प्रदायो और दाशनिक विचारधाराओ के माध्यम से रहस्यवाद का एक अक्षुण्ण परम्परा रही है कि तु मध्यकाल म आकर वह धारा क पश्चात लुप्त प्राय हो गई। आधुनिक युग क कवि इन परम्पराओ से सविज्ञ रहे हैं। साथ ही इन पर बगला क माध्यम स पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी कवियो के रहस्य दशन का भी प्रभाव पडा है जिसस उनकी रहस्यात्मक वत्ति को अधिक समद्ध और युगानुकूल होन का अवसर मिला है। आधुनिक रहस्यवाद मे आध्यात्मिक विकास की भावना का जो विकास हुआ है उसके मूल मे कबीर रवीन्द्रनाथ और पाश्चात्य ईसाई रहस्यवाद का प्रभाव परिलक्षित है। रवीन्द्रनाथ न कबीर को पाश्चात्य रहस्यवादी कवियो म विशेषकर, शैली फ्रासीसी प्रतीकवाद और बाइबिल स पर्याप्त प्ररणा ग्रहण की है। इस पश्चिमी प्रभाव के आगमन स भारतीय रहस्यवाद की क्रमिक परम्परा म २०वी शताब्दी मे विशेष भिन्नता आ गई है। हिन्दी के नव रहस्यवादी कवि मध्ययुगीन कबीर जायसी,

आदि की तरह मत मता तरों को प्रस्तुत नहीं करते । वे ब्लेक, शेली और वर्ड सवर्थ की तरह अमाम्प्रदायिक और मुक्त हैं ।

प्राचीन रहस्यवादी कवि असीम सत्ता का अनुभव एवं लक्ष्य एक व्यक्ति या आत्मा प्राप्ति की चरम स्थिति के रूप में करते हैं किन्तु आधुनिक युग की प्रमुख रहस्य कवयित्री महादेवी एक ओर रहस्यवाद को बौद्धिक धारणा की वस्तु कहती हैं और दूसरी ओर वे एक सर्व व्यापक सत्ता के प्रति मधुरतम व्यक्तिवाद के आरोपण की बात करती हैं । नवीन रहस्यवाद के विवेचन का उनका यह एक बौद्धिक प्रयास है । इस युग में रहस्यवाद को अनुभूत्यात्मक मानकर भी उसे बौद्धिक मानने पर जोर दिया गया ।

प्राचीन रहस्यवादी किसी न किसी एक सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे हैं जिनमें सृष्टि सिद्धान्त और तत्त्व दर्शन की निश्चित मान्यतायें रही हैं । वाजपेयी जी के शब्दों में कबीर में साधना के उपादानों में नैतिक तथा व्यावहारिक पक्षों का समन्वय सम्पूर्ण जीवन दर्शन का समाहार कर देता है जो व्यक्ति की वस्तु न रहकर समाज की वस्तु हो जाता है । महादेवी जी की रहस्य-वस्तु वैयक्तिक संवेदनाओं से सीमित है । उपास्य के प्रति आन्तरिक उत्सर्ग अहं का अवसान स्वार्थमयी वृत्तियों का तिरोधान आदि की जगह महादेवी में 'स्व' की सुरक्षा सतर्क आत्मनिवेदन और उपालम्भ की व्यंजना है जो उन्हें प्राचीन रहस्यवादियों से भिन्न कर देती है । दूसरे वे भाव की जगह दार्शनिक विचारधारा को महत्त्व देती हैं । इसी बौद्धिकता तथा नवीनता ने उनके रहस्य को नवीनता दी है ।

बुद्ध की करुणा भी महादेवी की करुणा और वेदना से भिन्न रही है । बुद्ध की उपलब्ध प्रतिमाओं में महान सिद्ध के लक्षण दिखाई देते हैं । उनमें चिन्ता तथा अवसाद की रेखायें नहीं मिलतीं किन्तु वाजपेयी जी के अनुसार महादेवी के चित्र गीतों में एक विरक्त और चिंतित मुद्रा मिलती है ।

प्राचीन रहस्यवादी कवि अलंकारप्रिय और सज्जाप्रिय नहीं रहे किन्तु देवीजी की रचनाओं में २०वीं शताब्दी की नारी सुलभ अलंकृति बहुत दूर तक मिलती है । नवीन रहस्यवाद का यह कलात्मक संभार जहाँ उनकी एक प्रमुख विशेषता है वहाँ यही वस्तु उस काव्य की भाव निष्ठा और गाम्भीर्य को भी बहुत कुछ कम कर देती है ।

प्राचीन रहस्यवादी कवियों में जहाँ अहं का पूर्ण विसर्जन और आराध्य के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण है वहाँ महादेवी जी अपने व्यक्तित्व की रक्षा के साथ प्रेम की परिपूर्णता को सिद्ध करना चाहती हैं अज्ञात से मिलन चाहती हुई भी मिलना स्वीकार नहीं करतीं । यह उनकी विलक्षण आकांक्षा है । वे विरह के लिए विरह की उपासिका हैं । प्रश्न हो सकता है कि उनका विरह साध्य है या साधन । सामान्यतः विरह का लक्ष्य परम सत्ता के मधुर रस का अनुपान है किन्तु देवीजी मिलन में व्यक्ति

सत्ता खोन क बदल चिर विरह म उस तथा उसक साथ अपना प्रेमानुभूति को अमर बनान की साधिका हैं। सम्भवत विरहाग्रह इसलिए है कि व्यक्ति सत्ता दिव्य प्रेमानुभूति का अनिवाय साधन है, दु ख इसलिय वरेण्य है कि वह विरहमयी प्रेमानुभूति का स्वाभाविक लक्षण है। किन्तु महादेवी जी विरह को अपने प्रिय के इतने पास ले गई हैं कि दोनो की पृथक सत्ता ही मिट गई है—

वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं

इस प्रकार विरह ही उनका साध्य हो गया है।



३ | हालावाद

(अ) प्रवर्तक का प्रश्न

हिंदी साहित्य में हालावाद के प्रवर्तन का श्रेय श्री हरिवंशराय 'बच्चन' को दिया जाता है किन्तु बच्चन इस श्रेय को स्वीकार नहीं करते। केवल प्रवर्तक ही नहीं वे अपने आपको उसका अनुवर्त्ती भी नहीं मानते। इस सन्दर्भ में मैंने उनसे एक भेंट वार्ता में प्रश्न किया था जिसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि मैंने अपने प्रारम्भिक ग्रंथों में कम पाँच बार हाला प्याला शब्द का उपयोग कर लिया तो लोग मुझे हालावादी समझने लगे। शब्दों का प्रयोग करना गुनाह नहीं है किन्तु उनका मूल मन्तव्य समझे बिना गलत अर्थ लगा लेना अवश्य गुनाह है। उन्होंने कहा कि मैंने हाला प्याला को साधारण अर्थ में ग्रहण नहीं किया वस्तुतः वे प्रतीक हैं और एक व्यापक तथा उदात्त भूमिका से सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार कालिदास के काव्य में एक जगह वसंत आम्रमंजरियों के द्वारा तर्पण करता है और तुलसीदास की दोहावली में चातक पानी से तद्वत मैंने हाला से ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति की भावनाओं का अर्घ्य दान देकर तर्पण कार्य किया है

मेरे अधरों पर हो अंतिम
वस्तु न तुलसीदल, हाला,
मेरी जिह्वा पर हो अंतिम,
वस्तु न गंगाजल हाला।
और चिता पर जाय उंडेला
पात्र न घृत का, पर प्याला
घट बँधे अंगूर लता में,
मध्य न जल हो, पर हाला।
प्राणप्रिये, यदि श्राद्ध करो तुम
मेरा तो ऐसा करना—
पीने वालों को बुलवाकर
खुलवा देना मधुशाला। (मधुशाला पदांक, ८२, ८३)

हाला भौतिक या पारलौकिक

शब्द या तपण का काय हाला से किया गया, यह तो अभिमान्य है, पर क्या यह हाला आनन्द और भक्तिपूर्ण जीवन की साधनामय भूमिका है ? या भौतिक हाला है ? बच्चन जी ने 'मधुशाला' के सम्बोधन मे इस विषय पर प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है "आज मदिरा लाया हूँ—मदिरा जिस पीकर भविष्यत के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दारुण दुख दूर हो जाते हैं जिसे पान कर मान अपमानो का ध्यान नही रह जाता और गौरव का गव लुप्त हो जाता है जिसे ढाल कर मानव अपने जीवन की व्यथा, पीडा और कठिनता को कुछ नही समझता और जिसे चखकर मनुष्य श्रम, सकट, सताप सभी को भूल जाता है। आह ! जीवन की मदिरा जो हम विवश होकर पीनी पड़ी है, कितनी कड़वी है ! कितनी ! यह मदिरा उस मदिरा के नशे को उतार देगी, जीवन की दु खदायिनी चेतना को विस्मृति के गत म गिराएगी तथा प्रबल दैव, दुर्दम काल, निमम कम और निदय नियति के क्रूर कठोर, कुटिल आघातो से रक्षा करेगी। उनके इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि उनकी हाला साधारण नही असाधारण है। वह तामसी नहीं सात्विकी है। किन्तु क्या हम बच्चन जी के इस कथन को आप्त वाक्य मान लें ? उन्होंने तो यह भी कहा था कि मैंने दस पाच बार हाला प्याला लिख दिया तो लोग उन्मत्त होकर मुझे हालावादी कहने लगे पर उनकी 'मधुशाला' 'मधुबाला' और 'मधुकलश' को खोलकर देख लीजिए शायद ही ऐसा एकाध बध मिले जिसम य शब्द न हो ? हमारा प्रयोजन शब्दो की न्यूनता अधिकता से नही है शब्द प्रयोगो को भी मैं कोई महत्व नही देता। नवीन, प्रसाद और महादेवी ने भी अनेक स्थानो पर हाला प्याला शब्दो का प्रयोग किया है किन्तु उन्हे कोई हालावादी नहीं कहता है। अग्रेजी म वडसवथ ने अपने को कभी स्वच्छन्दतावादी शब्द स अभिहित नही किया है तो फिर भी वह स्वच्छन्दतावाद का एक प्रमुख कवि और चिंतक है। पत की 'पल्लव' की भूमिका हिंदी म छायावादी काव्य की 'मेनीफेस्टो' कही जाती है किन्तु उसम भी 'छायावाद' शब्द का प्रयोग नही मिलता है। मतलब यह कि शब्द नही अथ का महत्व है। उपयुक्त उद्धरण के आगे ही उनकी एक पक्ति है— (कि मदिरा) क्षीण, क्षुद्र क्षण भगुर दुर्बल मानव के पास जग जीवन की समस्त आधि व्याधियो के क्रूर कठोर आघातो से रक्षा करेगी। इस वाक्य म हाला के भक्ति-रूपिणी रस की गध नही है वह लौकिक हाला ही है। मानव जीवन तो उस महत शक्ति को प्राप्त करने का एक सशक्त साधन है, बिना उसके साधना ही सभव नही फिर उसे क्षीण, क्षुद्र, दुर्बल कहना उसके लौकिक पक्ष को ही उभारना है, बच्चन जी की व्याख्या के अनुसार तो हालावाद की सारी प्राचीरें हिलती हुई नजर आती हैं। यदि वह रहस्यवाद का एक अभिन्न अग है, तो फिर उसे बदनाम करने का जो काय किया गया है, वह

निदय है, और यदि हाला को रहस्यात्मक आवरण देकर बच्चन जी अपने कटु निराशा, और संघर्षपूर्ण जीवन की असफलताओं को छिपाना चाह रहे हैं तो यह उनके कवि का दुराव है। यहां यह भी प्रश्न विचारणीय है कि क्या हालावाद की कोई प्राचीन परम्परा है, यदि है तो उसका स्वरूप क्या रहा है लौकिक या पारलौकिक? दूसरा प्रश्न यह है कि हिन्दी साहित्य में केवल बच्चन जी ही उसकी ओर क्या आकृष्ट हुए? उसका ग्रहण समर्थन और पल्लवन करने के मूल में उनके जीवन तथा समाज की मनःस्थितियों का योग रहा है और जब बच्चन जी उसे आध्यात्मिक और साधनात्मक रहस्यवाद की उदात्त भूमिका पर ग्रहण करते हैं हाला प्याला में आत्म-निष्ठ हैं तब चार पांच वर्ष के अल्प काल में ही व मधुगीतों को छोड़कर लौकिक वियोग गीतों की सर्जना के लिए क्यों उन्मुख हुए। रहस्यवादी कवियों के काव्य में इस प्रकार अचानक ही दिशान्तरण नहीं होता। कबीर, मीरा, रवीन्द्र, या महादेवी का नाम इस सम्बन्ध में स्मरण किया जा सकता है। मधुकलश के पश्चात बच्चनजी मधुधारा को छोड़कर लौकिक जीवन की भाव विदग्ध धारा में संतरण करते हैं। 'निशा निमंत्रण एकांत संगीत सतरंगनी आदि के पश्चात वे बंगाल के अकाल पर संवेद्य शोक प्रगीत लिखते हैं गांधी जी के अहिंसा दर्शन से प्रभावित होकर खादी के फूलों का निर्माण करते हैं और स्वतन्त्रोत्तर काल में समसामयिक जीवन की उथल पुथल से सम्बन्धित तथ्यों को भी प्रगीतों में ढाल रहे हैं। लोक लयों को गृहीत करके ग्राम्य गीत भी लिख रहे हैं। उनका यह दिशान्तरण या विकास इस तथ्य का द्योतक है कि हालावाद उनके जीवन में रहस्यात्मक भूमिका की निष्ठा बनाकर नहीं आया था वह क्षणिक भावोन्माद या जो तूफान की भांति आया और चला गया। यह सत्य है कि हालावाद के प्रवर्तन के द्वारा बच्चन जी को जहां अपरिमित ख्याति और यश मिला, वहीं उन्हें कटु समीक्षाओं का गरल पान भी करना पड़ा जिसके संकेत अपने गीतों में एकाधिक स्थान पर स्वयं बच्चन जी ने दिए हैं। 'वह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।'—शीर्षक पंक्ति उपर्युक्त तथ्य की ही निदर्शक है। यदि बच्चन जी ने लोक भय के कारण मधु धारा को छोड़ा तो भी उनके व्यक्तित्व की दुर्बलता ही ज्ञापित होती है यदि वस्तुतः उन्होंने हाला प्याला मधुशाला और मधुबाला को रहस्य की उदात्त भूमिका पर ग्रहण किया था तो उन्हें केवल लोगों के प्रवाद से छोड़ देना यह तथ्य आत्मनिष्ठा के अभाव की ही सूचना देता है उन्हें रुककर इंतजार करना था आज नहीं तो थोड़े समय पश्चात निश्चित ही उनके रहस्यवाद को समझने वाले पैदा होते? पर बच्चन जी यह प्रतीक्षा नहीं कर सके। ये सारे तथ्य इस बात के ज्ञापक हैं कि उन्होंने हालावाद को रहस्यवाद की भक्तिपूर्ण निष्ठा से नहीं अपनाया, उसके मूल में दार्शनिक, अद्वैतवादी विचारधारा की जगह उनके जीवन की विभिन्न मनःस्थितियां ही अधिक उर्वर रही हैं। फिर इस पार प्रिये तुम हो मधु है उस

पार न जाने क्या होगा ? जैसे विशुद्ध लौकिक गीतों में रहस्यवाद की छाया खोजना तथ्य को झुठलाना होगा। अपनी 'मधुशाला', 'मधुबाला' तथा 'मधुकलश' कृतियों में जगह जगह बच्चन जी ने हाला प्याला के जीवन और विश्व व्यापी रूपक प्रस्तुत किए हैं। इनके द्वारा आत्मा परमात्मा की अभिव्यंजना हो जाती है, किन्तु रहस्यकाव्य के लिए रूपक योजनायें कलात्मक उपकरण मात्र हैं, प्रमुख वस्तु हृदय की जीवन व्यापिनी रागात्मक निष्ठा होती है जिसका अभाव बच्चन जी के गीतों में दिखाई देता है।

बच्चन जी अभिनव स्वच्छन्दतावादी कवि हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि रचनाओं में अपनी आत्माभिव्यक्ति को ही प्रमुखता देता है। ऐसी रचनाओं में भावनाओं की सुतीव्रता, कल्पना का प्रवाह और प्रभावान्विति के गुण सबसे पहले देखे जाते हैं, विचार या जीवन दर्शन का पक्ष बहुत पीछे आता है। जहाँ तक सुतीव्र भावनाओं की सबल और अन्वितिपूर्ण निश्छल अभिव्यंजना का प्रश्न है हिन्दी में बच्चन जी की समता बहुत कम कवि कर सकते हैं किन्तु जहाँ तक उनके जीवन दर्शन का प्रश्न है डा० नगेन्द्र के शब्दों में उनके समान किसी भी महत्वपूर्ण और प्रतिभा सम्पन्न कवि ने खोखले विचार प्रगट नहीं किए। अर्थात उनकी हाला सम्वर्धिनी जो विचारधारा है वह व्यावहारिक रूप से जीवन में वरण्य नहीं है। वह जीवन संघर्ष से पलायन निराशा अनास्था आदि का प्रतीक है। यह व्यक्ति-केन्द्रित निवृतिमुखी जीवन दर्शन है।

(आ) उमर खैयाम जीवन, दर्शन और काव्य

बच्चन जी के हालावाद की मूल विशेषताओं के निदर्शन के पूर्व हम उनके कवि गुरु उमर खयाम के काव्य की विशेषतायें जान लेना आवश्यक है। उमर खैयाम पारस देश के कवि हैं। उनका पूरा नाम गयासुद्दीन अबुल्फतह उमर था। ये इब्राहीम के पुत्र थे। खैयाम के शब्दार्थ के विषय में मतभेद है। इसका शाब्दिक अर्थ हैं खेमा बनाने वाले पर कतिपय लोगों का कथन है कि खयाम उनका उपनाम था। बच्चन जी का इस सम्बन्ध में कथन है कि हो सकता है उमर खयाम ने पारिवारिक पेशे के ही नाम पर अपना उपनाम रख लिया हो। उमर खैयाम की जो कवितायें उपलब्ध होती हैं वे सब रुबाइयाँ ही हैं। खयाम का उपनाम इस विचार से ग्रहण किया जा सकता है कि कवि शब्दों का खेमा खड़ा करता है रुबाई के चार डंडों पर भावों अथवा विचारों का तंबू तानता है।[1]

उमर खयाम की जन्म तिथि के विषय में भी मतभेद है। अधिकांश विद्वान उनका जन्म ग्यारहवीं सदी के मध्य में मानते हैं। उनका देहावसान बारहवीं सदी के

१ उमर खैयाम की रुबाइयाँ, बच्चन, अनुवाद, पृ० ९६, (परिचय)

तीसरे दशक मे माना गया है। इस प्रकार उनकी आयु ७०–८० वष की रही। उमर खयाम अपने समय के सुप्रसिद्ध गणितज्ञ ज्योतिषी और मौलिक चिंतक रहे हैं। वे स्वा त सुखाय कवितायें भी लिखते थे। उनकी कविताओं की प्राचीनतम पाण्डुलिपि उनकी मत्यु के ७५ वष बाद तयार की हुई प्राप्त होती है। इस सकलन म लगभग २५० रुबाइया है। उमर खयाम ने अपनी रुबाइयो मे धार्मिक और साम्प्रदायिक सकीणता तथा कट्टरता का विरोध किया था, साथ ही उन्होंने उनम इस्लामियो की सनक, वहम, पाखण्ड और आडम्बरो की भी अच्छी चुटकी ली थी।[1] फलत समाज तथा साहित्यकों के बीच से उनकी उपक्षा की गई और उनके कवि रूप को लोग लगातार ७–८ शताब्दियो तक भूले ही रहे। १९वी शताब्दी म अग्रेजो ने पूव की कला कृतियो और पाण्डुलिपियो से यूरोप के अजायबघरो को भर दिया। वही पर इस शताब्दी के मध्य म प्रोफेसर कोवल तथा उनके मित्र फिटजजेरल्ड के द्वारा उमर खयाम की रुबाइयो का प्रकाश म लाकर उनका उद्धार किया गया। फिटजजेरल्ड के द्वारा अनुवाद की गई उमर खयाम की ७५ रुबाइयो का प्रथम सकलन १८५९ ई० म प्रकाशित हुआ। यह सस्करण केवल २५० प्रतियो का निकला था किन्तु फिर भी यह सस्करण न बिक सका और प्रकाशक ने इसकी प्रतियाँ रद्दी म डाल दी। वही से दो अग्रेज कवियो की दृष्टि इस पर गई। उन्होंने इसकी बहुत प्रशसा की। किंचित समय म ही यह कृति लोक–प्रिय हो गई। १८६८ म दूसरा १८७२ मे तीसरा और १८७६ म इसका चतुथ सस्करण प्रकाशित हुआ। इन विभिन्न सस्करणो म फिटजजरल्ड ने अनेक सशोधन परिमाजन और रुबाइयो की सख्या म वद्धि भी की है पर विद्वानो ने उनके प्रथम सस्करण को ही सवश्रेष्ठ माना। अब तक तो उमर खयाम की रुबाइयो के अगणित सस्करण निकल चुके ह और ससार की प्राय हर भाषा म उसके अनुवाद भी हो गये हैं। उमर खयाम सोसाइटी भी बनी है और उनके व्यक्तित्व, कृतित्व से सम्बधित प्रथित माला म शोध–काय भी किये गये है।

[१] प्रकृतिवादी जीवन दृष्टि

✓उमर खयाम ने अपनी रुबाइयो म प्रकृतिवादी जीवन दृष्टि को व्यक्त किया है। मनुष्य के जन्म के पूव न कुछ था और न मत्यु के पश्चात कुछ रहेगा। जो कुछ है वह यही मानव जीवन है। यही हमारा भाग्य है। इसमे भी कोई वस्तु स्थायी नहीं है। पल पल म सभी कुछ परिवतन होता जा रहा है प्रेम सुख सुन्दरता सभी अल्पस्थायी उपादान है। जीवन म जब तप्ति कही नहीं मिलती, तब तष्णा क्यो? आशा आकाक्षा श्रम, सघष वासना चिंता प्रेम, त्याग, सेवा आदि सभी निरथक हैं।

---

१ उमर खयाम की रुबाइयाँ बच्चन, अनुवाद पृ० ९७ (परिचय)

[२] दुखवादी जीवन दर्शन

अत खयाम जगत से पलायन करने, जीवन से उदासीन होने और चेतना को विस्मृति मे डुबाने की बात करते हैं। इसीलिए रुबाइयत सुखवादियों की फिलासफी न होकर दुखवादियो की फिलासफी है। उमर खयाम ने प्रकृतिवादी जीवन दृष्टि से ही मधु की मादकता, नारी की कोमलता और अनन्त मानव वासनाओं का चित्रण किया है। जीवन को वे क्षणभंगुर मानते हैं और मदिरा पान करके जीवन की भूख को मिटाने का आदेश देते हैं—

"उठो मेरे शिशुओ नादान
बुझा लो पी पी मदिरा भूख
नही तो तन प्याली की शीघ्र
जायगी जीवन मदिरा सूख।'
या– 'नही है क्या तुमको मालूम
खडी जीवन–तरणी क्षण चार
बहुत सम्भव है जा उस पार
न फिर यह आ पाय इस पार। अनुवादक बच्चन जी

[३] सुरा सुन्दरी का गुण गान

उमर खैयाम जीवन की पार लौकिकता का पुजारी नहीं था, उसके लिए यही जीवन सब कुछ था अतएव उसकी रुबाइयां लौकिक प्रेम के धरातल पर ही लिखी गई है उनमे सुरा सुन्दरी दोनों का मणि काचन योग है—

घनी सिर पर तरुवर की डाल,
हरी पावो के नीचे घास।
बगल म मधु मदिरा का पात्र,
सामने रोटी के दो ग्रास।
सरस कविता की पुस्तक हाथ
और सबके ऊपर तुम, प्राण।
गा रही छेड सुरीली तान।
मुझे अब मरु नन्दन उद्यान।

वे प्यारी मदिरा का पान करके नशे मे चूर चूर होना चाहते हैं जिससे भविष्य के भय दूर भाग जाय और अतीत के दारुण दुख नष्ट हो जाय। उन्हे कल पर भी किंचित आसक्ति नहीं है।

[४] उन्मुक्त भोगवाद

जीवन के वर्तमान का स्वच्छन्द भोग करने के लिए वे लालायित हैं। स्वर्ग, धर्म, कर्म सभी रास्ताओं का अन्त अन्धकारमय और निराशा से परिपूर्ण है। विद्वान जो बातें करते हैं वे भ्रमपूर्ण और अविश्वसनीय हैं क्योंकि जीवन में केवल एक ही बात सत्य और निश्चित है कि जो सुमन आज सूख गया है, वह फिर कभी हरा भरा नहीं हो सकता। इसीलिये वे प्याले पर प्याला ढाल करके इतनी मदिरा पान कर लेना चाहते हैं जिससे जन्म मरण ही नहीं अन्यायपूर्ण बातों का भी विस्मरण हो जाय। तर्कशक्ति को उन्होंने कर्कशा, वृद्धा, वंध्या समझ कर त्याग दिया है और सरस मधुर और सुकुमार सुर बाला से अपना नाता जोड़ा है। अपने ही ज्ञान विज्ञान के विषय में उनका कथन द्रष्टव्य है—

> ज्ञानों का सीखा सिद्धान्त
> गणित विद्या सीखी दे ध्यान
> खपाया ज्योतिष में मस्तिष्क
> बढ़ाया जड़ जीवों का ज्ञान।
> जगत की ज्वाला से मैं तप्त
> जलाशय ज्ञान–विवर अनेक
> मगर सब छिछले, उथले क्षीण
> मिला बस प्याला गहरा एक। ४१।

[५] जीवन जगत के कोलाहल से पलायन

इसके पश्चात वे अंगूरी मदिरा की अमित प्रशंसा करते हैं। वह बड़ी ही कीमियागर, चतुर और सुजान है जो मलिन जीवन शीशे को शीघ्र ही कंचन सा द्युतिमान बना देती है। वे जगत के कोलाहल से पलायन करते हैं उन्हें न्याय के बाद विवाद करने वाले न तो विद्वानों से काम है और न जीवन के निरर्थक झगड़ों को ही वे याद रखना चाहते हैं वे अपनी सुर बाला से कहते हैं—

> चलो जग कोलाहल से दूर
> करें हम तुम एकांत निवास।
> उड़ायें हम भी उन पर धूल
> हमारा जो करते उपहास। ४५।
> बैठकर प्रेयसि मेरी गोद
> करो माणिक मदिरा का पान।

कर्म और नियति को वे मानवीय जीवन की शतरंज का खिलाड़ी कहते हैं,

जो संसार की बिसात खोलकर और खानो मे नि शक्त मनुष्यो को बठाकर दिनरात क्रीडा कर रहे हैं।

अन्त मे, उमर खयाम ने भी अपने तपण की क्रिया मदिरा के द्वारा ही सम्पन्न कराने की बात कही है—

प्रिये मदिरा से देना सीच
अधर मेरे होते मृत म्लान
मरूँ तव मदिरा से ही प्राण
कराना मेरे शव को स्नान।

अगूरी पत्तो से ढक देह
उन्ही पत्तो की शया डाल
लिटा देना मुझको चुपचाप
किसी मधुमय उपवन के पास। ६७

इस्लाम धर्म और सूफी-दर्शन

उमर खयाम सूफी कवि हैं। फारसी सूफी कवियो म इनके अतिरिक्त मौलाना रूम और हाफिज का नाम विशेष उल्लेखनीय है। फारस इस्लाम धम का अनुयायी देश है। इस्लाम में शराब का पान निषिद्ध है किन्तु सूफी कवियो ने इस्लाम धम की अतिशय कट्टरता के विरुद्ध एक नवीन प्रेमपरक उपासना पद्धति निर्मित की जिसम परमात्मा के प्रेम म पूणत निमग्न रहने की साधना प्रमुख है। यह प्रेम साधना अपनी परिपूणता और तल्लीनता मे मदिरा की मादकता के तुल्य है। सूफियो के इस दिव्य प्रम म सुरा सुन्दरी के समान प्रेम का गहरा रग है। इस प्रक्रिया के द्वारा उन्होने वस्तुत इस्लाम धम के कठमुल्लेपन का तीव्र विरोध किया है उसके बाह्याडम्बरो, रूढियो और जडता की भत्सना की है। उन्होन मदिरा की मादकता को प्रेम की चरम साधना का रूपक दिया है जिस स्तर पर पहुँचकर उन्हे 'इहनाम' होता है।[1] इहनाम का तदाकार पूण स्थिति म रूह और खुदा' का विभेद मिट जाना है और जीव और परमात्मा एकाकार हो जाते है। यही एकाकारता उनकी साधना का एकमेव लक्ष्य है। सूफियो की यह एकाकारता भारतीय अद्वतवादी दशन के बहुत पास है। प्रेम रूपी मदिरा की मादकता का ही य सच्चा भक्ति उपासना कहते ह और इसकी अनुभूति वही कर सकता है जिसने उसकी प्रतीति की हो। इसलिए एक सूफी कवि लिखा है—

'मजा शराब का कस कहूँ तुमसे जाहिद
हाय कम्बख्त तूने पी ही नही।

फारस के इन सूफी कवियो पर इस्लाम के कट्टर धर्मावलम्बियो ने अंकुश

अत्याचार किए हैं। जिसके कारण अधिकाश तो देश छोड़कर भाग गये, अधिकाश सूली पर चढ़ा दिए गये। जिनको सूली पर चढाया गया, उनमे मसूर का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इस दमन चक्र ने उल्टा प्रभाव छोडा और सूफी काव्य मे मदिरा, प्याला साकी मीना (बोतल) मधुशाला आदि के प्रतीको की सर्वातिशयता होती गई इन्होने इन लौकिक प्रतीको के माध्यम से जीवन के कोलाहल और अन्यायों को भुला ईश्वर प्रेम की मादकता मे मस्त होकर अपनी अलौकिक स्वतत्रता और तन्मयता का आख्यान किया। ये प्रेम पथ के अनन्य पुजारी थे। इनका विश्वास था कि परमात्मा हृदय की निर्मलता सात्विकता और उसकी उपासना के द्वारा प्राप्त होता है रोजा नमाजादि बाह्याचारो के द्वारा नही। इसी प्रकार इस्लाम मे यह माना गया कि खुदा और बदे मे एकात्मता नही हो सकता पर सूफी इस तादात्म्य परिणिति के लिए व्यग्र थे और प्रेम की मादकता के द्वारा उन्होने यह कार्य सुलभ माना। प्रभु दिव्य प्रेम की एकाग्रता और मदिरा की मादकता अपने चरम रूप मे एक ही स्तर की सूचक थी जहा पहुचकर व्यक्ति अपने जीवन की नाना व्याधियो को भूलकर निर्द्वद्व हो जाता था। इसीलिए सूफी कवियो ने प्रतिक्रियात्मक पद्धति से शराब को अपने काव्य मे प्रतीकात्मक रूप मे ग्रहण किया। शराब का नशा उस समय सौगुना हो जाता है जबकि वह साकी के हाथो प्रस्तुत की जाय अतएव सुरा के साथ सुन्दरी का भी प्रयोग उन्होने प्रमुखता के साथ किया। क्षणभगुर प्याला प्याली को उन्होने मानवीय जीवन माना और सुरा सुन्दरी को प्रेमपूर्ण उपासना। इस तरह लौकिक प्रतीको कथाओ या उपकरणो को लेकर उन्होने उनके द्वारा पारलौकिक व्यजनाओ को प्रस्तुत किया है। यह रूपात्मकता या अन्योक्ति सूफी काव्य की एक प्रमुख शैली है जिसे जायसी कुतबन आदि हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन सूफी कवियो मे भी प्रचुरता के साथ देखा जा सकता है।

ओज मस्ती मादकपूर्ण तन्मयता और स्वच्छन्द मनोवृत्ति के गीतो को गाने मे फारसी कवियो मे उमर खयाम ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की है। उनकी रुबाइयो मे प्रकृति प्रेमी जीवन दृष्टि का इतना मनोरम और मादकतापूर्ण अभिनव और आकर्षणपूर्ण ढग मे प्रकाशन हुआ है जिसकी समता विश्व के साहित्य मे नही मिलती। इसीलिए उनकी रुबाइयो का ससार भर के लोगो ने सम्मान किया है और उन्हे विश्व व्यापी अक्षय ख्याति मिली है। वे पुरानी होकर भी चिर नवीन है। पश्चिमी जगत मे जब किसी प्रकाशक को अपना घाटा पूरा करना होता है तब वह उमर खयाम की रुबाइयो का नया सस्करण छाप लेता है और इसमे उसका घाटा पूरा हो जाता है।

(इ) हालावाद के उदभव काल की विविध परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य मे सूफी काव्य की परम्परा रही है किन्तु बीसवी शदी मे

उमर खैयाम का प्रभाव फारसी से सीधे न आकर अंग्रेजी के फिटजेरल्ड के अनुवाद के माध्यम से आया है। सर्वप्रथम १९२७-२८ ई० में सरस्वती में उमर खयाम की कुछ रुबाइयों का अनुवाद प्रकाशित हुआ। उन पर टीका टिप्पणी हुई। हिंदी पाठकों के तरुण हृदय को उन रुबाइयों की मादकता ने भर दिया और वे थोड़े ही समय में लोकप्रिय हो गयी। उमर खयाम की रुबाइयों के द्वारा व्यंजित आध्यात्मिक प्रेम को तो हिंदी पाठक और कवि नहीं समझ सके पर उनकी प्रकृतिवादी दृष्टि और अनंत वासनाओं की पूर्ति करने वाली सुरा सुन्दरी की मादकता उन्हें भी इष्ट प्रतीत हुई अतएव वे उन रुबाइयों को आदर्श मानकर काव्य रचना करने लगे। विषय वस्तु की समानता तो मिल गई पर उमर खयाम की कवि-प्रतिभा और प्रेमपूर्ण जीवन व्यापी साधना वे कहाँ से लाते, अतएव वे उसकी गहराई में प्रविष्ट न हो कर केवल उसके प्रतीकों, रूपकों, उपकरणों का ही अनुकरण कर सके। उमर खयाम ने जो गहराई अपनी 'कूजा नामा' में प्रस्तुत की वह हिंदी कवियों में केवल मिट्टी का प्याला प्याली के कथन तक ही सीमित रह गई। जो बात उमर खयाम के अंतःकरण से निकली थी, जो मस्ती और अलौकिक खुमार उसकी आत्मा का अजेय धन था, जो स्वच्छंदता और जीवन-दर्शन उसकी अनुभूतियों का सुरभित पुंज था, वह हिंदी कवियों में अयाचित न होकर सप्रयास और अनुकरण का प्रतिफलन है, यही कारण है कि जो हालावाद उमर खयाम के रसिक कंठ से निकला वह प्रेमी, साधक, चिंतक, पाठक और विविध समाजों को मग्न करता हुआ विश्व व्यापी हो गया, वह असाधारण होते हुए भी साधारणीकृत हो गया पर हिंदी का हालावाद अपने चार पाँच वर्षों के अल्पवय में ही अपनी लौकिकता के खुमार में डूबकर नष्ट हो गया। यह सत्य है कि उसकी प्रसिद्धि यश और कीर्ति का भी हिंदी समाज में एक-स्वप्न-युग-सा-है-फिर भी उसके भीतर निहित मानवीय दुर्बलताओं छिछली क्षणिक मस्ती और वासना, निराशा, कुंठा, आदि से परिपूर्ण उद्‌गारों ने उसे बहुत समय तक जीने नहीं दिया और उसके अनुवर्त्तीओं ने भी इस जीवन दर्शन से ऊपर उठकर और मानव जीवन के वास्तविक दर्शन की पहिचान कर इसे उपेक्षित कर दिया।

हिंदी के हालावादी कवियों में हरिवंशराय 'बच्चन' भगवतीचरण वर्मा और हृदय नारायण पाण्डेय हृदयेश का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इनमें भी बच्चन सर्वोपरि हैं। उमर खयाम की रुबाइयों के हिंदी अनुवाद के पश्चात मौलिक रूप से आपने मधुशाला (१९३३) मधुबाला (१९३६) और मधुकलश (१९३८) नाम से तीन कृतियों की सर्जना की। उनके हृदय की मस्ती से जल और थल गगन और पवन सिंधु और वसुंधरा, स्वर्ग और नरक जड़ और चेतन निशा और दिवस वन और उपवन सर और सरिता, मिलन और विरह प्रणय और संघर्ष आशा और निराशा, जन्म और जीवन, काल और कर्म—सभी वस्तुयें जिनका अस्तित्व इस विश्व में है—हाला,

प्याला मधुशालामय आभासित" हो उठी।[1] उनकी इस विश्व-व्यापी मस्ती से जन मानस डोल उठा और अन्य कवि उनके समक्ष नित्य हो गये। हालावाद का अर्थ बच्चन और बच्चन का अर्थ हालावाद हो गया। यद्यपि अपनी 'मधुशाला' के 'सम्बोधन' में उन्होंने मदिरा को भक्ति रूप में ही प्रस्तुत किया है—'मेरी मदिरा तेरे चरणों में फिर भी चढ़ गई। मैं सन्तुष्ट हूँ। भक्त की मदिरा—विनम्र भक्त की मदिरा—भगवान के अधरों पर नहीं चरणों में ही चढ़नी उचित है। पर ऊपर देखती हूँ। यह क्या? तेरी आँखों में यह मतवालापन कैसा? उन्मत्तता कैसी? मस्ती कैसी? तेरे अधर हिल रहे हैं। तू मुस्करा क्यों रहा है? क्या तू कुछ कह रहा है? क्या यही कि—

> पीकर मदिरा मस्त हुआ तो
> प्यार किया क्या मदिरा से?

क्या तू मेरी मदिरा पान कराने की अभिलाषा से ही प्रमत्त हो उठा? धन्य तू और धन्य मैं?[2] किन्तु बच्चन जी की यह भक्ति रूपिणी मदिरा उनके आध्यात्मिक जीवन की साधनामय पुकार न होकर देश काल की विविध परिस्थितियों और उनके जीवन की मर्मपूर्ण घटनाओं से उद्भूत है। अतएव हालावाद के स्वरूप को समझने के लिए हमें तत्कालीन परिस्थितियाँ भी देखनी होंगी।

हालावाद का उद्भव विकास और पराभव छायावादोत्तर युग में हुआ है। हम कह चुके हैं कि १९२८ ई० के पश्चात् छायावादी काव्य में विघटन के तत्त्व प्रकट होने लगे थे और काव्य धारा स्पष्ट रूप से दो धाराओं में विभक्त होने लगी थी। एक छायावादी और दूसरी यथार्थवादी। यथार्थवादी काव्यधारा भी दो भागों में विभक्त थी। प्रथम वह जो छायावाद की शिथिलता दुर्बलता और क्षयी भावनाओं को ग्रहण कर अग्रसर हो रही थी और द्वितीय वह जो समाज को शोषित शोषक रूपों में विभक्त करके शोषित का पक्ष ग्रहण कर उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट कर रही थी और शोषकों को मानव जीवन की [illegible] कहकर उनकी निन्दा और उपेक्षा कर रही थी। यह काव्य धारा १९३५–३६ ई० में प्रेमचन्द जी के नेतृत्व में सम्पन्न हुई। लखनऊ के प्रगतिशील लेखकों की सभा के पश्चात् प्रगतिवाद के रूप में परिणत हो गयी। प्रथम प्रकार की यथार्थवादी वस्तु और शैली के अनुकर्त्ताओं में बच्चन अंचल और नरेन्द्र शर्मा प्रमुख हैं। इन्हें हिन्दी साहित्य की लघुत्रयी कहा जाता है। ये अभिनव स्वच्छन्दतावादी कवि हैं जिन्होंने मधुचर्या की मादक भावनाओं और भोगवाद को सर्वाधिक प्रश्रय दिया। इनमें से बच्चन जी पर उमर खयाम की निराशावादी विचार धारा का

१ मधुशाला सम्बोधन पृ० ९
२ " " पृ० १००

प्रभाव पड़ा, पलायन, कोलाहल से दूर, एकातता, मादकता आदि को उन्होंने छाया वाद की गमिक काव्यधारा से ग्रहण किया और हालावाद का प्रवतन किया। अचल और नरेन्द्रशर्मा प्रकृतवादी शैली को ग्रहण करके जीवन की नग्न वासना स्थूल सौन्दर्य, अहमन्यता और भोग को सर्वाधिक महत्व देते हुए अपनी परिणति मे प्रगतिवादी हो गये। बच्चन जी भी प्रगतिवादी हुए पर उनका यह प्रगतिवाद बहुत देरी से आया।

राजनीतिक दृष्टि से १९३० से १९३५ ई० तक का समय निराशा और असफलता का काल है। गोलमेज कान्फ्रेस म असफल हो गई थी और राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेने वाले क्रांतिकारियो का निर्दयतापूर्वक दमन किया जा रहा था। स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी, इसकी आशा निकट भविष्य मे धूमिल पड़ गई थी और जनता समझने लगी थी कि अब काग्रेस समाप्त प्राय हो गई किन्तु नेतागण असफल होकर भी निराश नही हुए थे, वे स्वतन्त्रता का स्वप्न देखते रहे और सघर्ष मे सजग रहे। फल यह हुआ कि १९३७ के आम चुनाव म काग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ और उन्हे शासन की बागडोर सभालने का भी अवसर मिला किन्तु हर जगह हस्तक्षेप के कारण उन्हे अपना परिषद भग भी करनी पड़ा। ऐसे निराशा और अवसाद के समय पर माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, प्रसाद, निराला, पत, प्रेमचन्द्र आदि कवि और कथाकारो ने जीवन म आशा और आस्था भरी वाणी ही व्यक्त की। उन्होने अपनी कृतियो के द्वारा राष्ट्रीय जागृति के सदेश दिए। प्रसाद की लहर के प्रगीत, कामायनी का दार्शनिक सदेह और चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी आदि नाटक नवीन आशा और जागति की ही वाणी का उद्घोष करते है। निराला की वह तोडती पत्थर', भिक्षुक', 'राम की शक्ति पूजा' पत के युगात' के प्रगीत आदि भटकते हुए समाज के मानस मे दृढता, अपराजेयता, आत्मनिष्ठा, क्राति सघर्ष आशा, सफलता राष्ट्रीय जागृति आदि भावनाओ को ही उदभूत करते है। प्रेमचन्द के महा उपन्यास 'गोदान का नायक होरी जीवन मे बिना किसी समझौता को किए, सघर्ष रत रहकर ही अपने प्राणान्त कर देता है। स्वय छायावाद जब वीणा ग्रथि', आँसू', 'पल्लव और 'परिमल' की कल्पना और सौन्दयमयी भूमिका छोड़कर मानव जीवन का मांगलिक गुजन करने लगा था और दार्शनिक 'ज्योत्स्ना' के रूप मे चरमोत्कर्ष पर अवस्थित था तथा कामायनी' के धवल आनन्द शिखरो पर समरस जीवन की चेतना जागृत हो रही थी, तब बच्चन के कंठ से निराशा पलायन, दुःख, भोग, विनाशादि से परिपूर्ण मधुचर्या के गीत कसे निकले, एक आश्चर्य का विषय है। तत्कालीन समाज म निराशा उदासी, असफलता का साम्राज्य था, यह सत्य है ऐसे ही समय मे उमर खय्याम की मौज, मस्ती से युक्त रुबाइयो ने जनता को मादकता के सागर म निमग्न किया और उस मधुदेश मे जनता अपने जीवन के कोलाहल को भूलने का प्रयास

करने लगी, यह तथ्य भी ईपन रूप से सत्य माना जा सकता है किन्तु देश के दुख और निराशा के समय पलायन भाग अनास्था और मदिरा की बातें करना एक पलायनवादी तत्व है जिसके अंकुरण और पल्लवन का उत्तरदायित्व तत्कालीन परिस्थितियों से अधिक रचयिताओं के वैयक्तिक जीवन में निहित है। अपने जीवन के संघर्ष और असफलताओं से थकित निराश जीवन में इन्होंने पराजित भाग्यवाद और झूठी मस्ती को जन्म दिया। एक दुखी निराश व्यक्ति का दुखी निराश से प्रेम और सहानुभूति जल्दी हो जाती है। अतएव उमर खय्याम की विचारधारा, यश, कीर्ति और विभूति ने इनका पथ प्रशस्त किया। पहले यह मदिरावाद बच्चनादि की हृदय जन्य अनुभूतियों से प्रभावित होकर निकला किन्तु बाद में जब उससे ख्याति, मिली, तो हालावाद पर कवितायें लिखने का कार्य एक शौक और अनिवार्यता में बदल गया यही कारण है कि बच्चन जी की प्रथम कृति मधुशाला में जो सरसता सुकुमारता और मस्ती है वह उनकी किसी भी परवर्ती मधु कृति में नहीं मिलती।' मधुशाला' की एक लाख से अधिक प्रतियाँ भी बिक चुकी हैं यह तथ्य भी उसकी लोकप्रियता का सूचक है। मधुशाला, और मधुकलश में विचारधारा अधिक आग्रह के साथ व्यक्त की गई है और मिट्टी का तन मस्ती का मन क्षण भर जीवन मेरा परिचय आदि रचनाओं में जीवात्मा परमात्मा जीवन जगत के सम्बन्ध की दार्शनिक विचार धाराओं को भी प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

बच्चन की मौज मस्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं है। यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो कहीं कहीं तो उमर खय्याम भी इस क्षेत्र में उनसे पीछे छूट जाते हैं किन्तु उनकी यह भोगजन्य मस्ती का व्यावहारिक रूप से जीवन में कितनी उपादेयता है ? इस प्रश्न पर जब सुधी विद्वानों ने विचार किया तो उनके वासनाजन्य उद्गारों का तीव्रतम रूप में विरोध किया जाने लगा। समाज ने उन पर अंगुलियाँ उठाई। प्रतिक्रियावश कुछ समय तो बच्चन जी ने समाज की चिंता न करके और तेजी से व्यंग्य उपहासों से भरे हुए मधुगीतों की सृष्टि की पर आघात पर आघात सहन करते करते उनका कवि हृदय भी विचलित हो गया और थककर उन्होंने अपने हाथों से मधु कलश, दूर फेंक दिया। फिर रीते हुये इस कलश में हाला उन्हें भरने की शक्ति नहीं हुई। कदाचित वे अपने जीवन दर्शन के खोखलेपन को समझकर उससे ऊपर उठ चुके थे या अलग होकर अपनी प्रथम पत्नी के देहावसान से उत्पन्न वियोगज्ञ हलाहल का पान करने लगे। आश्चर्य है जब कवि का अपने जीवन के रिक्त पात्र को मदिरा की मादकता से भरकर समरसता प्राप्त करनी थी, तब वह निशा निमन्त्रण 'एकांत संगीत और सतरंगिनी के विरह गीतों में आकुल अंतर' लेकर गोता लगाता रहा। बच्चन जी के काव्य विकास का यह एक विरोधाभास है।

जिस समय उन्होंने मधुशाला की सृष्टि प्रारम्भ की, उस समय उनके जीवन

का महा सघर्ष काल था। परिवार के भरण पोषण का प्रश्न उनके सम्मुख था। १९२७ ई० मे सुश्री श्यामा के साथ उनका परिणय हो गया था। १९२६ ई० मे उन्होने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० उत्तीर्ण किया। १९३० ई० मे उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह आदोलन से प्रभावित होकर उसमे सक्रिय भाग लिया। १९३२ ई० म आजीविका के लिए उन्हे दैनिक 'पायोनियर' मे जिला कचहरियो के सवाद दाताओ का काय करना पडा। इस समय बच्चन जी दोपहर की चिलचिलाती धूप म एक कचहरी से दूसरी कचहरी जाते सवाद नोट करते और अपने जीवन के सघर्ष से उत्पन्न निराशा दुख और थकान को गुनगुनाकर एक काल्पनिक मस्ती से भरा करते। १९३५ ई० मे वे अभ्युदय के सपादकीय विभाग म सम्मिलित हुए और ३४ म वे वही अग्रवाल विद्यालय म हिन्दी के शिक्षक हो गये। ३३ ३४ ई० मे ही उन्हाने उमर खय्याम की रुबाइयो का अनुवाद करन क पश्चात अपनी मधुशाला' की रचना की थी। उनके जीवन की उपयु क्त परिस्थितियो को देखकर हालावाद के प्रेरणा स्रोतो को सहज ही समझा जा सकता है कि वह तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियो की उपज है बच्चन जी के तत्कालीन जीवन ने उसका मधुसिंचन किया है। १९३७ ई० मे उनकी धम पत्नी का देहावसान हो गया जिसका मर्मातक प्रभाव उनके जीवन पर पडा और वे सहसा ही मधुगीतो को छोडकर दूसरी ओर मुड गय इस समय उनकी आयु तीस वर्ष की था। १९३८ म उन्होने एम० ए० किया और १९३९ मे बी० टी०। इसी वर्ष मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय म अंग्रेजी विभाग मे अध्यापक हो गये। १९४२ ई० म आपका श्रीमती तेजी से द्वितीय विवाह हुआ। १९५४ ई० म आपने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से डाक्टरेट ली और दिसम्बर १९५५ स आप भारतीय विदेश मत्रालय म विशेषाधिकारी के रूप म काय करने लगे। वस्तुत हम उनके समग्र काव्य विकास को उनके जीवन की उपयु क्त विभिन्न घटनाओ स पृथक करके नही देख सकते। प्रगीत काव्य का कवि के व्यक्तित्व से अलग करके देखा भी नही जा सकता।।

हालावाद का स्वरूप

बच्चन जी की उपयु क्त कृतिया स्फुट प्रगीतो क सकलन है। मधुशाला म परिशिष्ट की ४ अष्टपदियो को मिलाकर कुल १३९ अष्टपदिया हैं। अष्टपदी का रूप विन्यास एकसा है और प्रत्येक बध की अतिम पक्ति म मधुशाला शब्द की पुनरुक्ति होती है। जो समस्त पद मे मादकता और सरसता का सचार करती है। प्रत्येक बध अपन मे स्वतत्र और पूर्ण है। पूर्वापर रूप स उनम कोई सम्बन्ध नहा है। फिटजजेरल्ड ने उमर खय्याम की ६७४ रुबाइयो म से जिन ७५ रुबाइयो का अग्रेजी म अनुवाद करके प्रस्तुत किया था वे आत्मपूर्ण होते हुए भी अपने क्रम म एक कथा को प्रस्तुत करती थी। बच्चन जी ने 'मधुशाला के प्रथम सस्करण म उमर खय्याम की समता पर ७५ अष्टपदियां ही प्रस्तुत की थी। इनमें भी एक गाथा के सूक्ष्म तत्त्वों की योजना

और विविध भावनाओ के बीच तारतम्य भी बढ जाता था।

(१) मृदुभावो की अगूरी हाला

'मधुशाला' के आरम्भिक पद म वे पहले अपने प्रियतम को सबोधित करते हुए कहते हैं कि मैं अपने मदुभावा क अगूरा की हाला बनाकर लाया हूँ। इसका पहले तुम्हें भोग लगाऊगा फिर ससार उसका प्रसाद पायेगा। उनकी मधुशाला सबसे पहले प्रियतम का ही स्वागत करती है। इसके पश्चात वे प्रियतम से अपना अद्व त सम्बध विज्ञापित करत हैं —

प्रियतम तू मेरी हाला है।
मैं तेरा प्यासा प्याला,
अपने को मुझमे भरकर तू,
बनता है पीन वाला।
मैं तुझको छक, छलका करता
मस्त मुझे पी तू होता
एक दूसरे का हम दोनो
आज परस्पर मधुशाला।

(२) कल्पित कल्पना की हाला

कवि रूपी साकी भावुकता रूपी अगूरलता से कल्पना का हाला खीचकर लाया है। वह कल्पना के हाथो से ही उसे पान करता है। यहाँ पर कल्पना श द विशेष महत्वपूण है। हाला कल्पना की है जीवनानुभूति रहस्यसाधना या दाशनिक मन्तव्य की सूचक नही। कल्पना श द का अनेक बार प्रयोग करके कवि बीच बीच म यह सजग करता जाता है कि मेरी हाला भौतिक नहा, काल्पनिक है। मधुशाला के अन्त म भी कवि ने कल्पित कल्पना श द को रखकर उसकी अयथार्थता उदघोषित की है

कलित कल्पना का ही इसन
सदा उठाया है प्याला
मान दुलारो स ही रखना
इस मरी सुकुमारी को
विश्व तुम्हार हाथा म अब
सौंप रहा हू मधुशाला।

उमर खय्याम ने अपना हाला का कभी भी कल्पित नही कहा, इसका मत य यही है कि बच्चन का हालावाद जीवन की गहन रहस्यानुभूतियो से अनुबधित न होकर काल्पनिक भावो मात्र है। मधुशाला के पथ क पथिका को सबोधन करक भी वे कहते हैं

मुख से तू अविरत कहता जा
मधु मदिरा मादक हाला,
हाथों में अनुभव करता जा
एक ललित कल्पित प्याला।
ध्यान किए जा मन में सुमधुर
सुखकर सुन्दर साकी का।

और जब मदिरा पीने की अभिलाषा ही हाला बन जायगी, अधरों की आतुरता में ही प्याला आभासित होने लगेगा ध्यान करते करते जब स्वयं साकी हो जाओगे और जब हाला प्याला, साकी का अस्तित्व न रहेगा, तब मुझे मधुशाला मिल जायगी।

[३] दग्ध प्राणों की कविता

इसके पश्चात उन्होंने मधुशाला का सांगीतिक चहलपहल मधुबाला का इन्द्र धनुषी शृंगार उसके नाज नखरे आदि का चित्रण किया है। हाला मधुशाला के गुणों का भी उल्लेख उन्होंने किया है उनकी हाला सामाजिक हाला से पृथक है, वह जगती की शीतल हाला नहीं, ठंडा प्याला नहीं वह तो जलते हुए प्याले में ज्वाला की सुरा है दग्ध प्राणों की कविता है। बच्चन की मधुशाला साम्प्रदायिक वातावरण से ऊपर है वह केवल उसी पीने वाले का स्वागत करती है जो सारे धर्म ग्रंथों को जला चुका हो मन्दिर मस्जिद गिरजे की चहारदीवारी से निकल आया हो और पंडित, मोमिन और पादरियों के संकीर्ण ज्ञान को नष्ट भ्रष्ट कर चुका हो।

[४] विश्व विजयिनी मधुशाला

इसके पश्चात उनका कथन है कि जिसने हृदय विकंपित होकर मधु का प्याला पान नहीं किया, उसका जीवन निरर्थक है। मधुशाला को वे कालातीत कहते हैं। मन्दिर मस्जिद नष्ट हो जाय, बड़े-बड़े परिवार और राज्य उलट जाय पर पीने वाले और मधुशाला नष्ट नहीं हो सकती। मधुशाला नित्य नवेली है। विश्व विजयिनी है। वह स्वर्ग लोक से सीधी वसुधा पर अवतरित हुई है सांसारिक दुख उसे स्पर्श तक नहीं कर सकता वह नित्य प्रति दिन को होली और रात को दीपावली का महोत्सव मनाता है। उसकी इस प्रकार महिमा-गान करने के बाद बच्चन का कथन है कि परस्पर मिलते समय अब जयराम न कहकर 'जय मधुशाला' के उच्चारण द्वारा अभिवादन किया करो।

[५] सर्वात्मवादी हाला

बच्चन जी ने विश्वव्यापी विराट रूप की सृष्टि करते हुए प्रकृति के कण कण में मधुशाला के दर्शन भी किये हैं—

किसी ओर मैं आखें फरूँ
दिखलाई देती हाला
किसी ओर मैं आखें फरूँ
दिखलाई देता प्याला।
किसी ओर मैं देखूँ मुझको
दिखलाई देती साकी,
किसी ओर देखूँ, दिखलाई
पड़ती मुझको मधुशाला।

सूय सिधु बलि विटप तण तारक समीरण, उपवन, रसाल, मजरी, मधु ऋतु, अरुण ऊषा सध्या, अधकार शशि योगिराज कृष्ण की वशी राग रागिनियाँ प्रकृत वीणा चित्रकार लोल लहरें मानसरोवर चञ्चल नदियाँ लहराते खेत आदि सभी उपादानो म उन्हे मादक हाला प्याला साकी और मधुशाला ही दिखायी देती है।

[६] सदा सुहागिन मधुशाला

बच्चन जी मदिर मस्जिदादि से मधुशाला का तुलना भी करत हैं और उसे सदा सुहागिन कहते हैं। मन्दिर मस्जिद आदमी आदमी के बीच म बरभाव बढ़ाते हैं पर मधुशाला उनम मल कराती है। वे मधुशाला को पावन तपोवन का रूपक भी दत हैं। वे हाला के मूल स्रोत भी वदिक ग्र था म खोजत हैं। वेदा मे वह सामरस थी वारुणी थी वह वेद विहित है सदा से पूज्य रही है। मधुशाला समानता का पाठ पढाती हुई, जनता के मानस को बदलन के लिए सौ सुधारको का काय अकेली ही सम्पन्न करती है। धन्न विन रक राव आदि किसी म भी वह भेद नही करती। इस तरह वह साम्यवाद की प्रथम प्रचारक है।

[७] उन्मुक्त भोग

उमर खैयाम की तरह बच्चन जी भी कल पर विश्वास नही करते। वतमान जीवन ही उनके लिय उपभोग्य है। वे लिखत हैं—

कब ! कल पर विश्वास किया कब
करता है पीने वाला,
आज हाथ म था वह खोया
कल का कौन भरोसा है। (पद ६१)

खयाम की ही तरह उन्होने भी अपनी सुमुख प्रेयसि को सम्बोधन करके यौवन मधुरस की मधुर मादक हाला का अनवरत रूप से पिलाते रहने की कामना की है।

क्षणिक जीवन का दुःख और असम निराशा के व्याप्त साम्राज्य की ओर भी उनकी दृष्टि गई है। जगत में 'आने के साथ ही जाने' का क्रम प्रारम्भ हो जाता है, जन्म लेते ही मनुष्य मरना प्रारम्भ कर देता है। स्वागत के साथ ही विदा की तयारियाँ होने लगती हैं और जीवन की मधुशाला खुलते ही बन्द होने लगती है। इस प्रकार तृप्ति की जगह मधुशाला अतृप्ति को जन्म देती है। बुझने की जगह प्यास और तीव्र हो जाती है।

[८] भाग्यवाद क्षणवाद

बच्चन भाग्यवाद का भी समर्थन करते हैं। लाख हाथ पात्र पटकने पर कुछ होने-जाने का नहीं क्योंकि भाग्य में जो मधुशाला लिखी होगी, वही प्राप्त होगी, अन्यथा नहीं। वे मानव को मिट्टी का प्याला कहते हुये उस क्षीण, क्षुद्र, क्षणभगुर और दुर्बल कहते हैं जिसके भीतर कटु मधु जीवन की हाला भरा है।

एक पद में उन्होंने मधुशाला के अपने प्रतीक को भी स्पष्ट किया है। उनकी मधुशाला वह नहीं है जहाँ मदिरा बेची जाती है, प्रत्युत जहाँ पर मस्ती की भेंट मिला करती है वही पर उनकी मधुशाला है। अर्थात मधुशाला मतवालेपन या मधुरता की सूचक है। 'जाकी रही भावना जसी' के अनुसार वे यह भी कहते हैं कि मधुशाला हाला प्याला और साकी प्रत्येक व्यक्ति की रुचि के अनुरूप अर्थ और मादकता का सचार करते हैं—

जितना ही जो रसिक उसे है
उतनी रसमय मधुशाला (१२८वा पद)
या— जिसकी जसी रुचि थी उसने
वसी देखी मधुशाला। (१३१वा पद)

अन्त में बच्चन जी ने मधुशाला की निर्माण प्रक्रिया का भी सकेत दिया है जो विशेष ध्यान देने योग्य है। मधुशाला सहज ही नहीं निर्मित हुई इसके निर्माण में न जाने कवि के कितने अरमान और मन के महल ढह गये हैं। तब कहीं जाकर इसका यह स्वरूप बन सका है। मधुशाला में आद्यन्त कवि कल्पना का सहारा लेकर उसके स्वरूप का विशद रूप से आख्यान करता है। उसके बीच-बीच में उमर खयाम के स्वरों की प्रतिध्वनि है। इसके मूल में कोई गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक भूमिका न होकर वैयक्तिक जीवन के करुण अवसाद को भूलने का प्रयास है, जीवन के निराशामूलक भाग्यपरक, क्षणभगुर और नियतिवादी स्वरूप की अभिव्यंजना है। बच्चन जी ने मधुशाला को जहाँ विश्वव्यापी रूपकों में प्रस्तुत किया है, वहाँ उनकी रसमयता प्रौढ प्रतिभा और मौज मस्ती भरा जीवन दृष्टि का निस्सदेह प्राबल्य है, किन्तु यह उपक्रम जीवन साधना का परिणाम न होकर कल्पना प्रवणता का कौतुकपूर्ण खेल

है। यही कारण है कि सुनिश्चित जीवन-दर्शन के अभाव में यह ख्याली मस्ती बहुत समय तक टिक नहीं सकी।

साग्रह विचारात्मकता

हम कह चुके हैं कि मधुशाला की अपेक्षा बच्चन जी की मधुबाला और मधुकलश' में अतिरिक्त बौद्धिकता है। साग्रह विचारात्मकता के प्रवेश ने इन्हें पहली कृति के समान रसपेशल नहीं बनने दिया। लोकप्रियता इन्हें भी प्राप्त हुई है और प्रत्येक कृति के दर्जाधिक संस्करण निकल चुके हैं किन्तु हमारा मन्तव्य यह है कि जो भावप्रवणता और कल्पनाकुशलता मधुशाला' में है, वह इन कृतियों में अपने प्रकृत रूप में नहीं दिखाई देती। द्वितीय बात यह है कि इन दोनों में मधुशाला की विचारधारा प्रतीकों उपमानों और रूपकों का ही आवर्तन है। विचारों या भावों का नयापन बहुत ही स्वल्प है। हाला प्याला साकी और मधुशाला के जिन गुणों का उल्लेख बच्चन जी ने मधुशाला में किया है उन्हीं का किंचित शब्दों के हेरफेर द्वारा कथन इन कृतियों में भी किया गया है।

विषय वस्तु और कलात्मक उपकरणों के आवर्तन के कारण बच्चन जी की परवर्ती कृतियों की लम्बी लम्बी रचनाओं में वह सरसता मस्ती और जीवन की उत्फुल्लता भी नहीं आ सकी है जो मधुशाला की अष्टपदियों में विद्यमान है। मधुशाला में जहाँ कवि प्रतिभा का स्वाभाविक स्फुरण है समासहीन सहज शब्दों में जो कलरव और श्रुतिपेशलता है तथा जन साधारण की भाषा की जो जीवनी शक्ति है वह भी परवर्ती काल में विचार बोझिल होकर बहुत कुछ श्रमसाध्य और अलकरण प्रधान हो गई है। भाषा में कलात्मकता का प्रवेश तभी होता है जब भावनाओं का प्रवेग अपेक्षाकृत कम होता है। बच्चन जी की लोकप्रियता के मूल में जनरुचि के अनुकूल उनकी विचारधारा के साथ परिष्कृत जनभाषा का भी अपरिमित योग रहा है। मधुशाला' की भाषा उनकी आदर्श भाषा है जिसके निर्वाह का उन्होंने आद्यन्त प्रयास किया है।

मधुबाला में उनके १५ लम्बे प्रगीत हैं। मधुवर्षिणी मधुबाला का सौन्दर्य भी ललित कल्पना की रंगीनी से निर्मित है—

> यह स्वप्न विनिर्मित मधुशाला
> यह स्वप्न रचित मधु का प्याला
> स्वप्निल तृष्णा स्वप्निल हाला
> स्वप्नों की दुनिया में भूला
> फिरता मानव भोला भाला।

मधुबाला शीर्षक रचना का यह चिन्तन विशिष्ट उपसंहार है। यह उसी

प्रकार का विचारात्मक मन्थन है जो पन्त जी के 'एकतारा' शीर्षक प्रगीत के अन्त मे उपलब्ध होता है। मधुबाला के रूप, गुण सौन्दर्य, प्रकृति आदि का उल्लेख करते-करते वे मानव जीवन की स्वाप्नलता और निरर्थकता का आख्यान करने लगते हैं। मालिक मधुशाला भी ससार का पाठ पढ़ाता है–कटु जीवन म मधुपान करने का, ससार के रोदन म गान करने का और मादकता के सम्मान करने का। किन्तु यह वैयक्तिकता, ससार निरपेक्ष विचारधारा क्या जीवन के लिये उपादेय है? मादकता का सम्मान किया जाय, पर ससार के रोदन म खुशियाँ मनाना और जीवन की कटुता को संघर्ष से पलायन कर मधुपान के द्वारा भुला देना–यह सदेश क्या ग्राह्य है? 'मधुपायी' म बच्चन जी अपनी वैयक्तिक तुष्टि को ही चरम सत्य मान लेते हैं—

कल्पना सुरा औ साकी है
पाने वाला एकाकी है,
यह भेद हम अब ज्ञात हुआ
क्या और समझना बाकी है?

वे क्षणवाद को भी दर्शन के रूप मे ग्रहण करते हैं और 'मधुशाला के कन्धो पर चढ़कर, अपने जीवन के क्षण क्षण को मादकता से भर लेने का उपदेश देते हैं।' 'प्याला' शीर्षक रचना मे उमर खैयाम की 'कूजा नामा' की विचारधारा ही स्पष्ट है। इसमे भी वे वाद-विवाद तर्क-वितर्क को छोड़कर एकमात्र आनन्द करने' का सदेश देते हैं। 'हाला' म हाला की विश्व-व्यापी मादकता का वर्णन किया गया है। 'प्यास' में निराला के 'तुम और मैं' की तरह हाला और जीवन की प्यास के बीच अद्भुत सम्बन्ध दिखलाया गया है। एक दूसरे को परस्पर एक दूसरे की नितान्त आवश्यकता है। प्यास हाला से मिलकर पूर्णकाम हो जाती है, हाला प्यास से मिलकर सार्थक हो जाती है—

तेरी मुझको आवश्यकता
आवश्यकता तुझको मेरी
तुझसे मिल पूर्ण चला बनने
बस इतना ही मेरा परिचय।

'आत्मपरिचय' उनकी एक विशिष्ट रचना है। इसमे उन्होने आत्मपरक शैली म अपना परिचय दिया है। इस परिचय म उनका मौज मस्ती से भरा वैयक्तिक जीवन दर्शन व्यक्त हुआ है। वे कहते हैं कि मैं जग-जीवन का भार ढो रहा हूँ फिर भी अपने जीवन म प्यार करता हू। मैं स्नेह-सुरा का पान करता हू और ससार का कभी भी ध्यान नही करता। मैं ससार के गीत न गाकर अपने मन के गीत गाता हूँ। मुझे

---

१ मधुबाला, सुराही, पदांक ११

यह अपूर्ण संसार अच्छा नहीं लगता मैं स्वय अपना स्वप्नो का संसार लिए फिर रहा हू। दीवानो के वेश मे, निःशेष रूप से मादकता लिए हुए मैं मन मौजो पर मस्त बहा करता हू। लाख यत्न करने पर भी किसी ने आज तक सत्य को नही जान पाया मैं अपन सीखे हुए ज्ञान विज्ञान के बोझ को भुलाना सीख रहा हू और संसार को मस्ती का संदेश देता हू।

(ई) उपसंहार

'मधुबाला' की उपयुक्त रचनाओ की विचारधारा लगभग वही है जो मधुशाला के सागर म स्फुट रूप स संतरित है। मधुकलश म भी प्रकारान्तर से यही वस्तु है। हाँ उनकी इस वयक्तिक वासनात्मक विचारधारा के विरुद्ध किए गये आघातो के उपशमन का प्रयास उसम अतिरिक्त है। बच्चन की ये अनुभूतियाँ और विचारधारायें हिन्दी पाठको की प्रकृति के विपरीत थी। वे अपरिचित थी और भारतीय काव्य परम्परा से भी मेल नहीं खाती थी। साथ ही सामाजिक जीवन की दृष्टि से वे अस्वस्थ और सविकार थी। इसलिए उनका सर्वाधिक विरोध हुआ और उन्हें कवि की निराशा जन्य प्रतिक्रिया के द्वारा उदभूत कहा गया। कवि ने धार्मिक साम्प्रदायिकता के साथ खुला विद्रोह किया है, मंदिर मस्जिद और गिरजघरो का द्वप और घृणा का प्रचारक कहा है और मदिरालय को साम्यवाद का निकेतन, पर क्या मधुशाला वरेण्य है? इस विद्रोह की सामाजिक उपादेयता क्या है? मस्तानापन जीवन म आवश्यक है पर क्या वह हाला की कल्पना से ही सभव है? मदिरालय की शरण म ही मुबारक होता है? क्या वयक्तिक तृप्ति ही अलम है, सासारिक जीवन का कमठता निरर्थक है? यदि इस सारी की सारी विचारधारा को रहस्यवाद की सामग्री मान लिया जाय और मधु और मधुशाला को सूफी कवियो की तरह पद्मिनी' मान लिया जाय तो भी इसमे रत्नसेन' की साहसिक और साधनापूर्ण यात्रा का अभाव है। मैं नही चाहता कि बच्चन जी के मधुगीतो पर दर्शन और रहस्य के आवरण चढाकर उनकी आत्मा का हनन किया जाय। वे लौकिक जीवन की मौज मस्ती से परिपूर्ण सरस सुन्दर और भावना प्रवण गीत हैं उनमे मानवीय जीवन की ताजगी और उत्फुल्लता निहित है। उन्हे उनके प्रकृत रूप म ही ग्रहण किया जाय। वे सरस काव्य के उदाहरण हैं। वाद के कठघर तो काव्य के स्वच्छन्द रसपान मे बाधक ही होते है। रहस्यवाद की वर्तुल परिधि म आकर बच्चन के गीतो की लोकप्रियता नही बढेगी उनकी विचारधारा उमर खयाम की तरह फिर भी निराशा और पलायनवादी ही कही जायगी, वस्तुत उनके मधुगीतो म दार्शनिक विचारधारा का महत्व न होकर मानव की प्रकृत भावनाओ तथा मस्ती का आह्लाद है, जो उमर खयाम की रुबाइयो की तरह कभी कम न होगा। हाला, मधुशाला और

मधुबाला तो बहाना हैं उनकी कल्पना के द्वारा जो मस्ती प्राप्त होती है वह मानवीय जीवन की सक्रियता के लिए सुख दुःख, राग विराग, घृणा द्वेष, आशा निराशा, सफलता असफलता आदि के द्वन्द्व म अचल, अप्रभावित रहने के लिए अतीव आवश्यक है। यह विधायक वस्तु उनके गीतो म विद्यमान है और लोग उनका मधुपान कर अपने जीवन की कटुता का रचन कर स्वस्थ और निर्विकार हो जाते हैं। बच्चन के गीतों की यही सार्थकता है। उनके गीत जीवन सदेश और आगे बढ़ते रहने के लिए महान कवियो की भाति उद्बोधन नही देते वरन् सम विषम परिस्थितिया म मस्त रहने का आग्रह करते हैं। कवि जीवन से थककर भागा नही है उसकी अपूर्णता को उसने अपने स्वप्नो की मादकता के द्वारा भरने की चेष्टा की है और इसी चेष्टा मे उनके निराश उदास जीवन म मस्ती का एक नया ससार ही बस गया है।[1] प्रसाद जी के जीवन म भी एक मादक मस्ती थी, बनारसी रग था, जिसन उन्हें आनन्दवादी और समरस बनाया। यही मस्ती निराला और नवीन के फक्कड जीवन म भी थी, पर इनमे से किसी ने भी हाला का गुण गान नहा किया, ऐकान्तिक तृष्णा और स्वप्निल मादकता के क्षणवादी गीत नही गाये। उनका काव्य उनके कर्ममय जीवन की क्रियायें और प्रतिक्रियायें रहा। बच्चन जी न स्वप्निल मधु क द्वारा अपने जीवन के रिक्त पात्र को भर कर उसका प्रशस्ति गान किया है। जायसी की नागमती सूर की राधा, मीरा और महादेवी की तरह बच्चन न अपनी परमशक्ति हाला और कवरय धाम मधुशाला के वियोग म आखो से गगा नही बहाई, अश्रुओ की अजलि नही चढाई। मधु मधुबाला और मधुशाला के साथ उनका रागात्मक सम्बन्ध न होकर कल्पनाकुल और बुद्धि विशिष्ट सम्बन्ध है। उन्ह केवल मस्ती से काम है जो असाधित है। पर यह मस्ती क्या? किसलिए? उत्तर है मस्ती के लिए मस्ती! यह दशन भी वयक्तिकता स ग्रस्त है। जो मस्ती निष्प्रयोजन है वह किस काम की? यदि कहा जाय कि सांसारिक जीवन की विषमता को भूलने के लिए? तो यह एक पलायनवादी जीवन-दशन है क्योकि मादकता की मस्ती म मस्त हो जान पर भी ससार की विषमता दूर नहीं होने की?

पत जी ने बच्चन की इस मदिरा प्रसूत मस्ती की बहुत प्रशसा की है और कहा है कि यह अमृत सजीवनी है जिसे मृत्यु भी पान कर जीवित हो उठती है यह मस्ती जीवन चत य की मस्ती है वह शिव सौ दय तथा आनन्द की प्रतीक है वह जीवन के आत्मिक उल्लास से प्रसूत है, वह अलौकिक शक्ति का रूपान्तरण है। वह

१ राग के पीछे छिपा चीत्कार
वह देगा किसी दिन ।
हैं लिखे मधुगीत मैंने
हो खडे जीवन समर म।

बच्चन के आरम्भिक का य मे वासना का उदगार न होकर साधना का उदगार है। आप बच्चन जी के हालावादी या मधुवादी का य को उसी धरातल पर चेत य का य भी कहते हैं।

बच्चन तथा पत जी के अत्य त सुहृद सम्ब ध रहे हैं और निश्चित हा पत जी यहाँ तटस्थता से काम न लेकर पूर्वाग्रहा स प्रभावित हैं। बच्चन जी की इस क्षणिक या अल्प स्थायी मस्ती को हम कभी भी पत जी की अतश्चेतनावादी रचनाओं की तुलना म नही रख सकते, क्योंकि चेतानाकाव्य के लिए जो दाशनिक–सास्कृतिक धरातल की अपेक्षा होती है, वह काल्पनिक नही हो सकता, यक्तिनिष्ठता' तथा एकान्तिकता' की विशेषतायें भी इस दिशा मे बाधक होती हैं, जो बच्चन जी के मधु पर्वी गीतो की आधार शिलायें हैं।

---

४ | प्रगतिवाद

[अ] 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' शब्द –

प्रगतिवादी उपर्युक्त दोनों शब्दों को पर्याय-रूप में ग्रहण करते हैं किंतु इस सदर्भ में प्रश्न हो सकता है कि क्या प्रगतिगामिता के तत्व केवल प्रगतिवाद में ही निहित हैं ? या विश्व के अन्य साहित्यिक वादों में भी हैं ? अथवा प्रगतिवाद में उनका प्रकर्ष है और इतरवादों में विरलता ? साहित्य समाज की क्रिया-प्रतिक्रियाओं की मुखरित वाणी है। परिवर्तनशीलता समाज का सहज और शाश्वत धर्म है इसलिए हर देशकाल विशेष में सामाजिक, राजनीतिक मानसिक आदि पृष्ठभूमियों के अनुरूप साहित्य भी बदलता रहा है या कहें प्रगतिशील रहा है। वह कोई जड़ या निर्जीव वस्तु नहीं जो अचल हो, प्रगतिहीन हो, उसकी चिरंतनता और शाश्वतता समय का साथ देने में निहित है। इस दृष्टि से कौन सा साहित्य प्रगतिशील नहीं है ? जब सब कुछ गतिशील है तब उसे 'वाद' की सीमा में जकड़कर जड़ बना देना, उसके साथ अन्याय करना है। 'वाद' एक देश-काल विशेष और समाज की सत्-स्थिति के प्रकर्ष को घोषित करता है वह अपनी सीमाओं में बंदी रहता है पर साहित्य परिस्थितियों के अनुरूप अपनी वादों-केंचुली त्यागकर नए साँचे में ढल जाता है। यह दूसरी बात है कि साँचे की रूपाकृति के निर्माण में स्वदेशी वातावरण या विदेशी विचारधारायें अथवा दोनों ही सक्रिय हों। पर पूर्णतः उत्खात करके कोई भी वस्तु एकाएक अपरिचित परम्पराहीन और अनुर्वर स्थान में नहीं लगाई जा सकती। यहाँ हमें देखना यह है कि प्रगतिवाद की प्रगतिवादिता क्या है और क्या वह स्वदेशी वस्तु है या विदेश से आयात की गई है ?

छायावाद की क्रोड से हिंदी में जो नया साहित्यिक आंदोलन उठा, वह प्रगतिशील होते हुए भी एक सम्प्रदाय विशेष की वादात्मक सीमा में आबद्ध है। यहाँ 'शील' और 'वाद' का विवाद है। प्रगति दोनों में है पर एक की प्रगति 'शीलता' से युक्त है और दूसरे की उससे विरहित। 'शील' से हीन होने पर प्रगति वाद का रूप धारण कर गई है और एक विशेष जीवन-संदेश को इष्ट मानकर अग्रसर हुई है पर मानवीय जीवन की प्रगतिशीलता थोड़े ही समय में उस जीवन-दर्शन

अतिरेक कर गई और प्रगतिवाद हिन्दी—साहित्य मे इतिहास बनकर रह गया। यह एक विचारात्मक प्रवेग था जो तत्कालीन परिस्थितियो से आक्रान्त होकर वात्याचक्र की भांति उठा और हालावाद की तरह चार—पाच वर्षों म ही अपने प्रवष पर पहुचकर समाप्त हो गया। पर हालावाद म जहा जीवन के प्रति पलायन, निराशा, मौज मस्ती आदि का जीवन-दशन था वहीं प्रगतिवाद जीवन की कमठता का वज्र निनाद है। सघर्ष की पु जीभूत वाणी है नयी आशा—आकाक्षाओ का राग है, क्रान्ति की ज्वाला है पू जीवाद के द्वारा शोषित प्राणियो के प्रति महानुभूति प्रदर्शित करने वाला भौतिकवाद है। प्रगति का तात्पर्य यहाँ पर केवल शोषित वग की प्रगति से है। मानवीय जीवन की सर्वांगीण प्रगतिशीलता इस वैचारिक दशन म नही मिलेगी। भारतीय आध्यात्मिक प्रगति, काम धम और मोक्ष म सबधित जीवन का उन्नयन प्रगतिवादियो का उद्देश्य नही अर उनका प्रस्थान बिन्दु है। अथ का समान वितरण और समाज से विषमताओ का अभाव ण उनका मलक्ष्य है। प्रगतिवाद को पारलौकिक उन्नति स कुछ भी मतलब नही वह एक विशुद्ध लौकिक और सामाजिक जीवन दशन स सम्बद्ध एक राजनीतिक विचार—धारा है। प्रगतिवाद और प्रगतिशील के इस अन्तर को भूलकर अनेक प्रगतिवादी अपने को प्रगतिशील ही कहते हैं। 'निराला और पत जी की कुछ रचनाओ को भी प्रगतिवाद की मीमा मे परिगणित किया जाता है। इसम सदेह नही कि कुकुरमुत्ता म निराला जी की प्रगतिशीलता व्यक्त है और युगान्त', युगवाणी और ग्राम्या म पत जी ने उस युग की प्रगतिवादी वाणी को प्रस्तुत किया है पर ये कवि प्रगतिवादी वचारिकता को प्रस्तुत करते हुए भी अपनी दृष्टि अथ पर केन्द्रित नही करते। भौतिक उन्नति को ही जीवन का सवस्व नहीं मानते। ये भारत की आध्यात्मिक और दार्शनिक परम्परा से अनुबंधित कवि हैं। भौतिक उन्नति की अपेक्षा ये मानसिक और आत्मिक उन्नति पर—विशेष बल देते हैं। यही कारण है कि प्रगतिवाद का श्रीगणेश करके भी पत जी मार्क्सवादी विचारधारा का समन्वय गाधी जी की सत्य—अहिंसामयी आध्यात्मिक विचारधारा से करते हैं और जब इस काय म कृतकृत्य नही होते तो अरविन्द-दशन की ओर मुड जाते हैं। निराला जी प्रगतिवादियो पर भी कठोर व्यग्य करते है। उनका कुकुरमुत्ता' शोषितो का प्रतीक है और गुलाब पू जीपतियो का पर इस कृति का, व्यग्यात्मक सदेश यही है कि मानवीय जीवन-दशन और समाज का अभ्युदय न तो पू जीपतियो के, द्वारा सभव है और न कुकुरमुत्ता की सस्कृति के द्वारा। हम इन दोनो स ऊपर उठना होगा। अपने चतुथ याम म निराला जी भी यह-प्रगतिवादी-दृष्टि छोडकर प्रार्थनापरक आध्यात्मिक गीतो की सजना करते हैं। इस प्रकार निराला और पत जी पूणत प्रगतिवादी नही है व प्रगतिशील कवि है।

प्रेमचन्द जी भी प्रगतिवादी न होकर प्रगतिशील लेखक हैं। केवल शोषित

वर्ग का ही वे पक्ष न लेकर मानवता के उन्नयन की बात करते हैं। इस तरह निराला और पन्त की तरह उनका भी समस्त साहित्य मानवतावाद की उदात्त भूमिका पर आधृत है। प्रगतिवादी लेखक और कवि भी मानवतावाद की सरगम बजाते हैं पर उनकी मानवता का अर्थ है पूँजीपतियों के द्वारा उत्पीडित जनों के प्रति मानवीय सहानुभूति से युक्त भावना का ज्ञापन या बौद्धिक स्तर पर समानानुभूति।

इस तरह इन शब्दों में एक सूक्ष्म अन्तर विद्यमान है जिस पर हमें ध्यान रखना आवश्यक होगा। यद्यपि इस अन्तर को डा० नामवर सिंह केवल बौद्धिक विलास कहते हैं और इसे निरर्थक बताते हैं। किसी को कम या अधिक प्रगतिवादी या प्रगतिशील कहना भी आपको पसंद नहीं और प्रगतिशील साहित्य को आप 'अंग्रेजी' प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद कहते हैं। 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' में प्रगतिवादी साहित्य के ही तार स्वर हैं। उन्होंने लिखा है कि यह विरोध प्रच्छन्न विरोध-भावना से किया जा रहा है किन्तु प्रगतिवादी होने के लिए उस जीवन—दर्शन में पूर्ण निष्ठा तो आवश्यक है। यदि उसका अभाव हो या अति व्याप्ति हो तो भी क्या हम उन्हें प्रगतिवादी कहें? ऐसा कहना उनके साथ न्याय न होगा अतएव यह अन्तर लेकर चलना ही श्रेयस्कर होगा।

प्रगतिवाद की प्रेरणा भूमियाँ –

[क] युग-चेतना

प्रगतिवाद को मार्क्सवाद से प्रभावित एक विदेशी वस्तु भी कहा जाता है। पर हम कह चुके हैं कि जब तक हमारे अन्तःकरण और वातावरण में युग—चेतना की स्पन्दनशीलता न हो तो हम बाहर के प्रभावों को ग्रहण ही नहीं कर सकते। छायावाद के भी पूर्व, पश्चिम में मार्क्सवाद का प्रभाव फल-फूल चुका था। १९१७–१८ में रूस में जनक्रान्ति हो चुकी थी और श्रमिक वर्ग के हाथों में देश की बागडोर आ गई थी। उस समय भारत में प्रगतिवाद क्यों न पैदा हुआ? इसका सीधा उत्तर यही है कि उस समय हमारे देश का मानस उन प्रभावों का ग्रहण करने के लिए सक्षम नहीं था। उस समय देश में वे परिस्थितियाँ ही नहीं थीं जिनमें प्रगतिवादी तत्वों का उद्भव और उन्नयन हो पाता। हमारे देश में इस शताब्दी के आरम्भ से ही औद्योगिक प्रगति प्रारम्भ हुई है। प्रथम दो दशकों तक यह प्रगति बहुत ही कम थी अतएव शोषक–शोषितों की समस्यायें बहुत स्वल्प थीं धीरे धीरे औद्योगिक प्रगति तीव्र हुई और समाज में अंग्रेजी साम्राज्यवाद और भारतीय सामंतवाद के साथ–साथ पूँजीवाद और व्यक्तिवाद का तीव्रता से विकास हुआ। व्यक्तिवाद की वैयक्तिकता, छायावादी काव्य में आत्मनिष्ठा के रूप में अभिव्यंजित हुयी है। इस समय देश अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहा था। स्वतन्त्रता–प्राप्ति का तात्पर्य था साम्राज्यवाद और सामंतवाद से मुक्ति। १९२० के पूर्व

पूँजीवाद ने अपना विकराल रूप नही दिखाया था अतएव इस समय तक समाज मे सभी वर्ग—पूँजीपति और रक, स्त्री पुरुष मिलकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील थे किन्तु १९२८ के आसपास पूँजीपतियों ने अपने-कल-कारखानो-मे-श्रमिक मजदूरो का शोषण तीव्रता से प्रारम्भ किया फलत मजदूरो ने सगठित होकर पूँजीपतियो के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किये। अपनी आवश्यकताओ और सुविधाओ की माग की उनकी पूर्ति न होने पर हडतालें की। इस समय तक भारतीय समाज शोषक और शोषित इन दो इकाइयो मे बँट गया था। समाज का मानस इस समय ऐसी सवेदनामय अवस्था से गुजर रहा था जबकि उनपर वाह्य साम्यवादी (कम्युनिस्टिक) विचारधारा अपना प्रभाव सहज ही छोड सकती थी। अत इस समय १९२७ ई० म सब प्रथम भारत मे कम्युनिस्ट दल की भी स्थापना हुई।

[ख] राजनीतिक स्थितियाँ

अखिल भारतीय कांग्रेस का दृष्टिकोण भी १९३५ ई० तक आते आते विशुद्ध राजनीतिक न रहकर आर्थिक प्रश्नो स परिवेष्टित हो गया था। १९२६ म लखनऊ म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षीय अभिभाषण मे प० नेहरू ने कांग्रेस की नवीन नीतियो पर विस्तार स प्रकाश डाला था और इसके बाद स कांग्रेस सस्था शोषित किसान मजदूरो का पक्ष ग्रहण करके समाजवाद की ओर अग्रसर हुई। इसके पूर्व ही १९३४ म कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हो चुकी थी जिसन समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाया था।

भारत म सब प्रथम प्रगतिवादी विचारधारा का प्रभाव बगाल म प्रकाशित होने वाले 'प्रगति' नामक पत्र पर दिखाई देता है। इसके सम्पादक थे बुद्धदेव वसु और अजितदत्त जो ढाका से इसको प्रकाशित करते थ। १९३४ ई० क लगभग कम्युनिस्ट पार्टी को गर सरकारी ठहराया गया और उसे भग करन के आदेश हुये किन्तु इसके सदस्य परोक्ष रूप से लगातार अपने सिद्धान्तो का प्रचार करत रहे। देवली कम्प जेल म सरकार ने राजनीतिक चेतना वाले आतकवादियो को हत्याओ और नृशस कार्यों के मार्ग से हटाने के लिए मार्क्स तथा लेनिन का साहित्य पढने के लिये दिया। इस कार्य ने कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रसार म परोक्ष रूप से विशेष योग दिया।

[ग] प्रगतिशील लेखक सघ

१९३५ मे लदन के गावरस्टीट के नर्नाकिंग रस्तोरा म अन्तरराष्ट्रीय सस्था 'प्रगतिशील लेखक सघ' की एक शाखा की स्थापना हुई। इसमे मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर भी सम्मिलित हुये थे। इस सस्था का उद्घाटन समारोह फ्रान्स के प्रसिद्ध उपन्यासकार ई० फारेस्टर की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ था। इसी वर्ष पेरिस में भी ई० फारेस्टर की अध्यक्षता में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन नामक

अन्तरराष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ था। भारत मे मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के ही प्रयत्नो से एक शाखा खुली जिसके प्रथम अधिवेशन का नेतत्व प्रेमचन्द्र जी ने किया और द्वितीय का महर्षि रवीन्द्र रवीन्द्र ने। भारत मे इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ मे १९३६ मे हुआ था। अपने अध्यक्षीय भाषण मे प्रेमचन्द्र जी ने यह दढतापूवक उदघोषित किया था कि आज लेखनो के समक्ष जन साधारण के सामाजिक और आर्थिक अभ्युदय का लक्ष्य होना ही चाहिए। उ होने सत्साहित्य के लक्षण निरूपण करत हुए कहा कि 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चितन हो स्वाधीनता का भाव हो, सौदय का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयो का प्रकाश हो जो सबमे गति, सघष और बेचनी पैदा करे सुलाये नही क्योकि और अधिक सोना मरयु का लक्षण है।" इस अवतरण म प्रेमचन्द्र जी ने प्रगतिशील साहित्य के मूल उपकरणों की व्याख्या कर दी है। इस अभिभाषण मे आपने यह भी कहा था कि नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक है—केवल उपदेश विधि म अन्तर है। मुझे यह कहने म हिचक नही कि मैं और चीजो की तरह साहित्य को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। फूलो को देखकर हम इसलिये आनन्द होता है कि उनसे फलो की आशा होती है।" इस अश मे प्रेमचन्द्र जी साहित्य या कला को विशुद्ध सौदय की वस्तु न मानकर उसे एक उपयोगी कला के रूप म ग्रहण करते हैं किन्तु उनके अनुसार प्रत्येक लेखक स्वाभाविक रूप से प्रगतिशील होता है अतएव 'प्रगतिशील लेखक सघ' इस नामकरण म प्रगतिशील शब्द निरथक है।

आरम्भ मे प्रगतिशील लेखक सघ को रवीन्द्रनाथ और शरच्चन्द्र जसे लेखको का भी आशीर्वाद मिलता रहा है। इसका तात्कालिक उद्देश्य तेजी के साथ विश्व म फैलने वाली फासिस्टवादी विचारधारा का विरोध करना रहा है किन्तु बाद मे मार्क्सवादी दर्शन से पूणत दीक्षित होकर यह प्रगतिवाद के नाम से हिन्दी म अवतरित हुआ। मार्क्सवादी सिद्धान्तो का उल्लख प्रेमचन्द ने अपने अध्यक्षीय भाषण म नही किया था। यहाँ तक कि उन्होने प्रगतिशील शब्द पर आपत्ति की थी जिसकी चर्चा की जा चुकी है। इसके विपरीत डा० शिवदान सिंह चौहान ने मार्च १९३७ मे 'विशाल भारत' म भारत म प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता शीर्षक एक लेख लिखा और आर्थिक परिस्थितियो और वग-सघष के बीच साहित्य को रखकर उसकी परीक्षा करने का प्रयास किया। इस निबन्ध म मार्क्सवाद वग-सघष और भौतिकवाद की विस्तत चर्चा की गई है और समसामयिक साहित्य को पूँजीवाद की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन कहा गया है। उन्होंने लेखक वर्ग से यह आग्रह भी किया कि वे वर्तमान साहित्य से ऊपर उठकर वर्गवादी साहित्य की सजना करें।

है कि 'हमारा साहित्यिक नारा कला कला के लिये नहीं, वरन कला संसार को बदलने के लिये है। इस नारे को बुलन्द करना प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यिक का फर्ज है।"

[घ] प्रगतिशील पत्र-पत्रिकायें

प्रगतिवादी साहित्य की प्रथम झलक हमें जुलाई १९३८ में प्रकाशित होने वाले 'रूपाभ' मासिक पत्रिका में मिलती है। इसका संपादन श्री सुमित्रानन्दन पन्त तथा नरेन्द्र शर्मा ने किया था। यह कालाकांकर से प्रकाशित होती थी। इसके प्रथम अंक के सम्पादकीय में पन्त जी ने प्रगतिवादी साहित्य की उद्घोषणा की। आपने लिखा कि 'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार ग्रहण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल मिल गये हैं। श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिये कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'

(रूपाभ जुलाई १९३८ वर्ष १ अंक १।)

प्रगतिशील साहित्य के विकास में रूपाभ' का महत्वपूर्ण योग रहा है। किन्तु यह पत्रिका दो वर्षों तक प्रकाशित हुई और इसके बाद बन्द हो गई।

१९३८ के अन्त में पन्त जी की युगवाणी प्रकाशित हुई जिसे प्रगतिवादी साहित्य की प्रथम सशक्त वाणी कहा गया। इसमें पन्त जी के गद्यगीत हैं। इन रचनाओं ने तथा रूपाभ में प्रकाशित प्रगतिवादी कविताओं ने जन मानस को आकृष्ट किया और इस प्रकार व्यापक स्तर पर प्रगतिवादी रचनायें लिखी जाने लगीं। इसी समय उच्छृंखल' शीर्षक एक अल्पजीवी पत्रिका का भी प्रकाशन हुआ जिसपर प्रगतिवाद के साथ अन्तश्चेतनावाद का प्रभाव था। १९४१ में डा० शिवदान सिंह चौहान काशी से प्रकाशित होने वाले श्री प्रेमचन्द्र जी के मासिक पत्र हंस के सम्पादक हुये तब से इसमें भी व्यवस्थित रूप से प्रगतिवादी दर्शन की विस्तृत व्याख्यायें और तद्विषयक रचनायें प्रकाशित होने लगीं। इसी समय हिन्दी साहित्य के पूना अधिवेशन के अध्यक्षीय पद से वक्तव्य देते हुये आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता, महत्ता आदि का जोरदार शब्दों में समर्थन किया था किन्तु बाद में जब प्रगतिशीलता वादबद्ध हुई तो आपने उसकी निन्दा भी की।

[ङ] साम्यवादी प्रचार प्रसार

१९३८ से द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया था जिसका प्रभाव विश्व भर के लेखक वर्ग पर पड़ा। इसी समय के आस पास सर स्टफर्ड क्रिप्स भारत आये और

उनकी इस यात्रा के पश्चात कम्युनिस्ट पार्टी पुनः वैधानिक घोषित कर दी गई अतः साम्यवादियों को अपने सिद्धान्तों के प्रचार का उपयुक्त अवसर मिल गया। १९४३ ई० में बंगाल का अकाल पड़ा जिसमें भारत की यन्त्रणाओं के पश्चात लगभग ५० लाख व्यक्तियों की जानें गईं। इस भीषण घटना से प्रभावित होकर सम्पूर्ण भारत के साहित्यिक जन पीड़ा के लिये महती संवेदना व्यक्त करने लगे। जन मानस में बंगाल के इस अकाल की दुरवस्था और मूल कारणों-अंग्रेजों की स्वार्थ और शोषणपूर्ण नीति को समाप्त करने की अदम्य आकांक्षायें जाग्रत हुईं। इन परिस्थितियों ने भी तत्कालीन साहित्य में परिवर्तन कर उसे प्रगतिशील रूप दिया।

[घ] शैक्षणिक प्रसार

डा० राम अवध द्विवेदी के अनुसार हिन्दी साहित्य में समाजवादी या प्रगतिशील विचारों के बढ़ने का एक आनुषंगिक कारण विश्वविद्यालयों के द्वारा होने वाला शिक्षा प्रसार भी है। नव युवक विश्वविद्यालय में नई विचार धाराओं से परिचित और प्रभावित हुए। मार्क्सवाद के साथ वे फ्रायड के मनोविश्लेषण तथा प्रतीकवादी विचार धाराओं को भी अपने काव्य में प्रश्रय देने लगे। प्रगतिवादी लेखकों पर मार्क्स तथा लेनिन की विचार धारा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। किन्तु इसी समय १९४३ ई० में प्रयोगवाद का जन्म हो गया जो पाश्चात्य प्रतीकवादियों—वर्लेन, मलार्मे, वैलरी, रिल्के, ईयट्स, इलियट, फ्रायड आदि की विचारधाराओं से प्रभावित रहा है। आरम्भ में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद साथ-साथ विकसित होते रहे हैं पर परवर्ती काल में प्रयोगवाद ने प्रगतिवाद को दबा दिया। इस भूमिका का आशय यह है कि हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का उद्भव और विकास सहसा ही नहीं हुआ, वरन यह युग की पुकार थी। उस युग की परिस्थितियों में केवल प्रगतिशील और प्रगतिवादी साहित्य ही पनप सकता था और पनपा भी और जब समाज तथा देश की परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ, प्रगतिवाद को छोड़कर साहित्य प्रयोगवाद के रूप में हमारे सामने आया।

[आ] मार्क्सवाद

प्रगतिवाद को सम्यक ढंग से समझने के लिये हम उस पर सर्वाधिक प्रभाव डालने वाले मार्क्सवाद का स्वरूप जानना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में डा० रांगेय राघव का कथन है कि महान लेखक प्रायः ही अपने भीतर प्रगति तत्व धारण करता है। प्रगति जन कल्याण है, कितनी अधिक, कितनी कम इसका निर्धारण, प्रगतिशीलता के मानदण्ड कर सकते हैं। प्रगति संसार में सदैव रही है जीवन में भी, साहित्य में भी, किन्तु अब हम जिसे प्रगतिशीलता कहते हैं वह सामाजिक सभा, क.

विश्लेषण के आधार पर स्थित है और उसी के आधार पर हम किसी कवि को तत्कालीन राजनीति में सापेक्ष रूप से रखकर उसकी आलोचना करते हैं। इस नयी भावना का जन्म मार्क्स से हुआ, जिसने वर्ग-संघर्ष की वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत की। मार्क्स, ऐंगिल्स, लेनिन स्टालिन तथा माओत्सेतुंग ने साहित्य पर अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं। उनकी विवेचना का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद की कसौटी रहा है।' —(प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड।) यह उद्धरण हमने यहां सप्रयोजन अवतरित किया है। डा० रांगेय राघव एक प्रतिष्ठित प्रगतिवादी समीक्षक हैं। उन्होंने अपने इस कथन में स्वयं उन प्रभावों का उल्लेख कर दिया है जो प्रगतिवाद पर पड़े हैं अतएव इस सम्बन्ध में किसी विवाद की विशेष गुंजाइश नहीं रह जाती।

मार्क्स के दर्शन का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। डायलेक्टीकल एक पुराना शब्द है। यूनान में यह दर्शन शास्त्र की एक ऐसी शैली थी जिसमें दो विरोधी दल तर्क-वितर्क और खण्डन मण्डन द्वारा अपने अपने पक्ष का समर्थन करते थे। किन्तु आधुनिक युग में हीगल ने इस शब्द को नये अर्थ में प्रयुक्त किया है। वह उसे द्वन्द्ववादी विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी दृष्टि से विकास के लिए परस्पर विरोधी तत्त्वों का मिलन अतीव आवश्यक है। इसे वह स्थापन, प्रतिस्थापन और समन्वय (थीसिस ऐंटी थीसिस और सिनथसिस) कहता है।—यथा-कोई वस्तु 'अ' है तो उसका विरोधी 'ब' उत्पन्न होगा। विकास के लिए इनमें परस्पर द्वन्द्व या संघर्ष होगा, जिसके फलस्वरूप उनका समन्वय 'स' में होगा। यहाँ अ' स्थापना, 'ब' प्रतिस्थापना और स समन्वय कहा जायगा। इसके बाद फिर स' का विरोधी 'ड' का उद्भव होगा दोनों का द्वन्द्व होगा और समन्वय होगा किसी तीसरी वस्तु में। इस प्रकार समाज में द्वन्द्वात्मक पद्धति से विकास का क्रम चलता है।

कार्ल मार्क्स अपने प्रारम्भिक काल में हीगल की इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया से प्रभावित रहे हैं किन्तु हीगल का दर्शन परम भाव का दर्शन है जिसे वह ब्रह्म, विश्वात्मा या निरपेक्ष प्रत्यय आदि कई नामों से अभिहित करता है। मार्क्स को इस निरपेक्ष ब्रह्म की सत्ता पर कोई आस्था नहीं थी। वह पूर्णतः भौतिकतावादी था अतएव उसने हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को तो ग्रहण किया पर उसके चरम प्रत्यय का विरोध करके भौतिक पदार्थों में ही अपनी निष्ठा स्थापित की। अथवा यों कहें कि उसने मूल तत्त्व किसी परमोच्च सत्ता को न मानकर पदार्थ को ही सर्वोच्च माना। मार्क्स के अनुसार पदार्थ गतिहीन न होकर सहजत गतियुक्त है। उसे संचालित करने के लिए किसी बाह्य सत्ता या निरपेक्ष ब्रह्म की आवश्यकता नहीं है। इस मान्यता के द्वारा मार्क्स का दर्शन हीगल का प्रतिरूप हो गया है। इस वैपरीत्य को ही लक्ष्य करके यह कहा गया है कि हीगल अपने सिर के बल खड़ा था पर मार्क्स ने उसे जमीन पर खड़ा

कर दिया।[1] मार्क्स ने हीगल के दर्शन को जमीन पर जरूर खडा किया किन्तु हम यह देखना होगा कि मार्क्स की यह जमीन क्या है ? क्या वह इतनी दृढ है जहाँ निश्चिततापूर्वक खडा रहा जा सके ? इस तथ्य पर हम बाद में विचार करेंगे।

हीगल के परम भाव (एबसूल्यूट आइडिया) का खण्डन मार्क्स के पूर्व एक अन्य जर्मन दार्शनिक फायरबाख (१८०४–७२) ने किया था और भौतिकवाद की स्थापना की थी। उसका कथन था कि वस्तु के बिना उसका ज्ञान या बोध सभव नहीं अतएव सबसे पहले पदार्थ की उपस्थिति आवश्यक है तत्पश्चात उसके ज्ञान की। इसी सिद्धान्त के आधार पर उसने यह प्रतिपादित किया कि ससार के विकास में पहला स्थान पदार्थ का है। मनुष्य समाज भी उसी पदार्थ के द्वारा विकसित एक शृंखला है। फायरबाख के अनुसार मानवीय समाज पदार्थों के वातावरण का परिणाम है पर मार्क्स कहते हैं कि मनुष्य में उस परिवेश को बदलने की भी शक्ति है। फायरबाख प्रकृतिवादी का समर्थक है किन्तु मार्क्स का कहना है कि मनुष्य की चेतना का निरूपण केवल ऐतिहासिक और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है।

हीगल और फायरबाख दोनों इस प्रकार के दार्शनिक हैं जो अपने दर्शन में वर्ग सघर्ष का कोई उल्लेख नहीं करते। यह कार्य सबसे पहले एक अग्रेज चिन्तक चार्ल्स हाल ने किया है। उसके अनुसार मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के अभ्युदय के साथ ही सम्पत्ति शोषक और शोषित वर्गों की उद्भावना हुई। इन्ही के कारण वर्ग–सघर्ष की भावना भी उत्पन्न हुई। उसकी दृष्टि मे पूँजीपति, शासकादि अपनी स्वार्थ की भावनाओं की पूर्ति के लिए युद्धादि करते रहे हैं स्वार्थ और प्रभुत्व कामना के कारण ही अधिकार और अधिकारी के भेद उत्पन्न हुए हैं। उसका यह भी कहना है कि यदि आज गरीबो शोषितो के हाथ में शासन के सूत्र सौंप दिए जायें तो समाज और देशो के बीच होने वाले युद्ध बन्द हो जायें और वर्ग सघर्ष भी समाप्त हो जाय। जन कल्याण और मानवीयता की रक्षा के लिए वर्ग सघर्ष का नष्ट करना आज एक परमावश्यक कार्य भी है।

मार्क्स ने अपनी साम्यवादी विचारधारा की प्रेरणा रूप में उपर्युक्त हीगल, फायरबाख और हाल की ही क्रमश द्वन्द्वात्मक पद्धति, भौतिकवाद और वर्ग सघर्ष की विचारधाराओ को ग्रहण किया है। उन्होने सृष्टि के विकास में निहित ऋणात्मक और धनात्मक दो प्रकार के विरोधी तत्वों की सत्ता मानी है। इनके सघर्ष का नाम ही उसके अनुसार जीवन है। इन विरोधी पदार्थों के द्वन्द्व से चेतना उत्पन्न होती है। जो जीवन का आधेय है। हम कह चुके हैं कि मार्क्स पदार्थ को ही सर्वोच्च वस्तु मानता है। उससे इतर वस्तु या निरपेक्ष ब्रह्म की सत्ता का खण्डन करता है। उसके

अनुसार चेतना भी विरोधी पदार्थों के द्वन्द्व का प्रतिफलन है। इस कारण ही उसके दर्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है।

जिस प्रकार मार्क्स संसार का मूल तत्त्व पदार्थ (मैटर) मानते हैं उसी प्रकार समाज व्यवस्था का मूलाधार वे आर्थिक व्यवस्था कहते हैं। उनके अनुसार जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की उत्पादन शक्ति के विकास के अनुरूप समाज के व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होता है। उत्पादन के संगठन के आधार पर ही समाज का सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा तैयार होता है जिस पर मनुष्य की समस्त कार्य प्रणालियाँ राजनीति धर्मनीति और साहित्य आश्रित हैं। इस विचार-प्रणाली के अनुसार मार्क्सवादी इतिहास की अर्थमूलक व्याख्या करते हैं।

मार्क्स के अनुसार समाज में आजकल विषमता का कारण अर्थ का असमान रूप से वितरण और जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर कुछ पूँजीपतियों का स्वामित्व है। समाज का यही संगठन दुःख क्लेश और विषमता का जनक है। इसने समाज को दो भागों में विभक्त कर दिया है—शोषक और शोषित। इन दोनों में वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ है। यह वर्ग संघर्ष तभी शान्त होगा जबकि समाज में आर्थिक व्यवस्था सामाजिक ढंग की हो। यह तभी सम्भव है जबकि पूँजीवाद को समाप्त करके श्रमिकों किसानों के हाथों में उत्पादन शक्तियाँ कल कारखाने आयें और उन्हें उनके श्रम का यथोचित लाभ और मूल्य मिले। यह कार्य केवल क्रान्ति के माध्यम से ही सम्भव है। यह क्रान्ति भी तभी प्रारम्भ होगी जब वर्ग संघर्ष अपने चरम रूप को पहुँचे और यह कार्य तभी होगा जब समाज में वर्ग चेतना का जागृति का कार्य जोरों से किया जाय। इस प्रकार पूँजीवाद और शोषकों का विरोध शोषितों के प्रति सहानुभूति, उनकी गुण गाथा वर्ग संघर्ष की भावना क्रान्ति की बुलन्द आवाज आदि का नारा लगाना मार्क्सवाद के प्रमुख सूत्र बने और इन्हें इसी रूप में साहित्य में भी अवतरित किया जाने लगा।

हम कह चुके हैं कि यह एक भौतिकवादी जीवन दर्शन है। उसके अनुयायियों के लिए भौतिक जगत ही एक मात्र सत्य है। आध्यात्मिक विकास ईश्वर की सत्ता उपासना आदि पर इन्हें कोई आस्था नहीं। भौतिक जीवन का उपभोग ही इनका इष्ट है। किसी स्वप्निल सुख या काल्पनिक लोक में सुख और आदर्शों की प्राप्ति के लिए भटकना ये निरर्थक और पलायन की प्रक्रिया समझते हैं। अर्थ इनके लिए प्रस्थान और गन्तव्य दोनों हैं। वह समाज की सब विषमताओं का जनक है अतएव उसके समान वितरण पर नियन्त्रण रखना इनका राजनीतिक नारा है। इस प्रकार मार्क्स ने विशुद्ध भौतिक संसार की विषमताओं से परिपूर्ण जमीन पर खड़े होकर उसकी विसंगतियों में सामरस्य लाने के लिए मानव-मानव के बीच का अन्तर पाटकर वर्ग

हान समाज की स्थापना करने के लिए अपनी विचार धारा को प्रस्तुत किया। मार्क्स के पूर्व सकडो दार्शनिक हो गये हैं पर किसी ने इतनी शक्ति के साथ समाज की विषमता का मूल कारण अर्थ के असमान वितरण को नही बताया और न उसे अपसारण करने की ऐसी किसी विधि का ही उल्लेख किया। मार्क्स के समान किसी दार्शनिक ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त की पुष्टि समाज के ऐतिहासिक विकास के सन्दर्भ मे भी प्रस्तुत नही की।

ऐतिहासिक भौतिकवाद

मार्क्स के अनुसार मनुष्य अपनी आदिम अवस्था मे साम्यवादी ही था। उस समय वह कबीलो या झुण्डो म रहता था और भोजन-शिकारादि की तलाश मे एक साथ यहाँ वहाँ घूमा करता था। इस समय किसी की कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी। जो वस्तुएँ इनके पास थीं उन पर सबका समान अधिकार था। धीरे-धीरे कबीलो के जीवन मे स्थायित्व आया और व खेती का काम करने लगे। खेतो पर शन शनै व्यक्ति विशेष का अधिकार माना जाने लगा। यह अधिकार भावना कुछ समय के पश्चात व्यक्ति व्यक्ति और कबीलो कबीलो के बीच सघर्ष का कारण बनी जिसका अन्त परस्पर युद्धो म हुआ। युद्धो मे पराजित व्यक्ति 'दास के रूप म रखे गये और उनसे खेतों तथा अन्य गृह कार्यों को लिया जाने लगा। पहले ये दास भी सामाजिक सम्पत्ति माने जाते थे पर बाद म ये भी व्यक्तिगत हो गये। कबीलो मे सशक्त व्यक्ति मुखिया होता था। धीरे धीरे बलिष्ठ व्यक्ति अन्य कबीलो पर अपने अधिकार क्षेत्र को व्यापक करके उनका नेता बनने लगे जो बाद म राजा के रूप म हमारे सामने आये और इस प्रकार कई कबीलो को मिलाकर राज्य बने। राज्यो के बाद साम्राज्य बने। इसके विस्तार के लिए भी निरन्तर युद्ध होते रहे और इस प्रकार आदिम अवस्था का साम्यवादी समाज दो भागो मे—शासक और शासित म विभक्त हो गया। अनेक शताब्दियो तक यही व्यवस्था चलती रही। राजा के पास धन सग्रह होता गया। धीरे धीरे धनी व्यक्ति व्यापार और उद्योग की ओर अग्रसर हुए। इस कार्य से उनके पास और धन एकत्र हुआ और शासक वर्ग म व्यापारियो का यश और प्रभुत्व बढा। व्यापार के द्वारा और अधिक व्यक्तियो का शोषण किया जाने लगा और कम से कम मजदूरी देकर श्रमिको से अधिक से अधिक काम लिया जाने लगा। इस प्रकार जो निर्धन थे वे और अधिक निर्धन हुए और जो अमीर थे उनके पास और अधिक धन संग्रह हो गया। अर्थ के असमान वितरण ने अनेक समस्याओ को जन्म दिया। धीरे धीरे धनी धनी और राज्य राज्य के बीच सघर्ष प्रारम्भ हुए। धनी से और अधिक धनी होने की होड मे सैकडो युद्ध हुए। अन्यायो और भ्रष्टाचारो का प्रवर्तन हुआ। कहने सुनने के लिए तो लोगो ने 'दास प्रथा' समाप्त कर दी पर वह बन्द न होकर

प्रच्छन्न रूप से और अधिक बढ गई। मार्क्स की दृष्टि से समाज के अन्तस्तल मे निहित यह विषमता एक मात्र अर्थ के असमान वितरण से प्रारम्भ हुई और उसके सुधार के लिए अब एक मात्र वर्गवादी विचारधारा का प्रचार तथा क्रांति ही आवश्यक है। इस प्रकार पूँजीवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप मार्क्सवाद का जन्म हुआ।

पूँजीवाद के विष से विश्व का समस्त श्रमिक वर्ग अभिभूत था। अतएव थोड़े ही समय मे मार्क्स की उपयुक्त विचारधारा का प्रभाव विश्व भर मे फैल गया। १९१७ मे रूसी साम्यवादियो ने जारशाही के सिंहासन को उलटकर के साम्यवादी गणतंत्र की स्थापना की। पूर्वी योरोप के अधिकांश देशों मे भी धीरे धीरे साम्यवादी राज्य स्थापित हुए। कहा जा चुका है कि अनुकूल परिस्थितियो के अनुरूप भारत में भी १९२७ मे कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई जो रूस के सकेतो पर अपना कार्य करती थी।

समाजवाद और कम्युनिज्म

कम्युनिस्ट शब्द कम्युनिज्म से सम्बन्धित है। यह मार्क्स के पहले से प्रचलित था पर एक विशिष्ट राजनीतिक संस्था का स्वरूप देते हुए १८४७ मे मार्क्स तथा ऍजिल्स ने 'कम्युनिस्ट लीग' की स्थापना की थी। १८४८ मे इसका मेनिफेस्टो प्रकाशित हुआ था जिसमें ऍजिल्स का कथन था कि कम्युनिज्म सर्वहारा वर्ग (प्रोलेटेरिएट) की मुक्ति का मार्ग बतलाने वाला सिद्धान्त है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका मे कम्युनिज्म शब्द की जो व्याख्या की गई है वह इस प्रकार है "कम्युनिज्म समाजवाद (सोसलिज्म) के ही अन्तर्गत एक विशिष्ट आन्दोलन है जिसका लक्ष्य भी वही है उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व हटाकर एकाधिपत्य का उन्मूलन। कम्युनिज्म की अपनी विशेषता इस बात मे है कि इसके अनुसार इस उद्देश्य की पूर्ति का एक मात्र साधन क्रान्ति है। समाजवाद क्रान्ति को ऐतिहासिक और सामाजिक अवरोधों को दूर करने के लिए अन्तिम उपाय के रूप मे अस्वीकार नही करता पर कम्युनिज्म क्रान्ति को अनिवार्य समझता और खुले आतंक पर आधारित सर्वहारा वर्ग की तानाशाही को ही समाजवादी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का साधन मानता है।[1]" इस अवतरण मे समाजवाद तथा कम्युनिज्म का पार्थक्य भी स्पष्ट हो जाता है।

इसी सन्दर्भ में हम यह भी देख लें कि मार्क्स और ऍजिल्स ने अपने आपको समाजवादी न कहकर कम्युनिस्ट क्यों कहा है? इसका स्पष्टीकरण मेनीफेस्टो के संस्करण मे किया है जिसे देखने पर हम सहज ही यह जान लेंगे कि आरम्भ से ही कम्युनिस्ट लीग की क्या रीति-नीति रही है। ऍजिल्स ने लिखा है कि "सन १८४७ में समाजवादी साधारणत एक ओर तो काल्पनिक व्यवस्थाओं (यूरोपियन सिस्टमस)

१ हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद पृ० २६ से उद्धृत।

से चिपके रहने वाले व्यक्ति समझे जाते थे और दूसरी ओर सुधारक जो पूंजी मुनाफे को कोई खतरा पहुंचाये बिना तरह-तरह से सभी सामाजिक अन्यायों को दूर करने की बात कहते थे। ये दोनों तरह के लोग श्रमिक वर्ग के आंदोलन से दूर रहने वाले और सहायता के लिए शिक्षित वर्ग का मुंह जोहने वाले थे। इनके विपरीत श्रमिक वर्ग का जो भी अंश केवल राजनीतिक क्रांतियों की निस्सारता से भली भाँति अवगत हो गया था और जिसने आमूल सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता घोषित की वह अपने को कम्युनिस्ट कहने लगे। हमारा विचार आरम्भ से यह था कि श्रमिक वर्ग के उद्धार का कार्य निश्चित रूप से स्वयं श्रमिक वर्ग का ही होना चाहिए अतः इन दोनों में से हम कौन सा नाम ग्रहण करें, इस विषय में हमारे लिए कोई असमंजस नहीं रहा।'[1]

प्रगतिवाद और फ्रायडवाद

प्रगतिवाद पर जो बाह्य प्रभाव पड़े उनमें कम्युनिज्म के अतिरिक्त ईषत् मात्रा में फ्रायड के अंतश्चेतनावाद का भी नाम लिया जाता है। हिंदी में यशपाल अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी आदि ने यह तथ्य स्वीकार किया है। यशपाल तो हिन्दी के सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक हैं। 'मार्क्सवाद' शीर्षक अपनी कृति में आपने एक स्थल पर लिखा है कि 'स्त्री पुरुष और विवाह के सम्बन्ध में मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतंत्रता देता है परन्तु उच्छृंखलता और गड़बड़ या भोग को पेशा बना लेने को और उसके साथ अपनी वासना के लिए दूसरे व्यक्तियों और समाज की जीवन व्यवस्था में अड़चन डालने को यह भयंकर अपराध समझता है। आपने इस कथन का समर्थन लेनिन के शब्दों द्वारा किया है किन्तु जो लेनिन के वास्तविक शब्द हैं उन्हें विकृत करके ही उद्धृत किया गया है और एक तरह से अन्तश्चेतनावाद तथा मार्क्सवाद का आवश्यक सम्बन्ध निरूपित किया गया है। सत्य इसके विपरीत है। यशपाल जी ने आगे लिखा है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में मार्क्सवाद का रुख लेनिन की एक बात से स्पष्ट हो जाता है। लेनिन ने कहा था कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध शरीर की दूसरी आवश्यकताओं भूख, प्यास, नींद की तरह ही आवश्यक है। इसमें मनुष्य को स्वतंत्रता होनी चाहिए परन्तु प्यास लगने पर शहर की गंदी नाली में मुंह डालकर पानी पीना नहीं है। उचित है स्वच्छ गिलास से स्वच्छ से स्वच्छ जल पीना।'

स्वच्छ गिलास के इस सिद्धान्त द्वारा तृप्ति की बात का खण्डन डा० राम विलास शर्मा ने बड़ी ही ममता पूर्वक किया है। उन्होंने वे पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं जहां इस प्रकार की चर्चा की गई है। लेनिन का कथन है कि यौन जीवन में साधारण कुदरत का ही ख्याल नहीं करना होता बल्कि सांस्कृतिक विशेषताओं पर भी विचार किया जाता है कि वे ऊंच या नीच स्तर की हैं। निस्सन्देह प्यास बुझानी

१. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद, पृ० २६–२७ से उद्धृत।

चाहिए लेकिन उसका सामाजिक पहलू सबसे महत्वपूर्ण है। पानी पीना बेशक किसी का निजी काम है लेकिन प्रेम में दो जिन्दगियों का सम्बन्ध होता है और एक तीसरी नयी जिन्दगी पैदा होती है। इससे उसमें सामाजिकता का सवाल उठता है जिससे समाज के प्रति कर्तव्य पैदा होता है।'

डा० शर्मा यह भी लिखते हैं कि 'एक कम्युनिस्ट की हैसियत से मुझे पानी के गिलास की थ्योरी से जरा भी हमदर्दी नहीं है, हालांकि उस पर 'प्रेम की तृप्ति' का सुन्दर लेबिल लगा हुआ है। कुछ भी हो प्रेम की यह मुक्ति न तो नयी है न कम्युनिस्टिक है। (प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें।)

लेनिन आप कम्युनिज्म के संस्थापकों में से एक वरिष्ठ विद्वान और निष्ठावान हैं अतएव इस सम्बन्ध में हम आपके उपयुक्त कथन के आधार पर ही मार्क्सवाद के साथ यौन भावनाओं का सम्बन्ध सामाजिकता के निकष पर देखना होगा। प्रेम की तृप्ति' ही स्त्री पुरुष के समागम द्वारा अलग नहीं प्रस्तुत यह एक समाज से सम्बंधित वस्तु है वह भावात्मक नहीं बौद्धिक जगत की वस्तु है। स्वच्छन्द रूप से 'पानी पीने' का सिद्धान्त समाज विरोधी और गैर मार्क्सवादी है।

इसी तथ्य का उदघाटन डा० रामविलास शर्मा ने अपनी 'प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें' शीर्षक पुस्तक में विस्तार के साथ किया है। डा० शर्मा प्रगतिवाद के अधिकारी विवेचक और समीक्षक हैं अतएव उनका कथन भी इस संदर्भ में देख लेना अप्रासांगिक न होगा। उनके अनुसार प्रगतिशील साहित्य नारी की स्वाधीनता का पक्षपाती है। वह सम्पत्ति जाति और धर्म के विचार से किए हुए विवाहों की वेदी पर देश के युवक युवतियों के प्रेम की बलि देने का कड़ा विरोधी है। वह उनके प्रेम करने के अधिकार और जीवन में एक साथ रहने और संघर्ष करने के अधिकार का समर्थन करता है। जब तक प्रेम के अतिरिक्त विवाह के लिए जाति धर्म सम्प्रदाय, सम्पत्ति आदि की शर्तें रहेंगी, तब तक समाज में व्यभिचार, वेश्यावृत्ति आदि व्याधियाँ भी रहेंगी। लेकिन ये व्याधियाँ शुद्ध ग्लास से शुद्ध जल पीने की थ्योरी से दूर नहीं हो सकती। यह मार्क्सवाद के विपरीत सामंती पूंजीवादी नैतिकता का प्रतिपादन होगा।

इस प्रकार शर्मा जी ने प्रेम विवाह, शुद्ध ग्लास से शुद्ध जल पीने आदि की वस्तु को भी आर्थिक भूमिका पर रखकर देखा है। ये फ्रायडवाद के अनुसार मनुष्य की अतृप्त तृप्ति से सम्बन्धित वैयक्तिक वस्तुयें नहीं हैं। जब तक पूंजीवाद सामंतवाद रहेगा, तब तक समाज से व्यभिचार, वेश्यावृत्ति आदि की व्याधियाँ समाप्त नहीं होंगी और इस प्रकार नारी और पुरुष के सम्बन्ध में व्याप्त अधिकार और अधिकारी की यह विषमता समाप्त नहीं हो सकती। पुरुष के समान नारी को भी प्रकृति के सारे वरदान मिले हैं। वह भी मानवी है। समाज में जीवन के सारे कार्यों में समान रूप

में भाग लेने का उसे पूर्ण अधिकार मिलना चाहिये पुरुष उसे बन्धन में रख, धर्म, सम्प्रदाय, जाति या अर्थ का आधार बनाकर उसके साथ दुर्व्यवहार न करे। इसीलिये प्रगतिवादी श्रमिक के साथ-साथ नारी वर्ग की स्वतन्त्रता का भी उद्घोष तीव्रता के साथ करते हैं। नारी स्वातन्त्र्य सम्बन्धी विचारधारा का प्रतिपादन पंत जी ने अपनी प्रगतिशील रचनाओं में प्रमुखता के साथ किया है।

इस प्रकार मार्क्सवाद जनवादी विचारधारा का प्रवर्तक है, फ्रायडवाद व्यक्तिक काम भावनाओं की संतृप्ति तक सीमित एक व्यक्तिवादी विचारधारा है। विषय की स्पष्टता के लिये इस अन्तर को हमें किंचित विस्तार से देखना होगा। मार्क्सवाद के समान फ्रायडवाद भी भौतिकवादी विचारधारा है। जिस प्रकार मार्क्सवाद के अनुसार पदार्थ (मैटर) एकमात्र सत्य है, उसी प्रकार फ्रायडवाद के अनुसार काम भावना (लिबिडो) मानव जगत की केन्द्रीय वस्तु है। पदार्थ ही जिस प्रकार संघर्ष द्वारा चेतन बनकर गतिशील होता है तद्वत काम भावना या यौन भावनायें ही मानवीय जीवन का संचालन करती हैं। ये यौन भावनायें वे वस्तुयें हैं, जिन्हें व्यक्ति अपने सांसारिक जीवन में धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि के भय के कारण तृप्त नहीं कर पाता और वे ग्रन्थियों के रूप में उसके अवचेतन में समाविष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार यौनवाद अन्तश्चेतनावाद पर आधारित है जिसमें कुण्ठाओं, अतृप्तियों का अतिरेक है किन्तु मार्क्सवाद व्यक्ति से नहीं समाज के अभ्युदय जन कल्याण की भावना से सम्बन्धित वस्तु है। इसे यदि हम चेतनावाद कहें तो फ्रायडवाद को अवचेतनावाद कह सकते हैं। मार्क्सवाद का रचनात्मक विधान मानव समूह तथा उसमें व्याप्त विषमताओं का अपसारण करना है। यौनवाद व्यक्ति के मानस में व्याप्त कुण्ठाओं की तृप्ति से सम्बन्धित है। अनन्त वासनाओं की तृप्ति जिसका प्रमुख ध्येय है। इसमें व्यक्ति के जीवन में व्याप्त अन्तर्द्वन्द्वों को मिटाने का भी प्रयास नहीं प्रत्युत उसकी कला, कृतित्व आदि के मूल में व्याप्त कुण्ठाओं का दर्शन समझने और उनके स्पष्टीकरण करने का कार्य निहित है। प्रगतिवाद जहाँ प्राचीन कला और संस्कृति के अभ्युदय सूचक वस्तुओं को पूँजीवाद तथा सामन्तवाद का प्रतिमान कह कर उन्हें नष्ट भ्रष्ट करने की बात करता है वहाँ यौनवाद के अनुसार समस्त कलायें और सांस्कृतिक अभ्युदय के उपादानों में कलाकारों और समाज की अतृप्त काम वासनाओं का प्रच्छन्न प्रकाशन हुआ है। फ्रायडवाद के अनुसार व्यक्ति स्वप्न के द्वारा भी अपनी अतृप्त कुण्ठाओं को तृप्त करता है। काव्य कला और अन्य ललित कलायें भी उसकी अतृप्त कुण्ठाओं की मुखरित वाणी है। फ्रायडवाद के अनुसार व्यक्ति अपनी अवचेतन मन में दमित काम भावनाओं की प्रक्रिया स्वरूप ही, उन्हें विरेचन करने के हेतु कलाओं का सहारा लेता है। यह प्रतिक्रिया मार्क्सवाद में भी है वहाँ पर पूँजीवाद और सामन्तवाद की प्रतिक्रियास्वरूप अग्रसर होते हैं और उन्हें

के लिए वगवादी चतना का प्रसार करत हैं । इस प्रकार प्रतिक्रियायें दोनो म हैं किन्तु फ्रायडवाद म जहाँ केवल विश्लेषण है वहाँ प्रगतिवाद म विश्लषण से आगे चलकर नये समाज की रूपरेखा को साकारता प्रदान करने के भी प्रयास हैं । फ्रायड वाद एक अभावात्मक विचारधारा है किन्तु माक्सवाद विधायक । प्रथम के समक्ष जन कल्याण की कोई भी भावना नही है पर दूसरा जन कल्याण को अपना लक्ष्य बनाकर चलता है । फ्रायडवाद दमित काम वासनाओ की चर्चा स आरम्भ होता है और उनका विश्लेषण करके समाप्त हाता है, हर काय के पीछे उसे एक मात्र दमित कुण्ठायें ही दिखाई देती हैं और एक प्रकार स वह दमित कुण्ठावाद वन जाता है । हिंदी म अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी जनन्द्र आदि इसे अपनाकर चले हैं और प्रयोगवाद तथा नयी कविता की यह एक मूल चेतना रही है किन्तु यह वस्तु माक्सवाद के सिद्धान्त क विरुद्ध है अतएव प्रगतिवादी साहित्य म यह सिद्धान्तत न आकरके केवल यथा थवादी शैली के रूप मे दिखाई देता है । कुछ कवियो तथा लेखको ने स्त्रियो क मासल सौन्दय को नग्न रूप म चित्रित किया है पर यह काय प्रगतिवादी निष्ठा को शापित न करक कवि या कलाकार की अतृप्त कुण्ठा को ही व्यक्त करता है । प्रगतिवादी काव्य म इस तरह अश्लीलता वस्तुगत रूप म न आकर यथार्थवादी शैली के रूप म प्रवेश पा सका है ।

मार्क्सवाद और त्रात्स्कीवाद

मार्क्सवादी साहित्य पर त्रात्स्कीवाद का भी प्रभाव माना गया है । त्रात्स्की रूस के एक सुप्रसिद्ध साहित्यिक नता हैं । अञय और यशपाल न उनकी अनेक स्थानो पर प्रशसा की है । ये दानो त्रात्स्की से बहुत दूर तक प्रभावित भी हैं किन्तु त्रात्स्कीवाद एक वामपक्षीवाद है । उसकी वस्तु योजना पूणत प्रतिक्रियावादी होत हुए भी उसम मार्क्सवाद के मौलिक उपादानो का विरोध और अभाव है । मार्क्सवादी क्रांति को अपना अन्तिम शस्त्र समझत हैं किन्तु त्रात्स्की को क्रान्ति पर विश्वास नही था अतएव उसका साहित्य पाठको के हृदय म क्राति की कोई भावना प्रज्ज्वलित नही करता । वह वग–चेतना की उत्पत्ति मे सहयोग भी नही देता । डा० रामविलास शर्मा जी ने त्रात्स्कीवाद का वामपक्षी भाषा मे शेखचिल्ली के स्वप्न कहा है । इस विषय को स्पष्ट करत हुये और प्रगतिवादी निष्ठा की दढता का उद्घोषित करत हुय उन्होंने आग लिखा है कि ' जो लेखक पूजावादी व्यवस्था से लोहा लेने लगे हैं और शोषण व्यापार खत्म करके समाजवाद लाना चाहत हैं अगर वे साहित्य की तरफ अराजनतिकता और सिद्धान्त हीन दष्टिकोण अपनाते हैं, यानी अपना कला पर राज नीतिक सिद्धान्तो का अकुश नही मानते ता वे शुद्ध प्रतिक्रियावादी की हिमायत नहीं करते तो और क्या करते हैं ? '

रूसी मार्क्सवादी साहित्य

हिन्दी प्रगतिवाद पर मार्क्स की विचारधारा के अतिरिक्त रूसी मार्क्सवादी साहित्य का भी प्रभाव पड़ा है अतएव संक्षेप में उसकी चर्चा करना यहाँ आवश्यक है। इस चर्चा से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि विदेशी मार्क्सवादी साहित्य की क्या विशेषतायें रही हैं और हिन्दी प्रगतिवाद उससे क्या समता विषमता रखता है ?

रूसी क्रान्ति के पूर्व रूस में दो प्रकार के कवि थे—भविष्यदवादी और बिम्बवादी। (फ्यूचरिस्ट और इमेजिस्ट)। इनमें से बिम्बवादी तो अपने व्यक्तिवैचित्र्यवाद के कारण अल्पजीवी रहे। क्रान्ति के पश्चात भविष्यदवादी कवियों का भी कोई आवश्यकता नहीं रह गई, क्योंकि अब काव्य साहित्य में सुनियोजित रूप से मार्क्सवादी विचारधारा को प्रस्तुत किया जाने लगा था। सत्तारूढ़ पार्टी के द्वारा लेखकों तथा कवियों से यह आग्रह किया गया कि वे पार्टी के सिद्धान्तों का प्रचार कर राज्य की योजनाओं को सफल बनायें। अर्थात साहित्य को प्रचारात्मक रूप में प्रश्रय दिया गया। एक रूसी कवि बेजीमेन्सी ने कहा है कि पहले मैं मार्क्सवादी हूँ और फिर और कुछ।

> I carry my membership card not in my pocket but in myself
>
> —Bezymensky

मायाकोवस्की रूस देश के एक सुप्रसिद्ध कवि हैं। उनकी एक कविता का हरबर्ट मार्शल ने अंग्रेजी में अनुवाद किया है जिसका कुछ अंश हम यहाँ दे रहे हैं—

I
Hurl myself into communism
    From the heights of Poetry above
because without it
    for me
There is no love
    I am a Soviet Factory
    manufacturing happiness

अर्थात मैं काव्य की उदात्त भूमिका से कम्युनिज्म के बीच कूद पड़ा हूँ क्योंकि उसके अतिरिक्त मुझे अन्यत्र प्रेम-भावना नहीं प्राप्त होती। मैं सोवियत के लिए सुख उत्पादन करने वाला कारखाना हूँ। मायाकोवस्की के समान इस युग के सभी कवि काव्य की उच्च धरातल छोड़कर कम्युनिज्म की राजनीतिक विचारधारा को अपनाकर उसका प्रचार-प्रसार अपनी रचनाओं के माध्यम से करने लगे थे।

इसका फल यह हुआ कि सोवियत देश का साहित्य अन्य वस्तुओं के समान योजनाबद्ध हो गया और उसका विकास स्वतन्त्र ढग से न होकर कृत्रिमता के साथ प्रचारात्मक और उपयोगी कला के रूप म हुआ। इस विषय में ग्लेब स्ट्रूव का निम्न कथन प्रमाणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

Literature in Soviet Russia like everything else is planned It is artificially reared and looked after it cannot develop free and untrammelled —Soviet Russian Literaturey By Gleb Struve

यहा यदि काडवल की चर्चा न की गई तो यह वक्तव्य अधूरा रह जायगा। काडवेल ऐसे प्रथम साहित्यिक समीक्षक है जिन्होंने मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति को जन्म देकर साहित्य का नया मापदण्ड निर्धारित किया। आप अग्रेज थे। वास्तविक नाम Sprigg था। आप स्पेन के गृहयुद्ध में १९३७ म मारे गये। अपने इल्यूजन एण्ड रियलटी नामक ग्रन्थ म आपने एतिहासिक भौतिकवाद का आधार ग्रहण करके काव्य के उदभव और विकास की समीक्षा की है तथा उसका आधार बौद्धिक राष्टीय, जातीय आदि न मानकर आर्थिक माना है—

Poetry is regarded then not as something racial national genetic or pecific in its essense but as something economic

—Illusion and Reality P 7

काडवेल यह भी कहते है कि यह समय की माग है कि कलाकार को कला के क्षेत्र मे शोषितो का नेता होना चाहिए—

It is a demand that you an artist become a proletarian leader in the field of art —Illusion and Reality

(इ) हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य

इस प्रकार हिन्दी म जब प्रगतिवाद का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उस समय तक पाश्चात्य जगत म न केवल काव्य म वरन् समीक्षात्मक मापदण्ड के रूप म भी मार्क्सवाद का समावेश हो चुका था। हिन्दी के तरुण प्रगतिवादी लेखको ने उन्हे पढा और उनसे प्रेरणायें ग्रहण करके अपनी काव्य रचनायें प्रस्तुत की। हम कह चुके है कि इस समय देश की परिस्थितियाँ प्रगतिवादी विचारधारा के विकास के अनुकूल थी, अतएव हिन्दी म प्रगतिवाद के नाम से एक विशाल आन्दोलन हो चल पडा। इस समय न केवल काव्य वरन साहित्य की सभी विधाओ म मार्क्सवादी विचारधारा का समावेश हुआ।

इस युग के प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, 'दिनकर', त्रिलोचनशास्त्री, राम विलास शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', भारत भूषण अग्रवाल शमशेर बहादुर सिंह, केदार नाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रगतिवादी कथाकारों में राहुल सांकृत्यायन, निराला, रांगेय राघव, यशपाल कृष्ण चन्दर अमृत लाल नागर, नागार्जुन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। समीक्षक और निबन्धकारों में डा० रामविलास शर्मा, यशपाल शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र चन्द्रगुप्त सिंह डा० नामवर सिंह आदि के नाम अग्रगण्य हैं।

कवियों की सूची में मैंने श्री पंत और निराला का नाम नहीं जोड़ा है। हम कह चुके हैं कि पंत जी प्रगतिवादी कवियों के पुरोधा रहे हैं। इसी प्रकार निराला जी ने भी इस क्रान्ति यज्ञ में अपना महत्वपूर्ण अर्घ्य दान दिया है। किन्तु समसामयिक प्रगतिवादी धारा के ये छायावादी कवि प्रतिपथिक रहे हैं, उसके अनुकूल इन्होंने अपने को ढाला पर अपनी निष्ठाओं और मूल दार्शनिक चेतना का नहीं बदल सके अतएव प्रगतिवादी मान कर भी ये उससे कुछ विशिष्ट हैं। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का द्योतन कराने के लिए प्रगतिवादी शब्द छोटा पड़ता है। ये कवि मार्क्सवाद की आर्थिक भूमिका पर न खड़े होकर—भारतीय आध्यात्मिक चतुफलों की भूमिकाओं पर खड़े हैं अर्थ उनके लिए सर्वस्व नहीं जीवन का एक हिस्सा है अथ वे आगे चलकर के ये मानवीय धर्म, काम और मोक्ष तक की लम्बी यात्राएँ भी करते हैं जबकि प्रगतिवादी अर्थ की सीमा से बाहर निकलना गुनाह मानते हैं क्योंकि ऐसा मार्क्स का कहना है। उनका कहना आप्त वाक्य है। पार्टी के सिद्धान्त–वाक्यों को यथावत न मानना या कला पर राजनीतिक सिद्धान्तों का अंकुश स्वीकार न करना शुद्ध प्रतिक्रियावाद है मार्क्सवाद के प्रति विद्रोह है जो मार्क्सवादियों को सह्य नहीं।

पंत जी अपनी रचनाओं में मार्क्सवाद या ऐतिहासिक भौतिकवाद को प्रश्रय देते हैं और मार्क्स का भी गुणगान करते हैं—

धन्य मार्क्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर ॥

किन्तु बाद में वे स्वयं भौतिकवाद या मार्क्सवाद के साथ भारतीय आध्यात्मिकता के समावेश करने का प्रयत्न करते हैं। इस सम्बन्ध में आपका ही कथन है कि 'ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय दर्शन में मुझे किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा क्योंकि मैंने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी पक्ष ही ग्रहण किया है। मार्क्सवाद के अन्दर श्रम–जीवियों के संगठन वर्ग-संघर्ष रखने वाले बाह्य दृश्य को जिसका वास्तविक निर्णय आर्थिक और राजनीतिक क्रान्तियाँ ही कर सकती हैं, मैंने

अपनी कल्पना का अंग नहीं बनने दिया है।' इस दृष्टि से हम पंत जी को अर्द्धमार्क्सवादी ही कह सकते हैं। उन्होंने मार्क्सवाद का केवल विधायक पक्ष ही ग्रहण किया है उसके विध्वंसक पक्ष के वे समर्थक और ग्रहीता नहीं रहे हैं। पंत जी भी यत्र तत्र क्रान्ति की चर्चा करते हैं और प्रतीक-रूप में पावक कणों की वृष्टि की आकांक्षा करते हैं फिर भी उनकी क्रांति का अर्थ पूँजीवाद और सामंतवाद को ही केवल नष्ट भ्रष्ट करना नहीं है। उनकी क्रांति समाजवादी समाज या गांधी दर्शन के रामराज्य की स्थापना से सम्बन्धित है।

निराला का बादल राग भी क्रांति का विप्लवकारी राग है किन्तु उन्हें भी प्रगतिवादी नहीं कहा जा सकता। व्यंग्य और हास्य से सम्बन्धित उनकी अनेक रचनायें हैं जो 'कुकुरमुत्ता' 'बेला' 'और नये पत्ते' में संकलित हैं। इन रचनाओं में उन्होंने पंत जी की 'ग्राम्या' की ही भांति श्रमिक-मजदूर वर्ग के प्रति सहानुभूति, पूँजीपतियों की नृशंसता ग्राम्य जीवन का चित्रण आदि से सम्बन्धित वस्तुओं को अपना प्रतिपाद्य बनाया है किन्तु इनकी ये रचनायें युगवाणी की तरह प्रगतिवादी नहीं हैं। इनमें प्रगति-चेतना काव्य का अंग बनकर शैली रूप में अवतरित हुई है। विषय-वस्तु राजनीतिक प्रचारात्मक और सिद्धान्तनिष्ठ न होकर काव्यात्मक संवेदना से युक्त मानवीय एवं सांस्कृतिक है। काव्य की उदात्त भूमिका से ये दोनों ही महाकवि अपनी आँखें मूँदकर मार्गारेट हर्डी की भांति कम्यूनिज्म के क्षेत्र में कूदे नहीं हैं वरन इन्होंने युग की वाणी का साथ देते हुए भी अपनी परम्परा और कवि-व्यक्तित्व की पूरी पूरी रक्षा की है। ये प्रगतिवादी होकर भी उसकी सीमा से ऊपर हैं। 'कुकुरमुत्ता' में तो निराला जी प्रयोगवादी और प्रगतिशील लेखकों पर करारा व्यंग्य भी करते हैं। वे लिखते हैं—

कहीं का रोड़ा कहीं का (लिया) पत्थर
टी॰ एस॰ एलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वाले ने जिगर पर हाथ रखकर
कहा कैसा लिख दिया संसार सारा
देखने के लिए आँखें दबाकर
जैसे सन्ध्या को किसी ने देखा तारा
जैसे प्रोग्रेसीव की लेखनी लेते
नहीं रोके रुकता जोश का पारा।

प्रगतिवादी काव्य की विशेषतायें

[१] मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण

प्रमुखतः प्रगतिवादी काव्य, मार्क्सवाद की राजनीतिक विचारधारा का साहि

त्यिक संस्करण है किन्तु कवि राजनीति की एक विचारधारा से सदा अनुबंधित नहीं रहते, ऐसा होना उनके व्यक्तित्व और स्वतन्त्र चिन्तन की पराजय होगी अतएव हिन्दी में प्रगतिवाद के नाम से कई प्रकार की रचनायें हमारे सामने आती हैं। सुविधा की दृष्टि से इन्हें हम चार प्रमुख भागों में विभक्त करके देख सकते हैं—

प्रथम वे रचनायें हैं जो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से सम्बंधित होते हुए सामाजिक विषमताओं को चित्रित करती हैं। इस श्रेणी में दिनकर का नाम हम ले सकते हैं। आपकी रचनाओं में राष्ट्र प्रेम के उद्गार, स्वतन्त्रता की पुकार, अतीत गौरव और वर्तमान युग की दुरवस्था का चित्रण, देश की स्वतन्त्रता तथा विषमता को मिटा देने का आह्वान और उद्बोधन, राष्ट्र नायकों की प्रशस्तियां तथा गरीबों श्रमिकों, मजदूरों की विपन्नावस्था और सेठों—साहूकारों की निर्ममता का आख्यान किया गया है।

द्वितीय प्रकार की वे रचनायें हैं जो मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का तो समर्थन करती हैं किन्तु उनमें कम्युनिस्ट पार्टी के बंधनों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया है। पंत जी इसी श्रेणी के प्रगतिवादी कवि हैं।

तृतीय प्रकार की वे रचनाएँ हैं जो न तो मार्क्स के सिद्धान्तों का अनुवर्तन करती हैं और न पार्टी के अनुबन्धों का निर्वाह किन्तु यथार्थवादी शैली अपनाकर श्रमिक या सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। द्वितीय प्रकार की रचनाओं में जहां मार्क्सवादी विचारधारा का बंधन ईषत् मात्रा में है और वस्तु सम्बन्धी उपकरण प्रचुर मात्रा में हैं वहां इन रचनाओं में बौद्धिकता का अंश तिरोहित हो गया है। वस्तु सम्बन्धी ये उपकरण प्रथम प्रकार की रचनाओं में भी मिलते हैं किन्तु वहाँ राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य भावना अतिरिक्त रूप में विद्यमान है जिसका इन तृतीय और द्वितीय प्रकार की रचनाओं में लगभग अभाव है। इस श्रेणी में निराला जी के प्रगतिशील प्रगीतों को रखा जायगा।

चतुर्थ प्रकार की वे प्रगतिवादी रचनायें हैं जहाँ मार्क्सवाद के सिद्धान्त वाक्य और पार्टी के बंधन—दोनों को स्वीकार किया गया है। कम्युनिस्ट पार्टी की रीति-नीति का प्रचार करने के कारण ऐसी रचनायें साम्प्रदायिक हो गयी हैं। जब प्रगतिवाद पर एकाङ्गीपन का दोष लगाया जाता है तब इन रचनाओं को ही ध्यान में रखा जाता है। प्रगतिवादी काव्य की ये चार उपधाराएँ ऐसी नहीं हैं जो कहीं परस्पर मिलती न हों। किन्हीं किन्हीं रचनाओं में एक धारा का कवि दूसरी धारा का भी स्पर्श कर लेता है अतएव यह विभाजन आत्यंतिक नहीं है। इतना अवश्य है कि उपर्युक्त उपधाराएँ अधिकतर अपनी ही सीमा में प्रवाहित होती हुई प्रगतिवाद को व्यापकता प्रदान करती हैं। 'प्रगतिवाद' नाम प्रमुखता के कारण ही पड़ा है अन्यथा इस युग की

काव्यधारा म कई क्रमागत और नवोदभूत धाराओ का जल सम्मिलित है। एक ओर मथिलीशरण गुप्त सियारामशरण गुप्त गोपालशरण सिंह नपाली आदि के द्वारा सचालित द्विवेदी युगीन काव्यधारा इससे मिलती है दूसरी ओर प० माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन जी की राष्ट्रीय काव्यधारा दिनकर जी के रूप म नयी शक्ति प्राप्त करती है। तीसरी ओर छायावादी काव्य धारा अपना स्वरूप बदलकर पत और निराला के रूप म अपनी मानवीयता और विश्वात्मक दृष्टि का ज्ञापन करती है। चौथी ओर इस युग की धरती स भी प्रगतिवादी विचारधारा के उत्स फूटकर इस समय के काव्य को सवेदना प्रदान करते हैं और साथ ही मार्क्सवादी विचारधारा को पल्लवन का अवसर प्रदान करते हैं।

[२] वगहीन समाज की स्थापना

प्रगतिवादी काव्य की एक अन्य विशेषता समाज का नया स्वरूप प्रस्तुत करना है। मार्क्सवादी वगहीन समाज की स्थापना म विश्वास रखत हैं। पत जी न भी अपनी एक रचना म अपन विचार इस सन्दभ म इस प्रकार प्रस्तुत किय हैं—

रूढि रीतिया जहा न हो आधारित
श्रेणि वग म मानव नही विभाजित
धन बलस हो जहां न जन श्रम शोषण
पूरित भव जीवन के निखिल प्रयोजन।
·· सस्कृत वाणी भाव, कम सस्कृत मन
सुन्दर हो जन-वास वसन सुन्दर तन।
—ऐसा स्वगधरा में हो समुपस्थित
नव मानव सस्कृति किरणो से ज्योतित ॥ —नव सस्कृति

[३] पूँजीपतियो का विरोध

मार्क्सवादियो की तरह पत जी भी पूँजीपतियों को भला-बुरा कहते हैं और उनके अंतिम समय की सूचना देते हैं। प्रगतिवादियो ने जिन बुरे शब्दो से पूँजी पतियों को आड़े हाथो लिया है उनकी एक झलक पत जी की निम्न रचना मे देखिए—

वे नशस हैं वे जन के श्रम बल से पोषित
दुहरे धनी जोंक जग के भू जिसस शोषित
नही जिन्ह करनी श्रम से जीविका उपार्जित
नतिकता से भी रहते हैं अत अपरिचित।···
दर्पी हठी निरकुश निमय कलुषित, कुत्सित
गत सस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत।

जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन
अब न प्रयोजन उनका अंतिम हैं उनके क्षण ।

[४] सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति

प्रगतिवादी काव्य की एक विशेषता श्रमिक वर्ग की दुरवस्था का चित्रण करना तथा उनके साथ सहानुभूति प्रकट करना है। भव अन्याय घृणा से पालित श्रमिक को पत जी लोक क्रान्ति का अग्रदूत, वर वीर, जनादृत, प्रशान्तित, जीवन के शिल्पी आदि विशेषताओं से विभूषित करते हैं। कृषकों की विपन्नावस्था का चित्रण भगवती चरण वर्मा की "भसागाड़ी" शीर्षक रचना में निदग्धता के साथ देखा जा सकता है। कवि लक्ष्मी के परम भक्त व्यापारी, जमींदारों के प्रति घृणा का भी प्रकाशन करता है जो निपट निरामिष सूदखोर' और मनुष्य का उष्ण रक्त पीने वाले हैं। उनके अनुसार पशु के समान काम में पिसने वाले भूखे नग्न किसानों तथा मजदूरों के कंकालों पर ही राजकाज सधा हुआ है।

श्रमिक किसानों या शोषित वर्ग के प्रति कवियों ने अपनी सहानुभति के प्रकाशन का काम मार्मिक कथा प्रसंगों की नियोजना द्वारा भी किया है। 'सियारामशरण गुप्त जी के आह्वान–प्रगतिशील प्रगीत इसी श्रेणी के हैं। नागार्जुन की 'प्रेत का बयान' शीर्षक रचना भी इसी श्रेणी की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें भूख से मरकर एक मास्टर प्रेत बनता है और नरक के मालिक यमराज के समक्ष मास्टर नचाकर लम्बे चमचों सा पचगुरा हाथ रूखी पतली किट किट आवाज में अपना पूरा पता करैमों की पत्तियों को खाने की आधी बात व्याधि आदि कहता है—

और और और और भले
नाना प्रकार की व्याधियां हों
भारत में किंतु किंतु
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का
पता नहीं हमको।
जहां तक मेरा अपना
सम्बन्ध है
सुनिए महराज—
तनिक भी पीर नहीं,
दुख नहीं दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सकी आंत जब
पेचिश का हमला

इस व्यंग्य रचना में भारत में शिक्षा की दुरवस्था का चित्रण किया गया है।

[५] व्यंग्य प्रधानता

व्यंग्य प्रधानता प्रगतिवादी काव्य की एक सामान्य विशेषता रही है। इस युग के व्यंग्य कवियों में नागार्जुन का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उन्होंने नेहरू जी की अंग्रेजी-प्रियता, पंचवर्षीय योजनाओं आदि पर अत्यन्त तीव्र व्यंग्य किए हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

> वतन बेचकर पंडित नेहरू फूले नहीं समाते हैं।
> बेशर्मी की हद है फिर भी बातें बड़ी बनाते हैं।
> अंग्रेजी अमरीकी जोंकों की जमात में हैं शामिल।
> फिर भी बापू की समाधि पर झुक-झुक फूल चढ़ाते हैं।

यहाँ पर भारत की वैदेशिक नीति पर आघात किया गया है। भारत की तटस्थता की नीति केवल दिखावा है। अंग्रेजों और अमरीकियों से ऋण लेने के कारण भारत उनसे दबा है। नागार्जुन जी ने उपर्युक्त अंश में इसी तथ्य का उद्घाटन किया है।

अन्यत्र आप देश की योजनाओं पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं—

> ताजमहल की कबिरी कूटी पाँच साल में हांग कांग।
> पाँच साल में पूरे होंगे नहीं रहे पल जो भूल न भूल।
> पाँच साल कम खाओ भैया गम खाओ दस पन्द्रह साल।
> अपने ही गाथा से ओढ़ो अपने ही आँखों में धूल।

यहाँ कवि ने देश की योजनाओं की निरर्थकता और सामाजिक समस्याओं के हल में उनकी अक्षमता का रहस्योद्घाटन सशक्त शब्दों में किया है।

[६] सामाजिक क्रांति का उद्घोष

प्रगतिवादी काव्य में पूँजीवादी समाज के प्रति तीव्रतम आक्रोश भी व्यक्त किया गया है। दिनकर जी एक जगह लिखते हैं—

> श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं।
> माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
> युवती की लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
> मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।

यह क्षोभ भरा आक्रोश दलित शोषित वर्ग के प्रति भी यत्र-तत्र व्यक्त हुआ है। अंचल जी एक स्थान पर लिखते हैं—

> वह बस्ती जिसे कहते मानव कीड़ा से आज गई जीती
> बुझ जाती तो आश्चर्य न था हैरत है पर कैसे जीती ?

अवल जो शोषण की नीव पर पनपने वाले समाज का चिथडे चिथड करने के लिए भी उद्बोधन करते हैं। व लिखते हैं—

✓ हो समाज चिथडे-चिथडे शोषण पर जिसकी नीव पडी।

कुछ अन्य कवि तो पूजीपतियो को 'उल्लू हरामी के पिल्ले ये पूँजीपति' जसे शब्दों से अपना उग्रतम आक्रोश व्यक्त करते हैं।

निराला जी ने 'बादल राग' और पंत जी ने गा कोकिल बरसा पावक कण शीर्षक रचनाओ म सामाजिक क्रान्ति का उद्घोष किया है।

[७] लाल निशान का जयगान

प्रगतिवादी कवि रूस तथा वहाँ की साम्यवादी शासन पद्धति की जय गाथा भी गाते हैं और उसके विरोधियो को मजदूरो, किसानो आदि का दुश्मन कहते है। य कम्युनिस्टो के लाल निशान को दुनिया के हर क्षेत्र म देखने के इच्छुक हैं—

खोलो लाल निशान !
हो सब लाल जहान !
लाल रूस है ढाल साथियो सब मजदूर किसानो की
वहा राज है पचायत का वहा नहीं है जमीदारी
लाल रूस का दुश्मन, साथी दुश्मन सब इसानो का
दुश्मन है सब मजदूरो का दुश्मन सभी किसानों का

—नरेन्द्र शर्मा

[८] नारी मुक्ति का स्वर

नारी की परवशता तथा दुदशा की ओर भी प्राय सभी प्रगतिवादी कवियो की दृष्टि गई है और उन्होंने उसकी मुक्ति के गान गाये हैं। पंत जी की रचना का कुछ अंश यहां उदाहरण-रूप म प्रस्तुत है—

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित ।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित ।
खोलो हे मखला युगो की, कटि प्रदेश से तन से,
अमर प्रेम हो बन्धन उसका हो पवित्र वह मन से ।

[९] भौतिक अभ्युदय

प्रगतिवादी काव्य भौतिक अभ्युदय स ही सम्बद्ध रहा है। ईश्वर, धर्म सम्प्रदाय आदि म कवियो का कोई आस्था नहीं रही है। नवीन जी ने अपनी एक कविता म इस प्रसग म लिखा है कि जिस दिन मैंने एक भिखारी को लपक कर जूठे पत्तलो को चाटते हुए देखा उस दिन मेरी इच्छा हुई कि आज जगतपति का ही गला

क्या न घाट दिया जाय जिसने मनुष्य को यह क्षुद्रतम रूप दिया। अन्य कवियों का भी इस सम्बन्ध में विश्वास है कि ईश्वर जैसी कोई भी वस्तु इस संसार में नहीं है क्योंकि आज तक न तो उसने कुछ किया है और न उसमें कुछ भी करने का सामर्थ्य है।

[१०] रूढ़ियों का विरोध

प्रगतिवादी कवि रूढ़ियों तथा जाति पाँति का भी विरोध करते हैं। नरेन्द्र शर्मा जी की एक कविता का कुछ अंश इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है--

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान
पर क्या दोनों इन्सान नहीं।
मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ
तुम मुझे वणिक और देहकानी।
सदियों हम दोनों साथ रहे
यह बात न अब तक पहिचानी।
दोनों ही धरती के जाये
हम अनचाहे महमान नहीं।

[११] यथार्थवादी चेतना

प्रगतिवादी काव्य की महत्ता सामयिक संघर्षपूर्ण जीवन के प्रति सजगता तथा विषमतापूर्ण जगत की यथार्थ समस्याओं को वाणी देने में भी निहित है। समाजवादी यथार्थवाद की चेतना इस वाद की प्रमुख वस्तु रही है। सामाजिक चेतना की प्रबलता के कारण कवि की वैयक्तिकता को कोई महत्व नहीं दिया गया है।

[१२] साहित्य एक उपयोगी कला

काव्य को भी उपयोगी कला के रूप में ग्रहण किया गया है और वर्गवादी विचारों के प्रसारण का उसे एक सशक्त माध्यम बनाया गया है। काव्य कल्पना-लोक से उतरकर बिल्कुल समाज के यथार्थ जीवन-स्तर से घुल मिल गया है। छायावादी काव्य में वस्तु तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियों से समाज तथा काव्य में एक पार्थक्य था। प्रसाद, निराला पंत और महादेवी के गीत सामान्य जनता के लिए नहीं लिखे गये पर प्रगतिवादी काव्य सामान्य जनता कृषक मजदूर शोषित वर्ग का ही काव्य रहा है।

वस्तु योजना की दृष्टि से अभी एक विषय छूट गया है जो छायावाद का प्रमुख उपादान रहा है किन्तु प्रगतिवादी जीवन-संघर्ष में इतने अधिक उलझ रहे कि उन्हें उसकी ओर दृष्टिपात करने का अवसर ही न मिला--वह विषय है प्रकृति। अतएव प्रकृति का प्रयोग प्रगतिवादी काव्य में विरलता के साथ मिलता है। नागार्जुन केदार नाथ अग्रवाल आदि ने अपनी अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र प्रकृति के आलम्बनगत

शोभन और सवेद्य चित्र भी प्रस्तुत किए हैं। अतएव प्रगतिवाद काव्य मे प्रकृति के चित्रण सवथा उपक्षित नही हो सके हैं। यहाँ हम कदारनाथ जी की एक प्रकृति रचना प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमे खेत की लहराती फसल का चित्रण करत हुए उन्होने रूपक के माध्यम से स्वयवर का एक दश्य उपस्थित किया है—

एक बीते के बराबर, यह हरा ठिगना चना,
बाधे मुरठा शाश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खडा है।
पास ही मिलकर उगी है
बीच म अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है लचीली।

सिंदूर तिलकित भाल

इसी प्रकार मिथला की अमराइयो का सश्लिष्ट चित्रण नागार्जुन ने भी अपनी रचना म किया है। प्रगतिवादी कवियो क प्रकृति चित्रण की यह विशेषता है कि उन्होने छायावादी प्रकृति क अवयवो का छोडकर सवथा नय रूप मे उस प्रस्तुत किया है। यह रूप प्रगतिवादी जीवन चेतना के पूणत अनुरूप है।

[१३] खुल गये छद के बध

प्रगतिवादी काव्य के कला पक्ष स सम्बधित विशेषताओ को हम एक साथ पत जी की निम्नाकित पक्तियो म देख सकत हैं—

तुम वहन कर सको जन मन म मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हे क्या अलकार।
या तुम रूप कम से मुक्त, शब्द के पख मार
कर सको सुदूर मनोनभ मे जन के विहार।
या खुल गय छद के ब ध प्रास क रजत पाश।
अब गीत मुक्त औ युगवाणी बहती अयास॥

अर्थात जन–मन म वाणी का प्रसार करना प्रगतिवादी कवियो को इष्ट रहा है अतएव भाषा को अलकार की कोई आवश्यकता नही रह गइ। भाषा जनवादी विचारो के अनुरूप जन भाषा के रूप म प्रस्तुत हुई और उससे अलकारो के आवरण उतार दिय गये। छद क बध टूट गये और गीत मुक्त होकर युग वाणी का प्रसार करने लग।

भाषा के क्षेत्र म छायावादी लक्षणा और व्यजना का प्रवध इस युग की रचनाओ म नही मिलता। शब्द–विधान सामान्य जीवन स्तर को ध्यान म रखकर प्रस्तुत

किया गया है। इस प्रकार न केवल विचारों के क्षेत्र में वरन् भाषा के क्षेत्र में भी यह काव्य जनता के पास आकर उसमें घुल मिल गया है किंतु सामान्य भाषा और सरल अभिव्यक्ति का अर्थ गलत नहीं समझा जाना चाहिये। यदि भाषा दरिद्र हो तो श्रेष्ठ काव्य की रचना हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार जनता की सीमित शब्द-राशि को ही केन्द्रित करके साहित्य लिखा जाय तो उसमें सूक्ष्म मनोभावों की व्यंजना नहीं हो सकती। इसीलिये भाषा की सरलता और सुबोधता की आवश्यकता का प्रतिपादन करने के उपरान्त भी डा० रामविलास शर्मा को लिखना पड़ा कि भाषा के किसी आदर्श को ही अमर नहीं कहा जा सकता। भावों और विचारों के अनुकूल ही भाषा का स्वरूप होना चाहिए।

[१४] जन भाषा का आग्रह

जन भाषा के आग्रह करने के कारण प्रगतिवादी काव्य में विपुल मात्रा में ग्रामीण शब्दों का भी समावेश हो गया है और भाषा विशुद्ध न होकर देशज तत्सम और तद्भव शब्दों का मिश्रित रूप है। ग्रामीण शब्दों के कुछ उदाहरण ये हैं—छिन धनि, पगही आधाना, पोत करीं चनाचबना, बिल्मना छापना छिपाना सान्त कुसाइत बाजू बिर-पके सरौता अरौता नरौता आदि। कहीं-कहीं तो गालियां तक को प्रस्तुत कर दिया गया है।

कहीं कहीं शुद्ध तत्सम शब्द भी मिल जाते हैं किन्तु ऐसे उदाहरण विरल ही हैं। प्रभाकर माचवे की एक कविता का कुछ अंश यहाँ अवलोकनार्थ उद्धृत है—

यदा संहरते चायं
कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः
गीता में यह स्थित प्रज्ञ का लक्षण।
तुम हो जीव विलक्षण।
बड़ी उम्र ही कच्छपराज तुम्हारी।
करीं पाठ
सिवार-सनी यह पृथुल देह, गति शिथिल।

इसी प्रकार पन्त जी की प्रगतिशील कविताओं में भी तत्सम पदावलियों का आधिक्य मिलता है।

निराला जी के 'कुकुरमुत्ता' की भाषा प्रगतिवादी काव्य की आदर्श भाषा मानी जाती है। उदाहरणस्वरूप में उसका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,

डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रक्खा खिलाया जाड़ा घाम।

[१५] जनवादी अप्रस्तुत विधान

अप्रस्तुत विधान भी प्रगतिवादी काव्य का जन सामान्य है। एक तो अलंकरण करने का उन्हें कोई मोह नहीं रहा यथार्थ जगत को बाना को कवियों ने निर्व्याज रूप में प्रस्तुत किया दूसरे जिन उपमानों प्रतीकों या बिम्बों को उन्होंने ग्रहण किया, वे छायावादी कवियों की सूक्ष्म कल्पना की विशाल उड़ानों से सम्बन्धित न होकर श्रमिकों के दैनन्दिन जीवन से सम्बंधित हैं। प्रतीक ऐसे हैं जो सहज ही जनता समझ सके और जिनकी शक्ति और ताप उन्हें अभीष्ट अर्थ की प्रतीति करा सके। छायावादी प्रतीकों में जो मसृणता, स्निग्धता और सौन्दर्य चेतना विद्यमान है वह प्रगतिवादी काव्य में नहीं है यहाँ जीवन के संघर्षमूलक उपादानों से प्रतीकों को नये सिरे से उठाया गया है जन-वादी विचार और जन भाषा के साथ प्रतीक भी जनवादी ही हैं। यहाँ पर कुछ प्रगतिवादी प्रतीक दिये जा रहे हैं–'कोयल की खान की मजदूरिनी सी रात' 'सफेद कासों की झण्डी,'' ढेला सी बड़ी बड़ी आँखें, रहा की टोकरी का जीवन'' 'लहू की बूँदों से जलते हैं बिजली के बल्ब सूनी सड़कों पर लाल-लाल,' 'फूटे बतन सी तिरस्कृता मानवता' सखनी ही है हमारी पार, घरा है पट, सिंधु है मसिपात्र आदि। यहाँ जितने भी उपमान हैं वे सब सामान्य जीवन की सामान्य वस्तुयें हैं और उपमानों की प्रतीकात्मकता से वस्तुस्थिति की यथार्थता का बोध कराया गया है। निश्चित रूप से यहाँ पर उपमानों में नयी प्रगतिवादी चेतना के अनुसार नयापन है और ये प्रतीक अर्थ को पूर्ण शक्तिमत्ता के साथ उद्घाटित करने में समर्थ हुए हैं किन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं हो सका है। कहीं-कहीं असाहित्यिक और भौंडे उपमान और प्रतीक भी आ गये हैं जो काव्य को उसके उदात्त, संवेदनीय स्तर से स्खलित कर देते हैं जैसे पूँजीपतियों को उल्लू हरामी आदि के पिल्ले कहना ऐसा ही एक चिन्त्य प्रमाण है।

अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग किया गया है। मानवीकरण के भी शोभन प्रयोग प्रगतिवादी काव्य में मिलते हैं। स्वयंवर एक ऐसी ही रचना है जिसे हम पहले देख चुके हैं। यहाँ पर केदारनाथ अग्रवाल की एक अन्य कविता उद्धृत कर रहे हैं जिसमें मस्त बसन्ती पवन की चंचलताओं की चर्चा है—

चढ़ी पेड़ महुआ
थपाथप मचाया
गिरी धम्म से फिर

चढी आम ऊपर
उसे भी चकोरा
किया कान म कू
उतर कर भगी मैं
हर खेत पहुंची–

इस गीत म बिम्ब योजना का भी स्वरूप देखा जा सकता है गिरी घम्म से फिर म ध्वनि मूलक प्रतीकात्मकता है और महुए के जमीन पर गिरने का बिम्ब हमारी आखो के सामने आ जाता है। किया कान मे कू मे श्रुतिपेशल प्रतीक है। कोकिल की कू की ओर यहा सकेत है। यह चित्र भी अतीव शोभन है। गहुआ मे लहर मारना लहराते हुए गहू के खेतो की प्रतीक है इसमे चक्षुगोचरता विद्यमान है। उपयुक्त पक्ति के पढते ही लहराते खेत हमारी आँखों के सामने मूर्त हो उठते हैं। बिम्ब विधान की एक अन्य विशेषता यह है कि सारे बिम्ब खेत-खलिहानो, किसान और मजदूरो से सम्बन्धित जनवादी है। प्रकृति से सम्बन्धित उपयुक्त प्रगीत मे बिम्ब विधान सौन्दर्यमूलक है पर यथार्थ जीवन से सम्बन्धित है वह काल्पनिक लोक की वस्तु नहीं।

पूस मास की धूप सुहावन
धिम हुये पीतल सी पाडुर
स्नन पायी नीरोग गौर छवि
शिशु के गालो जसी मनहर
पूस मास की धूप सुहावन। (नागार्जुन)

उपयुक्त पक्तियो मे पूस मास की सुहावन धूप के प्रति उपमा और उत्प्रेक्षाय हैं ये भी प्रगतिवादी उपकरणो से सम्बन्धित हैं। इनमे भी चित्रात्मकता विद्यमान है।

अन्योक्ति का भी प्रगतिवादी कवियो ने बहुत प्रयोग किया है। पन्त की स्वीट पी के प्रति केदारनाथ अग्रवाल की कोयलें आदि ऐसी ही रचनायें हैं।

प्रगतिवाद म शलियो की दृष्टि से प्रधानत चार शलियाँ प्रयुक्त की गई हैं– वर्णनात्मक उद्बोधनात्मक, विचारात्मक और हास्य तथा व्यंग्य मूलक। वर्णनात्मक शली प्रगतिवादी काव्य म यथार्थवादी शली का ही सस्करण है। इस क्षेत्र म निराला तथा ईषत मात्रा म पन्त जी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। निराला ने विपुल मात्रा म यथार्थवादी शब्द चित्रो को उनके सपूर्ण परिवेश म प्रस्तुत किया है। ये चित्र ग्रामीण जीवन के मार्मिक अश हैं और इन स्थलो का वर्णन करते हुये निराला वस्तुत 'ग्राम्य गीतो' की वर्णनात्मकता को प्रस्तुत करने लगते है। 'कुत्ता भौंकने लगा' डिप्टी

साहब आय, 'वह मूँज कूटता है' आदि ऐसी ही रचनायें है। यहा हम उनका एक ग्राम्य रेखा चित्र का उदाहरण द रहे हैं—

सडक के किनार दुकान है
पान की। दूर एक्कावान है
घोड़े की पीठ ठोकता हुआ,
पौरजग्य एक बच्चे को दुआ
दे रहा है पीपन की डाल पर
कूक रही कोकिल मान पर
बैलगाडी चली जा रही है।

इस रेखाचित्र मे तत्कालीन परिस्थिति का सूक्ष्म चित्र अंकित किया गया है। पत जी की 'ग्राम्या म धोबियो, चमारो आदि के नृत्यो म भी यह वर्णनात्मक शली अपने प्रकृप पर देखी जा सकती है। नृत्यात्मक प्रगीता म भी इयत् मात्रा म इस देखा जा सकता है।

प्रगतिवादी विचारो का प्रचार—प्रसार करन क कारण प्रगतिवादी काव्य म उदबोधन शली की प्रमुखता है। इस शली के कई उदाहरण वस्तुगत विशेषताओ के निदर्शन के समय हम दे चुके है।

जहाँ प्रगतिवादी कवि काव्य क माध्यम से अपने सद्धान्तिक विचारो का प्रस्तुत करत हैं वहा विचारात्मक शली का प्रयाग हुआ है। पत की युगवाणी' इस शली के उदाहरणो से भरा पडा है।

व्यग्य और हास्य शला प्रगतिवादी काव्य का एक सामान्य और सार्वत्रिक विशेषता है। प्राय सभी कवियो ने इसका प्रयोग किया है। हास्य शली का लक्ष्य विशुद्ध मनोरजन रहता है किंतु व्यग्य मनोरजन क आग बढ़कर आक्रमण भी करता है। उसकी प्रकृति विश्लेषणात्मक और समीक्षात्मक होता है। इसका पल्लवन काव्य की भाव-भूमिका पर न होकर बौद्धिक भूमिका पर होता है। निराला, नागार्जुन भारत भूषण अग्रवाल आदि को व्यग्य योजना म अधिक सफलता मिली है।

छन्द और काव्य रूपो के क्षत्र म भी प्रगतिवादी काव्य अपनी विशिष्टता रखता है। इस युग मे मुक्त छन्दो का सर्वाधिक रूप स प्रयोग किया गया। परम्परा से आगत छन्दो की विरलता या बहिष्कार हो है। मुक्त छ दो मे लय का समार और निर्वाह प्रमुख वस्तु रहती है किन्तु लयात्मकता का निराला की अपेक्षा अभाव है और रचनायें, गीत गद्य क रूप म ही अधिकतर लिखी गई है। छन्द इसके लिए जुम्मेदार नही है। विचारो का आग्रह और प्रचारात्मकता, तथा व्यग्याधिक्य ही छन्द के विघातक सिद्ध हुए हैं। जहाँ कोमल सरस भावनाओ का प्रकाशन है वहा मुक्त छन्द म भी गीत के समान तरलता और सरसता है। केदारनाथ अग्रवाल क स्वयवर तथा

८ शान्ति की अपेक्षा संघर्ष में निष्ठा, अहिंसा की अपेक्षा हिंसा में आस्था।

८ क्रांति को एक मात्र अस्त्र रूप में ग्रहण करना, जिससे वर्ग कटुता की भावनायें अधिक गहरी हुई हैं।

९ इसका आत्यंतिक लक्ष्य शारीरिक सुख, आर्थिक विषमता का अभाव, वर्गहीन समाज की रचना।

१० अधिकांश प्रगतिवादी लेखक समाज के दलित वर्ग के प्रति मौखिक सहानुभूति का विज्ञापन करते हैं।

११ अतिशय शृंगार चित्रण में काम वासना की प्रमुखता, नारी का सौन्दर्य मांसल और कामुकता से भरा रूप चित्रित।

१२ वस्तु परकता की सर्वाधिकता, स्वानुभूतियों का अपेक्षाकृत अभाव। युग चेतना की अनुभूति कम, देश के श्रमिकों की दुरवस्था का आंखों देखा चित्रण अधिक है।

१३ सत्य, शिव और सुन्दर की अनुभूतियों पर विश्वास नहीं। "सुन्दर, शिव, सत्य कला के कल्पित भाव मान, बन गये स्थूल जगजीवन से हो एक प्राण"–पन्त।

१४ कला के तत्वों का ह्रास हुआ है और प्रचार भावना के कारण बुद्धि तत्व की अधिकता है।

१५ काव्य कला की शिथिलता तथा अपरिष्कार विद्यमान है। प्रगतिवादी समीक्षा में समाजशास्त्रीय पन अधिक साहित्यिकता कम है।

१६ कवि ग्रहण मूल प्रेरणा पर ध्यान न देकर सिद्धांतों का अन्धानुकरण करते हैं जिससे काव्य को सहजोत्कर्ष नहीं मिलता।

१७ मानवता की चर्चा करके भी प्रगतिवाद सर्वहारावादी है समाज के सभी वर्गों के प्रति उसके पास शुभाकामनायें नहीं हैं।

इन आक्षेपों में से कुछ के निराकरण के संदर्भ में प्रगतिवाद के अधिकृत विद्वान और समीक्षक डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि 'मार्क्सवाद पर जो एकांगी होने का दोष लगाया गया है वह वस्तुगत सत्य नहीं। उन्होंने प्रगतिवाद की मूल विशेषता का ज्ञापन करते हुये इसी संदर्भ में लिखा है—'वह यह मानता है कि जो साहित्य युग की सजीव अनुभूति और प्रगतिशील विचारों को व्यक्त नहीं करता वह निर्जीव हो जाता है उनका यह कथन तो हर साहित्य की मूल विशेषता है पर प्रश्न यह है कि क्या प्रगतिवाद यही कार्य व्यावहारिक रूप में करता है। हम देख चुके हैं कि सामाजिकता की शंखध्वनि करते हुये भी वह सर्वहारा को ही समाज मानता है, वही इसका इष्टदेव है, और जो उसका विरोधी या विजातीय है वह उनकी निर्ममता का पात्र है भले हो वह दूध का धुला और गंगा जल सा पावन हो। उनका तन्त्र

स्वरचित है इसी को वे समाज का निकष मानते हैं। यदि उन्हें मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुगत होने की स्वतन्त्रता है, तो दूसरे उसे न मानने के लिए भी स्वतन्त्र हैं। पर यह व्यक्ति स्वतन्त्रता वे सहन नहा कर पाते, फिर एकाकी दृष्टि नही तो क्या समरस है ?

ईश्वर मे उनकी आस्था नही इस अनास्था से मुझे कोई चिढ नहीं है। जो समाज उसे मानता है वह उनकी अपेक्षा अधिक उन्नतिशील भी तो नही ? स्वय भारतीय दर्शन की विविध धाराओ के प्रवर्तको म से लगभग आधे दार्शनिक नास्तिक रहे हैं, भौतिकता की चरम लक्ष्यता भी नही अखरती, प्रगतिवाद धर्म की रूढि का खण्डन करता है इस पर भी मुझ कुछ नही कहना, जीवन म निरन्तर सघर्ष करते रहना, इसमे भी कोई बुराई नही है वर्गहीन समाज भी बुरा नहा क्रान्ति ही यह सब कर सकता है वर्तमान समाज की विपन्नावस्था और पू जीपतियो की अधिकार लिप्सा तथा स्वार्थबद्धता की अपरिवर्तनशीलता को देखत हुए यह भी किसी हद तक स्वीकार्य है पर क्या ये सब व्यापार काव्य क विषय हैं ? क्या यह साम्यवाद राजनीति के तत्र का एक अभिन्न अग नही ? क्या साहित्य को राजनीति का अग बना देना समीचीन होगा ? क्या साहित्य का यही प्रयोजन है ? क्या ये ही विचार प्रकट करना साहित्यिक सौन्दर्य और कलात्मकता है ? निश्चित रूप से नही है। राजनीति समाज तन्त्र है, उसके विकास के लिए सुख सुविधाओ का सचय करना आन्तरिक व्यवस्था और बाह्य आक्रमणो से रक्षा करना उसकी अधिकार सीमा है। साहित्य व्यक्ति के हृदय की वस्तु है, वह जन मन को वयक्तिकता से मुक्त करके एक उन्नत स्तर पर पहुचाकर, उन्हें आह्लाद प्रदान करने वाला कान्ता सम्मित रूप से ज्ञान विज्ञान, आदेश उपदेश और सदेश को प्रस्तुत करने वाला है। दोनो के पथ भिन्न हैं। एक ओर कल्पना का आह्लादक सौ म्य है दूसरी ओर जीवन का दुधर्ष यथार्थ सघष है दोनो के पथक क्षेत्र हैं एक नही। फिर एक कर देना साहित्य की चिरतन गतिशीलता को झुठलाना नही है। सिद्धान्त रूप से कर भी लिया पर क्या सवत्र ऐसा कर सकना सम्भव है ? यदि ऐसा है तो केदारनाथ अग्रवाल के 'स्वयवर' तथा वसत पवन की चचलता से युक्त क्रीडाओं म कौन सा मार्क्स का दर्शन भरा हुआ है ? कौन सी प्रगतिगामिता है ? क्या वहाँ कल्पना का सौन्दर्य ही रूप सवेद्य नही बनाता ? यह सवेदना पत जी के मार्क्स स्तवन म क्यो नही मिलती। यदि उसे सामान्य जनता को सुनाया जाय तो कदाचित ही एकाध शब्द समझ सके ? तब क्या यही प्रगतिवादी दृष्टि और उपलब्धि है ? राजनीति साहित्य से प्रेरणा ले साहित्य राजनीति की चेतना ग्रहण करे किसी को कोई आपत्ति नहीं किन्तु इन्हें अपनी मर्यादाओ का अतिक्रमण नहा करना चाहिए। राजनीति और साहित्य को एक समझने वाली साम्यवादी दृष्टि निश्चित रूप से चिन्त्य हैं। इस आधार बनाकर यदि प्रगतिवाद पर आक्षेप किया जाता है तो कोई अपराध

नहीं किया जाता, असत्य का पथ ग्रहण नहीं किया जाता।

श्लील अश्लील की पहचान के लिए यहां मैं मगला मोहन की एक प्रगतिवादी रचना प्रस्तुत कर रहा हू। इसमें यथार्थवादी शैली है, या कवि के हृदय की नग्न वासना और क्या ऐसे चित्रण साहित्यिक हैं ? इसका निर्णय स्वय कर लीजिएगा—

उस धान के कटे हुए खेतों के उस पार
भैस के पीछे एक काली सी किसान कन्या।
नाटे से बरगद की घनी उस छाह मे
पास मे मोटा सा लट्ठ लिए एक युवक
भैस की पीठ पर कुहनी टिकाए हुए
देखते ही देखते चिकोटी काटी उसने
छातियां मसल दी और ।

मैं यह नहीं कहता कि प्रगतिवाद ऐसे उदाहरणों से भरा हुआ है, पर उदाहरण मिलते तो हैं, अपवाद ही सही, क्या वह विषय वासना सामाजिक चेतना का फल है ? या केवल वस्तुस्थिति के यथार्थ चित्रण के नाम पर प्रस्तुत किया गया है ?

प्रिये अभी मधुराधर चुम्बन गात गात गू थे आलिंगन।
सुने अभी अभिलाषी अन्तर मदुल उरोजों का मृदु कंपन ॥ -

——नरेन्द्र शर्मा।

नरेन्द्र शर्मा की उपयुक्त पंक्तियाँ भी इसी प्रसग मे विचारार्थ देखी जा सकती हैं। *सयोग शृ गार के इससे भी मादक चित्र प्रसाद की परिरम्भ कु भ की मदिरा, निश्वास मलय के झोंके, मुखचन्द्र चांदनी जल से मैं उठता था मुँह धोके'* आदि पक्तियो मे तथा निराला की होली रचना मे मिलते हैं पर उन पर प्रतीकों का सुन हला आवरण है। वे नग्न और निर्लज्ज नहीं हैं।

एक ओर प्रगतिवादी रूस मे पानी बरसे तो भारत मे छाता लगाकर चलने वाले हैं दूसरी ओर शीन महलो मे खस की टट्टियो से सुसज्जित प्रकोष्ठ मे मटकती सोफा-सेटो मे बठकर ग्रीष्म के आतप से झुलसते हुए किसान की वदना के गीत गाते हैं। क्या यह विरोधाभास नहीं है। उनके गीतों से कदाचित एक भी किसान और मजदूर का भला न हुआ होगा, देश के मजदूरों को आज भी यह पता नहीं कि उन पर पंत, निराला, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शील या अन्य किसी ने प्रगीत लिखे हैं ? शायद उनसे पूछो तो वे इनका नाम भी न बता पावेंगे। इसी स्थिति मे यह मौखिक और बौद्धिक सहानुभूति का आरोप व्यर्थ नहीं कहा जा सकता, भले ही यह आरोप आत्यन्तिक न हो।

कला-पक्ष की शिथिलता और अपरिष्कृति को तो स्वयं डा० रामविलास

शर्मा जी ने स्वीकार किया है अतएव इस विषय पर तर्क देना, अनावश्यक है।

(उ) प्रदेय

दुर्बलतायें और कमियाँ तो हरवस्तु मे थाजन पर मिल ही जाती हैं, विकास के लिए उनका होना आवश्यक भी है। प्रगतिवाद मे भी ये हैं और प्रचुर मात्रा म हैं किन्तु उसका सौरस्य कमियो मे निहित नही है, उसकी विशेषताएं और उपलब्धियाँ युगान्तरकारी हैं। इसलिये दोषो का विवेचन करके प्राय सभी समीक्षको ने उसका माहात्म्य भी उदघाटित किया है। यहा हम हिन्दी के चार प्रतिष्ठित आलोचको के मतो को इस सदर्भ मे उद्धत कर रहे हैं। जिनके द्वारा प्रगतिवाद का समुचित समादर और प्रदेय स्पष्ट हो जायगा। इन समीक्षको म से दो स्वच्छन्दतावादी हैं एक प्रगतिवादी और एक अन्तश्चेतनावादी। स्वच्छन्दतावादी समीक्षको मे एक सौष्ठववादी और दूसरे मानवतावादी हैं। प्रगतिवादी समीक्षक डा० शर्मा को छोडकर शेष सभी आचार्य प्रगतिवाद के कट्टर समीक्षक हैं किन्तु उन्होने अपने एकागीपन का परिचय नही दिया, गुण दोष दोनो ही उनकी दृष्टि म रहे हैं। सौष्ठववादी समीक्षक आचार्य वाजपेयी जी के अनुसार साहित्य के सामाजिक लक्ष्यो और उद्देश्यो का विज्ञापन करने वाली यह पद्धति साहित्य का बहुत कुछ उपकार भी कर सकी है। उसने हमारे युवको को एक नई तर्जास्विता भी प्रदान की है और एक नया आत्मबल भी मिला है। हम यह भी नहीं कहते है कि प्रगतिवादी समीक्षा ने हिन्दी को कुछ दिया ही नही। उसने दो वस्तुए मुख्य रूप से दी हैं। प्रथम यह कि काव्य साहित्य का समन्वय सामाजिक वास्तविकता से है और वही साहित्य मूल्यवान है जो उक्त वास्तविकता के प्रति सजग और सवेदनशील है। द्वितीय यह कि जो साहित्य सामाजिक वास्तविकता से जितना ही दूर होगा वह उतना ही काल्पनिक और प्रतिक्रियावादी कहा जायगा। न केवल सामाजिक दृष्टि से वह अनुपयोगी होगा, साहित्यिक दृष्टि से भी हीन और ह्रासोन्मुख होगा। इस प्रकार साहित्य के सौष्ठव सम्बन्धी एक नई माप रेखा और एक नया दृष्टिकोण इस पद्धति ने हमे दिया है जिसका उचित प्रयोग हम करेंगे।"[१]

मानवतावादी समीक्षक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "इसके सिद्धान्त और उद्देश्य बहुत सुन्दर हैं लेकिन ये लोग कम्युनिस्ट पार्टी के साथ जुडे हुए हैं, यही जरा खटकता है। प्रगतिशील आन्दोलन बहुत महान उद्देश्य से चालित है। इसमे साम्प्रदायिक भाव का प्रवेश नही हुआ तो इसकी सम्भावनाएँ अत्यधिक हैं। भक्ति आन्दोलन के समय जिस प्रकार एक अदम्य, दृढ आदर्शनिष्ठा दिखाई पडी थी, जो समाज के नए जीवन दर्शन से चालित करने का सकल्प वहन करने

१ साहित्य विवेचन, भूमिका—वाजपेयी जी

के कारण अप्रतिरोध्य शक्ति के रूप म प्रकट हुई थी, उसी प्रकार यह आन्दोलन भी हो सकता है।'[१]

श्री इलाचन्द्र जोशी जी का मत है कि "प्रगतिवाद ने वाह्य जगत के जीवन सघर्ष की ओर हमारी चेतना को उन्मुख कर साहित्य का बहुत बडा उपकार किया है। यह बात हम किसी भी हालत म नहीं भुलानी होगी।"

उपयुक्त तीनो विद्वान प्रगतिवाद की समीक्षा करते हुए मुक्त कठ से उसकी उपलब्धियो को स्वीकार करते हैं। डा० शर्मा ने अपने प्रगतिवाद-सम्बन्धी विश्लेषण के उपरान्त जो निष्कर्ष दिये हैं वे भी उपयुक्त निर्णयों से भिन्न नही है। उनका कहना है कि "प्रगतिशील साहित्य युग की माग को पूरा करने वाला साहित्य है। उसकी शक्ति इस बात में है कि वह समाज के वास्तविक जीवन के निकट है।'[२]

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य म प्रगतिवाद एक युग प्रतिनिधि और युगान्तकारी आदोलन है। अनक दुबलताएँ रहते हुए भी उसकी सामाजिकता और जीवन की सन्निकटता उसे अक्षयता और लोकप्रियता प्रदान करती है। यह आदोलन केवल काव्य म ही नही, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, समीक्षा आदि साहित्य क सभी रूपों म हम एक साथ दिखाई दता है। इसन जो मानवीय जीवन की सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि प्रस्तुत की, वह साहित्य तथा समाज के उन्नयन का एक नया दिशा बोध है। साम्प्रदायिक भावना स हीन प्रगतिवादी के प्रतिमान स्वस्थ और समुज्ज्वल साहित्य के प्रतीक हैं।

---

१ हिन्दी-साहित्य—प्रगतिवाद

२ प्रगतिशील साहित्य की समस्याय।

४ | प्रयोगवाद 1943 - 1953

भूमिका

१९४३ ई० से लेकर आज तक के इन वर्षों में 'प्रयोगवाद' और उसकी आत्मजायें नयी कविता, अकविता, युवा कविता आदि पर बहुत वाद विवाद हो चुके हैं। प्रशंसा–स्तुति भी अच्छी मात्रा में हो चुकी है। प्रयोगवादियों और नयी कवितावादियों को प्रबोधन, आदेश उपदेश और योजनाएं भी दी जा चुकी हैं। यदि किसी अप्रयोगवादी समीक्षक ने उस पर विचार किया तो दोषों की असीम सूची तयार कर दी या किसी प्रयोगवादी समीक्षक ने अपना और अपने मित्रों की काव्य साधना का विश्लेषण किया तो कुकरमुत्ता की भाति अपनी आत्मस्तुति में पन्ने रंग डाले। गुलाब की भाति परम्परा पोषकों को काव्य–जगत के राहु केतु कहा और अपने को युग का अधिकृत्य प्रतिनिधि सिद्ध करने का प्रयास किया। इस सघर्ष का उपशमन आज भी नही हो सका है। किन्तु आज आरम्भिक तनावपूर्ण स्थिति भी नही है। 'तार सप्तक' के स्वर भी झनझना कर सम पर आ गये हैं और पुराने समीक्षक भी नई कविता और प्रयोगवाद सम्बन्धी अपने पुराने मतों का संशोधन करने लगे हैं। समय भी आ गया है जब हम तटस्थ रहकर इस साहित्यिक आंदोलन पर पुन विचार करें।

हिन्दी साहित्य मे प्रयोगवाद की प्रथम अनुभूति अज्ञेय जी के द्वारा सपादित प्रथम 'तार सप्तक' (१९४३ ई०) से मानी जानी है। इसकी प्रकाशन योजना के मूल मे दो सिद्धात थे–प्रथम सहयोग अर्थात भाग लेने वाला प्रत्येक कवि पुस्तक का साझी होगा और द्वितीय संग्रहीत कवि सभी ऐसे होंगे "जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं, जो यह दावा नही करते, कि काव्य का सत्य उन्होने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं"[1]। उन्होने यह भी कहा कि 'तार सप्तक किसी गुट्ट का प्रकाशन नही है क्योकि संग्रहीत सात कवियो के साढे सात अलग अलग गुट्ट हैं उनके साढे सात व्यक्तित्व हैं[2]।' फिर भी वे यह दावा करते हैं कि "सातो (यानी तार

१ तार सप्तक प्रथम, पृष्ठ ५।
२ " " " ६।

सप्तक के सात कवि) अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र मे बाधता है बल्कि उनके एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे किसी एक स्कूल के नही हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नही हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"

प्रथम तार सप्तक के प्रकाशन से सम्बंधित इस तथा-कथा से यह ज्ञात होता है कि प्रयोगवाद-कोई योजनाबद्ध आंदोलन नही है। उस समय उसका कोई निर्दिष्ट रूप भी नही था। तार सप्तक के कवि किसी एक स्कूल के भी नही हैं।[1] वे काव्य सत्य के अन्वेषी हैं और काव्य को प्रयोग का विषय मानते हैं—केवल ये दो बातें उनमे समान हैं। इस तरह अज्ञेय जी यहाँ किसी वाद का प्रवतन नही करते, बस, काव्य को प्रयोग का विषय मानते हैं। किन्तु इसी पर विवाद उठ खड़ा हुआ और शमशेर बहादुर सिंह, अज्ञेय आदि प्रयोगवाद को वाद के रूप मे मानने के लिए प्रतिवाद करते रहे, तभी श्री नलिन विलोचन शर्मा, केशरी कुमार तथा नरेश ने (न-के-न वाद) प्रयोगवाद का मनीफेस्टो—उद्घोषणा पत्र प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने निम्नांकित दस सूत्र मय फविवका के प्रस्तुत किये—

प्रपद्यवाद या नकेनवाद

प्रयोग दश सूत्री

प्रयोगवाद के घोषणा पत्र का प्रारूप।

(१) प्रयोगवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।

(२) प्रयोगवाद सवतन्त्र स्वतन्त्र है। उसके लिए शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं।

(३) वह महान पूर्ववर्तियो की परिपाटियो को निष्प्राण मानता है।

(४) वह दूसरों से भी अधिक अपना अनुकरण वर्जित समझता है।

(५) उसे मुक्त काव्य नहीं स्वच्छन्द काव्य की स्थिति अभीष्ट है।([1])

(६) प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवाद को साध्य। ([2])

(७) प्रयोगवाद की इक वाक्य पदीय प्रणाली है। ([3])

(८) उसके लिए जीवन और कोष कच्चे माल की खान हैं।

(९) प्रयोगवादी प्रत्येक प्रयुक्त शब्द और छंद का स्वय निर्माता है। ([4])

---

१ प्रथम तार सप्तक के कवियो मे आधे प्रगतिवादी हैं—
प्रभाकर माचवे, गिरजा कुमार माथुर और रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध नेमिचन्द्र और अज्ञय— प्रयोगवादी तथा भारत भूषण अग्रवाल प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की सन्धि के कवि हैं।

(१०) प्रयोगवाद दृष्टिकोण का अनुसधान है ।

हस्ताक्षरित
नलिन विलोचन शर्मा
केसरी कुमार
नरेश[1]

फक्किका

(१) Verse Lifre Vers Lifre भाष्य के लिए देखिए—दृष्टिकोण' मासिक के द्वितीय अंक का प्रथम निबन्ध ।

(२) तुलना कीजिए चरित्रशील और चारित्र्यवाद, प्रगतिशील और प्रगतिवाद के साथ ।

(३) Veru–Voco–Visual–method

(४) जस चित्रकार वर्ण योजना का मूर्तिकार प्रस्तर खण्ड का ।

जब इन दस–सूत्रो को आधार बनाकर कविता लिखी गई तो वह अपनी विलक्षणता और प्रयोगो की बहुलता के कारण बौद्धिक हो गई। वह परम्परा से विच्छिन्न, अहं केद्रित कुंठाओं निराशाओ और तृप्तियो से युक्त विचित्र गोरख धंधा बन गई। इस विच्छिन्नता अस्पष्टता और बौद्धिकता को ही इन कवियो ने आस्वाद्य बताया। प्रतिफल यह हुआ कि यह नकेनवाद जन्म लेते ही अपनी आत्म घुटन से पीडित होकर जल्दी ही समाप्त भी हो गया।

अज्ञेय और उनके सहयोगी मित्रो ने प्रयोग को अंतिम लक्ष्य न मानकर अपने को प्रयोगशील कहकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। यहाँ प्रयोगशील' और प्रयोगवाद' म लगभग वही अन्तर है जो 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' में है। जिस प्रकार प्रगतिशीलता प्रगतिवाद से किंचित भिन्न होकर भी एक ही वतुल परिधि में साहित्य सजना करती है तदभव प्रयोगशीलता भी प्रयोगवाद की परिधि से मिल कर ही कायरत थी। प्रयोग आदि काल स होते रहे हैं सभी कवि नये प्रयोग करते हैं पर अज्ञेय, शमशेर, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि कवि काव्य को प्रयोगो का विषय क्षेत्र मानकर चलते हैं। प्रयोग–माध्यम से वे काव्य सत्य पाने के लिए लालायित हैं। इस राह–अन्वेषण म उन्होंने भी सहस्राधिक ढंग के प्रयोग किए, यहाँ तक कि प्रयोगशीलता को ही अपनी मनोवृत्ति बना ली।

प्रयोगवाद के प्रेरणा स्रोत

यहाँ प्रश्न है कि यह प्रयोगवादी या प्रयोगशील मनोवृत्ति एकाएक कैसे जागृत हुई ? क्या देश की तत्कालीन विविध परिस्थितियाँ इस मनोवृत्ति की उदभाविका हैं ?

---

[1] इस प्रयोगदशसूत्री में पहली बार 'प्रयोगवाद' का मौलिक शील निरूपण हुआ—नरेश, प्रकाश', पटना २८ १० ५७

या यह मनोवृत्ति हालावाद के समान कवियो के वयक्तिक दुखद जीवन की प्रतिक्रिया है अथवा यह विदेश से आयात की हुई वस्तु है ? या इसके सूत्र हमारे साहित्य मे विद्यमान थे बाह्य प्रभाव और कवियो के मनोयोग द्वारा वे उद्बुद्ध होकर प्रगतिवाद के समान ही एक आन्दोलन के रूप म हमारे सामने आये।

जहाँ तक देश की विविध परिस्थितियो का प्रश्न है १६४२ ४३ का समय देश मे व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलना का समय था और उतनी ही शक्ति के साथ उसका दमन भी किया जा रहा था। इसी समय बगाल का अकाल पडा, जिसकी चर्चा प्रगतिवाद के सन्दभ म की जा चुकी है। ये परिस्थितियाँ दुखद और करुण थी, पर इस समय देश के कवियो ने इस घटना से प्रभावित होकर अपरिमित मात्रा म शोक सहानुभूति, क्षोभ और अग्रेजा की नीति की समीक्षा करते हुए प्रगीत लिखे। उनकी वाणी में आक्रोश था। जनता क लिये असीम दद और देश की स्वतन्त्रता के लिए बलवती चाह थी किंतु यह व्यक्तित्व के विखण्डन करने वाली परिस्थितियाँ नही थी, अहकेन्द्रित, निराशा घुटन अनास्था, कुण्ठाओ की प्ररणा इन परिस्थितियो न निश्चित रूप से नही दी। प्रयोगशीलता का जन्म इस भूमि म नहीं हुआ। इन प्रमुख घटनाओ के बाद देश की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और विस्थापितों की समस्या उठ खडी हुई। देश के विभाजन से, साम्प्रदायिक झगडो से—पुन स्वतन्त्रता की प्राप्ति का आनन्द दुखद हो गया किन्तु ये परिस्थितियां भी व्यक्ति म सघष से पलायन उदासी तथा निराशा के बीजो का वपन करने वाली नही रही। देश की स्वतन्त्रता पर कवियो ने अपनी प्रसन्नता का अर्घ्य चढाया और जब बापू का हत्याकाण्ड हुआ तो श्रद्धाजलियां चढाई गइ। निश्चित ही बापू की हत्या मानवता और देश की आत्मा की हत्या थी, पर शोक-विह्वल उद्गार ही कवियो के मुख स उदगीण हुए, प्रयोगशीलता की मनोवत्ति उत्पन्न नहीं हुइ। इसके बाद पचशील का सबल लेकर भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रभुत्व-यात्रा का अभियान प्रारम्भ हुआ जिसका उपसहार भारत-चीन सीमा युद्ध के रूप म हुआ। यह कोई भी नही मान सकता कि देश की पचशीलता हिन्दी काव्य म प्रयोगशीलता का पर्याय बन गई है ? फिर इस आन्दोलन के प्रेरणा-स्रोत कहा हैं ? जब परिस्थितियां अनुवर थी, तो यह कसे फूला फला ? क्या समाज की मन स्थिति के प्रति [illegible] यह वस्तु लाद दी गई है ?

इस सदभ म प्रयोगवादी मूक नही हैं। उनका कथन है कि द्वितीय महायुद्ध का वरदान विश्व को अन्तरसघष के रूप म मिला। ज्ञान विज्ञान क विकास से समाज म बौद्धिकता आई वयक्तिक चेतना के अतिरेक ने उन्हें आत्मकेन्द्रित बना दिया, अणु बम्बो की भाति व्यक्ति म व्यक्तित्व का भी विखण्डन हुआ और सश्लिष्टता टूटकर बिखर गई। जीवन की अनवरुद्ध धारा खण्ड-खण्ड हो गई। व्यक्ति क्षण क सुख म ही

परमता की अनुभूति करने लगा, जीवन के संघर्ष ने उनकी भावनाओं और संवेदना पुंजों को सुखा दिया और वह बौद्धिक हो गया, जीवन की असफलताएँ, निराशाएँ, कुण्ठा और अतृप्तियाँ—बढती गईं इन्हें वाणी देने के लिए नये प्रयोग वांछित थे, अतएव समीक्षकों के विरोध करते हुये भी प्रयोगवादी काव्य रचा गया, जिसमें उपर्युक्त सारी वस्तुएं प्रतिबिम्बित हुईं ।

निश्चित ही स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारा जीवन अधिक उलझा है क्रिया व्यापारों में भी कुछ विखराहट आई है, अन्तरसंघर्ष और बौद्धिकता भी किंचित बढ़ी है, पर इतनी नहीं कि उसमें अकेले ही एक साहित्यिक आन्दोलन के प्रवर्तन करने की शक्ति हो। आज का समाज छायावादी या प्रगतिवादी समाज से निश्चित कुछ अधिक प्रबुद्ध है, मँहगाई, बेकारी खाद्य समस्या, उत्तरदायित्व हीनता बढती हुई जनसंख्या आदि के कारण उसमें जटिलताएं भी आ गई हैं, उनके व्यक्तित्व भी अशांत संघर्ष की ज्वाला में पिघले हैं पर आज भी उसमें वह मनोवृत्ति नहीं जो इस युग के काव्य की है। प्रगतिवादी युग में कवि और जनता अनुभूति और अभिव्यंजना के एक पथ से गुजर रहा था पर आज काव्य जन संवेदना और अभिव्यंजना दोनों ही उपकूलों पर समाज से पृथक होकर चल रहा है। समाज ने उसका बहिष्कार भी किया उपेक्षा और निंदा भी की पर कवियों के साहसिक प्रयास बन्द नहीं हुये। यह दूसरी बात है कि प्रयोगवाद की प्रयोगशीलता अब जन संवेदना के निकट आती जा रहा है।

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा इस संदर्भ में मनुष्य मनोवैज्ञानिक संक्रमण के कारण सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन की बातें करते हैं और इन्हें ही प्रयोगवादी काव्य के मूल प्रेरणा स्रोत मानते हैं किंतु महासमरोत्तर ये स्थितियां जितनी पश्चिमी संसार के लिये सत्य हो सकती हैं उतनी भारतीय समाज के लिये नहीं वस्तुतः प्रयोगवादी कवि कुछ तो स्वयं संत्रस्त रहे हैं और कुछ मात्रा में उन्हें पाश्चात्य कलावादी आंदोलनों का सहारा मिल गया अतः वे इस दिशा में विशेष सक्रिय हो उठे।

इस पुस्तक के परिशिष्ट में संक्षेप में उन पाश्चात्य काव्य प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिनसे हिन्दी के प्रयोगवादी नये कवि, अकवि आदि विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं।

प्रथम तार सप्तक

प्रयोगमूलक दृष्टिकोण

[१] वैयक्तिक कुण्ठायें

प्रथम तार सप्तक (१९४३) के प्रथम कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपने प्रेरणा स्रोतों को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"जीवन में निम्न मध्यवर्गीय

मास्टरी पल्ने मे पडी है। — मेरे बाल मन की पहली भूख सौन्दय और दूसरी विश्व मानव का सुख दुख–इन दोनो क सघष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी। मेरी हर विकास स्थिति म मुझे घोर असतोष रहा है। मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व मे बद्धमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूँ कि जिस क्षेत्र मे भी मैं हू वह स्वय अपूण है और उसका ठीक ठीक प्रगटीकरण हो नहीं हो रहा है। फलत गुप्त अशान्ति मेरे मन के अन्दर घर किये रहती है।'

[२] बेचैन मन की अभिव्यक्ति

इस प्रसग म मुक्ति बोध जी का कथन है कि 'मेरी ये कवितायें अपना पथ ढूढने वाले बेचैन मन की अभि यक्ति है। उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन स्थिति म छिपा है।'

उपयु क्त उद्धरणो को पढकर यह अच्छी तरह से देखा जा सकता है कि प्रयोग वादी काव्य की रचना के निगमन स्रोत कहा हैं—देश की समसामयिक परिस्थितियो म या कवि विशेष के वयक्तिक जीवन म। और इन निजी जीवन की अशान्त, निराश उदास परिस्थितियो म किस प्रकार के उदात्त काव्य की सजना सम्भव है।

[३] जीवन परिपाटियो मे घोर वैषम्य

प्रयोगवाद के सूत्रो के सकलनकर्ता 'अज्ञेय' का दृष्टिकोण भी इस सन्दभ म देख लेना आवश्यक है। वे यह मानकर चलते हैं कि पहले 'काव्य एक छोटे से समाज की थाती थी। उस समाज के सभी सदस्यो का जीवन एक रूप होता था, अत उनकी विचार सयोजनाओ के सूत्र भी बहुत कुछ मिलत जुलते थे कोई एक शब्द उनके मन मे प्राय समान चित्र या विचार या भाव उत्पन्न करता था। आज काव्य के पाठको की जीवन परिपाटियो म घोर वैषम्य आ गया है। एक ही सामाजिक स्तर के दो पाठको की जीवन परिस्थितियां इतनी भिन्न हो सकती हैं कि उनकी विचार सयोजनाओ म समानता हो ही नही। ऐसे शब्द बहुत कम हैं जिनम दोनो के मन मे एक ही प्रकार के चित्र या भाव उदित हो। यह आज के कवि की सबस बडी समस्या है। साधारणीकरण और कम्यूनिकशन (निवेदन) की समस्या है। और कवि को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करन वाली सबसे बडी शक्ति यही है।"

[४] भाषा की अपर्याप्तता

इस प्रसग म अज्ञेय जी का कथन है कि—"भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम सकेतो से अको और सीधी–तिरछी लकीरो छोटे बडे टाइप से, सीधे और उलटे अक्षरो से लोगो और स्थानो के नामो से, अधूरे वाक्यो से सभी प्रकार के इतर साधनो से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई सवेदना की सृष्टि को, पाठकों तक अक्षुण्य पहुँचा सके।"

[५] उलझी हुयी संवेदनायें

अपने जीवन की उलझी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में कवि को पूरी सफलता नही मिली– जहा वह पाठक के विचार संयोजक सूत्रों को नही छू सका, वहा उसे पागल, प्रलापी समझा गया या अर्थ का अनर्थ पा लिया गया। बहुत से लोग इस बात को भूल गये कि कवि आधुनिक जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है—भाषा की क्रमश संकुचित होती हुई सत्ता को केंचुल फाड़कर उसमे नया अधिक व्यापक अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है–और अहंकार के कारण नही इसीलिये कि उसके भीतर इसकी गहरी माग स्पंदित है इसलिये कि वह व्यक्ति सत्य को 'व्यापक सत्य' बनाने का सनातन उत्तरदायित्व अब भी निभाना चाहता है।'

[६] जीवन की जटिलता

उन्होने भाषा समस्या को आधार बनाकर इस क्षेत्र म व्याप्त अस्पष्टता दुर्बोधिता आदि के विषय म भी अपना वक्तव्य देते हुये कहा कि 'जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने वाले कवि की भाषा का किसी हद तक गूढ अलौकिक' अथवा दीक्षा द्वारा गम्य (Csoteic) हो जाना अनिवार्य है किंतु वह उसकी शक्ति नही विवशता है धर्म नही आपद्धर्म है। इनस कोई पूछे कि कवि अपनी विशेषताओ को क्या समझ पाये है? यदि समझ गय है तो वे क्या नही स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करते, क्यो नहा अपने अनुभूत सत्य को स्पष्ट रूप स व्यापकता म ढालते। जटिलता को जटिल अलौकिक रूप म प्रस्तुत करना-कवि धर्म न हैं यह उनकी विवशता नही, दृष्टि बोध की कमी है फिर जटिलताए भी क्या हैं, जरा उनका भी स्वरूप उन्ही के शब्दो म देखिए—

[७] यौन वर्जनायें ✓

✓ आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओ का पुंज है। आज के मानव का मन यौन कल्पनाओ स लदा हुआ है और सब कल्पनाय दमित और कुंठित हैं। उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं। और इस आंतरिक संघर्ष के ऊपर जैसे काठी कसकर एक बाह्य संघर्ष भी बैठा हुआ है जो व्यक्ति और व्यक्ति का नही व्यक्ति समूह और व्यक्ति समूह का वर्गों और श्रेणियो का संघर्ष है। व्यक्तिगत चेतना के ऊपर एक वर्गगत चेतना भी लदी हुई है और उचितानुचित की भावनाओ का अनुशासन करती है जिसस एक दूसरे प्रकार की वर्जनाओ का पुंज खड़ा होता है और उनके साथ ही उनके प्रति विद्रोह का स्वर जागता है।'

यह वक्तव्य युग के अंतश्चेतन के विश्लेषण की छाया है। अज्ञेय जी के अनुसार यौन पुंजों और वर्गचेतना के संघर्ष की जटिलता ही व्यक्ति का सत्य है। उनके ही शब्दों म कवि का यह कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है। यह भी कहना ठीक

होगा, कि वह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं, व्यापक है और जितना ही व्यापक है उतना ही काव्योत्पादकारी है।" जब अज्ञेय जी की दृष्टि से दमित कुण्ठित काम वासनाओं की 'सामूहिक अचेतन' से संघर्ष की जटिलता को ही जटिल, दुर्बोध, अलौकिक वाणी मे प्रकट करना—कवि धर्म है तो इस संदर्भ मे मुझे कुछ नहीं कहना।

[८] प्रगतिशीलता का काव्य

यहाँ हम अज्ञेय जी की एक प्रयोगवादी कविता प्रस्तुत कर रहे हैं जो उनके कवि सत्य की हमें सही सही सूचना देगी जिसकी वे इतनी वकालत कर रहे हैं। इस प्रसंग मे उनकी 'धैयधन गम्हा वाली कविता बहुत उद्धृत की जाती है किंतु 'बाहु मेरे रुके रहे' शीर्षक रचना भी क्या बुरी है—इसमे उनका 'सुरति श्रम'[1] देखिए—

> किसी सूनी वाटिका की दूब से आवृत
> विस्मृता सी, स्मरण की नीरव उसासों के सिरिस से
> परस से भी सिहर सकुचाती
> वीथिका के उभय तट मालंच से अवलम्बिता
> दो लताओं के प्रलम्बित अंकुरों से
> प्राण दोनों के
> व्यथ करके शब्द का नादाय को स्वर को
> भूलकरके प्रस्फुरन, विकसन, फलागम
> अहेतुक आश्वासना से
> बस, झुके रहे।
> बाहु मेरे घेर कर तुमको रुके रहे।

यहाँ साधारण शब्दों और प्रतीकों के प्रयोग में कवि की विवशता देख लीजिए यदि वह ऐसा करता तो लोग उसकी काम-कुंठाओं का समझ लेते और समझ लेते तो जटिलता कहां रहती? आधुनिक जीवन में उसका रहना परमावश्यक है। केवल इसलिए अज्ञेय जी ने यहाँ श्रमसाध्यता के द्वारा, नये प्रतीक शब्दों और पदों को गढ़ कर अपने कवि-सत्य की रक्षा की है। यही उनका साधारणीकरण प्रेषणीयता और कम्युनिकेशन का रहस्य है। इसी संग्रह में कुछ ऐसे कवि भी हैं जिन्हें यह कवि—सत्य, और सत्य इष्ट नहीं। जो इस प्रकार के काव्य को या तो उच्छ्वास कहते हैं या Patterns, जो जीवन की प्रगतिशीलता में आस्था रखते हैं और उसका अर्थ-कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता में देखते हैं व्यक्तित्वहीनता में नहीं जिन्हें मनुष्य के मानवीय रूप से प्रेम है पशु रूप मे नहीं। जिनमें जीवन की भौतिक परिस्थितियों

---

१ हम लोगों का एक मात्र श्रम है—सुरतिश्रम,
उस अन्त्यज का एक मात्र सुख है—मैथुन सुख—'वर्ग भावना'

और मन स्थितियों को मोडने और उनसे ऊपर उठने की शक्ति है, उनमे रमने की विवशता और अशक्तता नहीं जो जीवन की जटिलताओं को खुलकर कहते हैं उन पर अस्पष्टता का चिलमन नहीं डालते जो ऊपरी अहमन्यता का सच्चा स्वरूप जानकर पुकारकर कहते हैं—

अपने मन का पहचान गया है वह स्वरूप
लगता है कितना ओछा अपना क्षुद्र प्यार
कितना दुबल बोना है अपना अहकार ।

—नेमिचन्द्र ममता के बधन ।।

नेमिचन्द्र भारत भूषण अग्रवाल प्रभाकर माचवे, गिरजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा इसी श्रेणी के कवि हैं। नेमिचन्द्र जी का कथन है कि जिस दिन कवि सचेष्ट भाव से अपनी चेतना को पूर्णरूप से सामाजिक बना सकेगा, उस दिन कविता फिर अपने प्राकृत रूप मे निखर उठेगी। भारत भूषण अग्रवाल केवल मार्क्स वाद को ही उन्नति का रहस्य मानते हैं किन्तु उन्होने अपने को स्वप्नदर्शी और पला यनवादी कहा है। उन्होने लिखा है कि ससार को सच्चा मानकर उसम कम करना क्योकि वास्तविक क्षमता और सामर्थ्य का अपेक्षा रखती है, इसलिए मैंने कवितायें लिखकर माना स्वप्न म अपनी अभिलाषायें पूरी की और ससार को मिथ्या सिद्ध किया। कम से पलायन ही मेरी कविता का स्पदन रहा। आपकी प्रयोगशीलता का एक उदाहरण यहा दिया जा रहा है—

नव विचार, नव भाव रीति,
नित–नित नवीन जीवन के स्वर
पर प्राचीना अब भी है वाणी की वीणा
इतना ही नहा—
अप्सरा बना डाली तूने
षोडश–वर्षीया रूपवती वह पढी लिखी लडकी पागल
तू सुनता रहा मधुर नूपुर ध्वनि
यद्यपि बजती थी चप्पल ।

— अपने कवि से'

[९] भाषा की अनगढ प्रयोगशीलता

उपर्युक्त कविता म आधुनिक अंधी प्रगतिशीला पर व्यग्य है। 'वाणी की वीणा' अच्छा प्रयोग है किन्तु इसकी तुलना मे 'मधुर नुपुर ध्वनि को चप्पल ध्वनि मे सुनना सुरुचिपूण नही है। विशेषता यह है कि अस्पष्टता, दुर्बोधता भावाभिव्यक्ति मे जटिलता कहीं नही मिलती। यही वस्तु प्रभाकर माचवे की रचनाओ म मिलती

हैं। वे 'कविता और पाठक के बीच में सीधा भाव विनिमय' मानने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार "व्यक्तिगत जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते हैं जो अत्यधिक सामाजिक आशय से गर्भित रहते हैं। उनमें मानव और प्रकृति, प्रकृति और संस्कृति के सतत संघर्ष के गति चित्र ऐसा अशावन होता है कि उसकी पुनरावृत्ति असम्भव है। कविता गत मौलिकता का अर्थ यहां अशावन है। वह अशावन है सामाजिक परिपार्श्व में व्यक्ति की मानसिक प्रभाव प्रक्रिया वेदना-संवेदना, प्रगति-अगति आदि का प्रामाणिक बिम्ब-चित्रण।' शब्द-शक्तियों में अभिधामूलक लक्षणा की अपेक्षा वे व्यंजना शक्ति पर विशेष आस्था रखते हैं। भाषा में नये प्रयोगों के वे समर्थक हैं और इस क्षेत्र में 'निराला', 'नवीन' तथा नरेन्द्र शर्मा को अपना आदर्श मानते हैं। व्यंजना शक्ति को महत्ता तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाकर चलने के कारण आपने व्यंग्यों की रचना में विशेष सफलता प्राप्त की है—'दशोद्धारकों से' शीर्षक रचना का कुछ अंश उदाहरण रूप में यहां देखिए—

> बाहर अर्ध नग्न पीड़ा
> भीतर क्रीड़ा लवरेज हरम
> करुणा के आंगन में नेता
> दे थोड़ी सी भेज शरम।

यहां 'करुणा के आंगन में थोड़ी सी शर्म' भेजने का नवीन शोभन, संवेद्य और प्रगतिशील प्रयोग है। पर सामान्य रूप से भाषा-योजना अनगढ़ ही है।

[१०] हल्के रंगों के आवरण से युक्त चित्र विधान

गिरजा कुमार माथुर वस्तु विधान की अपेक्षा टेक्नीक को विशेष महत्व देकर चलते हैं। प्रथम तार सप्तक के कवियों में शिल्प योजना पर इन्होंने ही गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। स्वयं अपने चित्र विधान की विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए आपने लिखा है कि "वातावरण के चित्रण में मैंने डिटेल (Detail) में रंगों का आधार विशेष रूप से रखा है किन्तु मैं चित्र को सदा हल्के रंगों की छांहों के आवरण में लिपटा पसंद करता हूं क्योंकि यथार्थ चित्र के सभी डिटेल मैं कला की दूरी से देखता रहा हूं। मेरा यह विश्वास है कि अत्यधिक गहरे रंगों का प्रयोग कला में प्राचीनता (Mediaeval Frait) का द्योतक है। क्लासीकल विषयों पर गम्भीर शैली (Grand Style) में लिखी कविताओं में मैंने गहरे रंग प्राचीनता लाने के लिए रखे हैं। यहां मैंने आधारभूमि विशालकाय कर दी है और डिटेल कम। डिटेल मैंने रोमानी कविताओं में ही अधिक भरे हैं।

माथुर जी ने शब्द-योजना पर भी प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वे रोमानी कविता को हिन्दुस्तानी के छोटे और मीठी ध्वनि वाले शब्दों में लिखना पसन्द करते हैं और क्लासीकल कविताओं में आर्यगुण (Aryanism) लाने के लिए

और गंभीर ध्वनि वाले शब्द रखते हैं। इस प्रकार वे शब्द विन्यास के वातावरण को रूप भावानुकूल बनाने के पक्ष में हैं।

यहाँ हमने एक विशेष अभिप्राय से उनकी चित्र और शब्द विधान सम्बन्धी मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। वह अभिप्राय कवि की प्रयोगमूलक दृष्टि से अनुबंधित है। वह नये प्रयोग न केनवादियों की भाँति अनगढ़ या मात्र प्रयोगों के लिए न करके वस्तु व्यंजना के परिवेश और प्रकृति को व्यंजित करने के लिए ही करता है। इस भूमिका पर माथुर जी ने जितने भी नये प्रतीक बिम्ब या शब्द प्रयोग किये हैं, वे विशेष रूप से मार्मिक और रोचक हैं।

यह फूल चाँदनी, रूप प्यार
आँसू के अनगिन ताजमहल
रागों की ठहरी गूँज
असम्भव सपनों की सुन्दर मिठास
स्रष्टा तक मिटना कलाकार मिटने से
पर गीतों के इन पिरामिडों
इन धौलागिरि सुमेरुओं पर
मिट जाती स्वयं मृत्यु आकर।

~ अधूरा गीत।

यहाँ इस प्रगीत में आँसू के अनगिन ताजमहल रागों की ठहरी गूँज गीतों के पिरामिडों धौलागिरि सुमेरुओं पर मृत्यु का मिटना सुन्दर मिठास आदि नवीन सार्थक और सुन्दर प्रतीक प्रयोग हैं। ये अपनी संकेतमयता, प्रकृत और ऐतिहासिक विशेषताओं से अधूरे गीत की अक्षमता को विज्ञापित करने में समर्थ हैं। इसी प्रकार उनके अन्य प्रगीतों में वायु की सांसों भरी एकांत खिड़की 'रातों जगा सूना पलंग' ठंडा दीप—कवि की मन स्थिति की उदासी निराशा व्याकुलता स्मृति विरह दग्धता आदि संचारियों की सूक्ष्म अभिव्यंजना में सुदक्ष हैं। ऐसे प्रयोग हमें माथुरजी के पहले प्रगतिवादी और छायावादी कवियों में भी नहीं मिलते।

[११] मुक्त छंद का नया तंत्र

यहाँ हम श्री माथुर जी के मुक्त छंद सम्बन्धी विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं। उन्होंने लिखा है कि मुक्त छंद का मने सम्पूर्ण विधान रचा है। मुक्त छंद को दो भागों में विभक्त किया है—वर्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपान्तर। वर्णिक में मैं कवित्त के विरामों को उनके रूपान्तर सहित लेकर चला हूँ। यह आवश्यक नहीं रखा कि कवित्त के पूर्ण विरामों पर ही पंक्ति समाप्त हो अपितु अर्ध विराम भी शुद्ध माने हैं जब तक वे अनुच्चरित वर्ण (Unaccented Syllable) पर समाप्त

न होकर उच्चरित (Accented) पर समाप्त होते हों। इस भांति कवित्त के विरामों को लेकर कितने ही प्रकार की मुक्त छन्द पंक्तियाँ निर्मित की हैं। सवय के विरामों पर स्थित एक नये प्रकार का बहुत संगीतमय मुक्त छन्द लिखा है—(आज है केसर रंग रंग का)। एक कविता में एक प्रकार का मुक्त छन्द प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हूं। यदि उच्चरित वर्ण विन्यास (Syllable) से पंक्ति आरम्भ हुई तो समस्त पंक्तियाँ उच्चरित से ही प्रारम्भ होनी चाहिए। विरामान्त पंक्तियों में यह नियम अनिवार्य कर दिया है। धारावाहिनी पंक्तियों में भी प्रथम पंक्ति का अर्ध विराम द्वितीय पंक्ति में लेने का नियम रक्खा है। पंक्तियों के विरामों की ध्वनि मात्रायें पूर्णतः सम एवं शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक समझता हूं। इन नियमों के विरुद्ध लिखा गया मुक्त छन्द अशुद्ध मानता हूं।

इस लम्बे उद्धरण को हमने केवल यह प्रदर्शित करने के लिए उद्धृत किया है कि प्रयोगवादी कहे जाने वाले कवि मुक्त-छन्दों का सचेष्ट प्रयोग करते हैं। इस सम्बन्ध में वे अपने पहले से कतिपय विशिष्ट नियम बनाकर चलते हैं। तात्पर्य यह कि इनके छन्द भावनाओं के सांचे में ढले न होकर पहले से निर्धारित नियमों के अनुसार बने हैं। माथुर जी ने अपने मुक्त छन्द के तन्त्र में ही कविताएँ ढालने का प्रयास किया है अर्थात् छन्द प्रमुख और वस्तुगत संवेदनाएं गौण हो गई हैं। ऐसा सर्वत्र हुआ है ऐसा मेरा न तो कहना है और न दुराग्रह ही है, कहीं कहीं ऐसा अवश्य हुआ है और माथुर जी अपने मुक्त-छन्द विधान के सकल्पबद्ध आग्रह में मूल वस्तु की उपेक्षा कर बैठे हैं। इस प्रकार प्रथम तार सप्तक में सबसे अधिक काव्य कला-पक्ष की बारीकियों पर माथुर जी ने ही ध्यान दिया है।

(१२) नान सीरियस

तार सप्तक के छठे कवि रामविलास शर्मा हैं। आप पहले प्रगतिवादी समालोचक हैं बाद में इसी काव्य धारा के एक कवि। आपकी सारी कविताएँ पढ़ने पर कवि का आत्म कथन सिद्ध हो जाता है कि 'वह इन कविताओं की रचना में 'सीरियस नहीं रहा'। इस संग्रह में संकलित प्रायः सभी कविताएं प्रगतिवादी हैं। 'जिनमें कहीं कवि क्रांति या कमेत काटने का स्वप्न देखता है (काय क्षेत्र) और कहीं जन सत्ता की विशाल नगरी निर्माण करने का उद्‌बोधन देता है (कवि)। चांदनी, 'प्रत्यूष के पूर्व' 'कतकी' मिलहार' 'गुरुदेव की पुण्य भूमि में' आदि रचनायें वर्णनात्मक है। ये सामान्य हैं, विशेषता कुछ नहीं है। 'सत्य शिव सुन्दरम्' में मार्मिक व्यंग्य है। इसी में इंकिलाब जिन्दाबाद, वंदेमातरम् और हाथी घोड़ा पालकी जय कन्हैयालाल की जैसी व्यंग्य और हास्य परक पदावली का प्रयोग किया गया है। परिणति में कवि ने दुःख की प्रत्येक अनुभूति में आत्मा का बोध किया है और 'हड्डियों का ताप',

किसान कवि तथा उसका पुत्र' समुद्र के किनारे आदि रचनाओं में यह विनापित किया है कि दुःख के इस कोलाहल में जय का स्वर ही ऊँचे उठ रहा है सागर की प्रत्येक लहर सीमा के बंधन तोड़ रही है। उनकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

दुख के इस हहर हहर में भी
ऊँचा उठता है जय का स्वर,
सीमा के बंधन तोड़ रही है
सागर की प्रत्येक लहर।

शर्मा जी की सभी रचनायें विचार प्रधान हैं और उनके प्रगीतों में प्रगतिवादी भावात्मकता भी निहित है। वर्तमान जीवन के प्रति असंतोष और भविष्य में आस्था के स्वर ही प्रमुखतः उनके प्रगीतों से मुखरित होते हैं। प्रगतिवादी चेतना और काव्य के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है अतएव यहाँ उसकी पुनरुक्ति करना दोष माना जायगा।

इस सप्तक के अंतिम कवि अज्ञेय हैं। आपके विषय में कुछ चर्चा हम प्रारम्भ में कर चुके हैं। प्रारम्भिक कवि मुक्तिबोध और अंतिम अज्ञेय—दो ही इस संग्रह के ऐसे कवि हैं जिन्हें हम प्रयोगशील कवि कह सकते हैं। शेष सभी प्रगतिवादी मनोदृष्टि को लेकर चलते हैं।

(१३) प्रयोगवाद एक अयोजनाबद्ध आंदोलन

हिन्दी साहित्य में जो यह प्रवाद चल पड़ा है कि प्रथम तार सप्तक से प्रयोगवाद का प्रारम्भ हुआ, यह मिथ्या है। वस्तुतः अज्ञेय जी इस प्रकार की रचनाओं के सूत्रधर्ता हैं। आरम्भ में उनका इस प्रकार का कोई दृष्टिकोण भी नहीं रहा। द्वितीय तार सप्तक की भूमिका में उन्होंने जिस बात पर सबसे अधिक घुमा फिराकर चर्चा की है वह यही है कि प्रयोगवाद के प्रवर्तन का दोष मेरे मत्थे मढ़ना मेरे साथ अन्याय करना है मैंने उसका प्रवर्तन नहीं किया। हम भी यह स्पष्ट रूप से मानते हैं कि योजनाबद्ध रूप से अज्ञेय जी ने प्रयोगवाद का प्रवर्तन नहीं किया। वस्तुतः १९३६ ई० में जब लंदन में अतियथार्थवादी चित्रों की प्रदर्शनी हुई थी उसकी चर्चा विश्व स्तर पर समाचार पत्रों में भी हुई थी उसी समय के आस पास नलिन विलोचन शर्मा ने प्रतीक बहुल कुछ रचनायें लिखी थीं। धीरे धीरे प्रतीकों की बहुलता के प्रति नये कवि आकृष्ट हुए और वे पाश्चात्य अत्याधुनिक विचारधाराओं से प्रभावित रचनायें लिखने लगे। इस कार्य में उनके वैयक्तिक जीवन की असंतोष पूर्ण मनःस्थिति निराशा उदासी और अतृप्तियों ने भी योग दिया, फलतः जिन प्रतीकों का उन्होंने प्रयोग किया वे बौद्धिक अस्पष्ट और यौन भावनाओं से सम्बंधित हो गये। इस प्रकार की अन्वेषणशीलता और प्रयोगमूलकता अज्ञेय जी

तथा मुक्ति बोध जी के काव्य म पहले अधिक दिखाई दो, अतएव इनके माध्यम से प्रयोगवाद का प्रवतन भले न हुआ हो पर सूत्रपात अवश्य हुआ है जिसे कोई अस्वीकार नही कर सकता।

प्रथम तार सप्तक हिन्दी साहित्य म विशेष चर्चा का विषय रहा है और अज्ञय जी के काव्य को दखकर लागा न इस प्रयागवाली मनावत्ति की तीव्र निंदा और विरोध किया है। अनय जी न इसीलिए द्वितीय तार सप्तक की भूमिका मे लगाय गय प्राय सभी आरोपो का खण्डन करक अपनी सफाई पश की है।

दूसरा सप्तक (१९५१ ई०)

[१४] प्रयोगवाद आत्म सत्य का अ वेषण

प्रयोगवाद के सदभ म अज्ञेय जी कहते हैं कि प्रयोग का कोई वाद नही है। हम वादी नही रहे नहीं है। न प्रयोग अपन आप म इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नही है कविता भी अपने आप मे इष्ट या साध्य नही है। अत हम प्रयोगवादी' कहना उतना ही साथक या निरथक है जितना हमें कवितावादी कहना[1]। 'उनका कहना है कि कवि आत्म सत्य का अन्वेषी है, कविता आत्माभिव्यक्ति करन का माध्यम है। इस माध्यम को अपनी आवश्यकता के अनुरूप श्रेष्ठ रूप मे प्रयुक्त करने का उसे पूरा अधिकार है। वे यह भी कहते हैं कि बिना माध्यम की विशेषता उसकी शक्ति और उसकी सीमा का परखे और आत्मसात किए उस माध्यम का श्रेष्ठ उपयोग हो ही नही सकता[2]। उपयुक्त दोना वक्तव्य ही ऐसे हैं जिनस साहित्यिक जगत म मतभेद नही रखा जा सकता। कविता का कोई वाद नही होना, यह बात भी सच है और वह माध्यम है, इस भी स्वीकार करने म हिचक नही होनी चाहिए पर प्रश्न यही समाप्त नहा हो जाता। कविता का लोकरजनकारी स्वरूप भी कुछ होता है। वयक्तिकता और प्रतीक बहुलता उसके निरय लक्षण नही उसका अस्तित्व कवि सापेक्ष न होकर जन-सापेक्ष है, अतएव कविता रूपी माध्यम एसा हो जो मूल वस्तु को आवत न करके उस स्पष्टतापूवक और सुगम रीति स पाठका तक पहुँचा सके। अज्ञेय जी इस पक्ष की ओर दृष्टिपात नही करत जबकि उनकी आलोचना का दृष्टिकोण उनक काव्य का यही पक्ष विशेष रहा है।

[१५] परम्परा एक गहरा सस्कार

परम्परा की चर्चा करते हुए अज्ञेय जी कहत हैं कि 'जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिए परम्परा की दुहाई देत हैं, वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा, कम से कम कवि के लिए, कोई ऐसी पोटली बाधकर अलग रखी हुई चीज़ नही है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले। (कुछ आलोचका के लिए भले ही

१ दूसरा सप्तक, भूमिका पृ० ६।

२. तदेव।

वैसा हो ।) परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नही है, जब तक वह उसे ठोक बजाकर तोड मरोडकर देखकर आत्मसात नहा कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा सस्कार नही बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर उसका निर्वाह करना आवश्यक न हो जाय । कवि तो निरकुश होते हैं वे स्वय अपनी लीक और परम्परा का स्वय निर्माण करते हैं यह एक सामान्य तथ्य है । परम्परा एक जड नही समाज के साथ क्रियमाण वस्तु है। प्रश्न पुरानी परम्परा के त्याग से उतना सम्बन्धित नही है जितना नई बनने वाली परम्परा के समाज द्वारा ग्रहण से अनुबन्धित है । कोई भी चार कवि या साहित्यिक मिलकर नई परम्परा का निर्माण नही कर सकते, नई परम्परा वह है जो जनता द्वारा आत्मसात कर ली जाय यदि वह जन सामान्य के द्वारा समर्थित और गृहीत नही होती तो वह वयक्तिक विचार धारा ही सकती है परम्परा का स्वरूप धारण नही कर सकती । यहाँ कई प्रश्न एक साथ उठाये जा सकते हैं । क्या सामान्य जनता को नई सस्कृति का प्रतिमायक माना जा सकता है ? सामान्य जनता का अर्थ क्या है ? क्या यह सम्भव नही है कि तत्कालीन समाज नयी परम्परा को न समझ सके पर कुछ समय मे लोग अपने सस्कारो का परिमार्जन करके उसे ही मान्यता देने लगें ? इस प्रश्न को अज्ञेय जी ने भी उठाया है और छायावाद के उदाहरण दिया है । अपने प्रौढ और वयस्ककाल मे छायावादी काव्य जनता द्वारा गृहीत नही किया गया किन्तु वही काव्य आज महत्वपूर्ण और अपूर्व माना जाने लगा है । क्या प्रयोगवादी काव्य के विषय में भी यह बात सत्य नही हो सकती ? इस अंतिम प्रश्न पर हम किंचित गहराई मे जाकर विचार करेंगे । छायावाद का प्रमुख विरोध हुआ था उसकी छन्दगत स्वच्छन्दता, परम्परा से हीन अप्रस्तुत योजनाओं तथा नूतन पदावलियो के कारण । विरोध कर्त्ताओ म द्विवेदी युगीन सस्कारों के व्यक्ति और आचार्य थे । वे काव्य को उपयोगितावाद की कसौटी पर देखना चाहते थे पर छायावाद म भावात्मक सौन्दर्य का निरूपण प्रमुख माना गया था स्थूलता का परित्याग करके सूक्ष्मता वायवीयता और मानवीकरण की प्रवत्तियो के साथ आत्माभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया गया था । एक दृष्टि से काव्य के वस्तु और शिल्प दोनो ही परम्परागत पक्षों का छायावादी काव्य मे कायाकल्प हुआ पर क्या उसकी मूल भवदशा बदली ? परम्परासिद्ध भावात्मकता के स्थान पर कोई अन्य वस्तु आई ? उत्तर है नहीं । पात, और शाखायें बदली हैं पर जो मूल वस्तु रसात्मकता है उसका तिरोभाव कभी नहीं हुआ ।

[१६] बुद्धि रस

प्रयोगवादी रसात्मकता की जगह बुद्धि रस की अनोखी बात करते हैं । बुद्धि रस की आस्वादनीयता के लिए अभी तक हमारे सस्कार नही बने, हो सकता है आगे

बन जाय या स्वय यह विम्त जन निरपेक्ष होकर मर जाय, जो कुछ भी हो, जब तक हमारे सस्कार नही बदले, जब तक हम प्रयोगवादी काव्य पठन से किसी प्रकार का आह्लाद प्राप्त नही होता, एक बार से द्वितीय बार पठन की इच्छा नही होती, तब तक तो हम इस विलक्षण वस्तु का विरोध निस्सकोच भाव से कर सकते हैं। जहा तक इसके वस्तुगत और कलागत उपकरणो का प्रश्न है यदि इनमे किंचित भी सवेदनशीलता है अथ स्फीति का सामर्थ्य और श्लीलता है, तो हम ऐसे प्रयोगो का सहृय स्वागत करेंगे। हम अज्ञेय जी के इस कथन से पूणत सहमत है कि "प्रयोग निरन्तर होते आये हैं और प्रयोगो के द्वारा ही कविता या कोई भी कला, कोई भी रचनात्मक काय, आगे बढ सका है। किंतु यहा प्रयोग का अथ रचनात्मक काय से ही है, असफल प्रयोगो से नही सफल प्रयोगो से है जिसे स्वय अज्ञेय जी स्वीकार करते हैं। प्रयोगवाद का जब भी विरोध किया जाता है, तब उसके सफल प्रयोगो के कारण नहीं, प्रत्युत असफल प्रयोगो के कारण ही किया जाता है। १९४३ से १९५३ ई० तक प्रयोगवादी रचनाओ का प्रयोगकाल रहा है, जब असफल प्रयोग अधिक और सफल बहुत कम हुए है। १९५३ ई० के आसपास नयी कविता प्रयोगवाद की क्रोड से पन्न हुई जिसमे प्रयोगो का नयापन है किंतु उनमे साथकता अधिक असाथकता कम है। स्वय अज्ञेय जी के काव्य मे इस तथ्य के प्रमाण मिलते हैं। नयी कविता के समीक्षको तथा कवियो ने भी स्वय प्रयोगवाद की १० वष की यह जीवन यात्रा प्रयोगमूलक ही मानी है।

[१७] प्रयोग एक दुहरा साधन

अज्ञेय जी ने स्पष्ट लिखा है कि प्रयोग का हमारा कोई वाद नही है। प्रयोग अपने आप मे इष्ट नही है वह साधन है और केवल प्रयोगशीलता ही किसी रचना को काव्य नही बना देती। इसी और ऐसे कई आधारो पर वे अपने आपको 'प्रयोगवादी' कहलाना पसद नही करते। किंतु प्रयोगवाद नाम अब इतना अधिक साहित्य मे प्रचलित हो गया है कि कोई अब उसे मिटाना भी चाहे तो असम्भव है। फिर इस नाम की कुछ दूरी तक साथकता भी सिद्ध की जा सकती है। स्वय अज्ञेय प्रयोग को काव्य का दुहरा साधन' मानते हैं। उन्ही के शब्दो मे 'प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है, और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्ति कर सकता है। वस्तु और शिल्प दोनो ही क्षेत्र मे प्रयोग फलप्रद होता है। जब प्रयोग की इतनी अधिक महत्ता है तो निश्चित रूप से कवि को कवि सत्य जानने के पूर्व प्रयोग सत्य जानने वाला बनना पडेगा। इस तरह न सही 'प्रयोगवादी' पर प्रयोग की वस्तु ■ परिधि के बाहर वह नही जा सकता। प्रयोग से इसे मुक्ति नही, फिर वह प्रयोगवादी नही तो और क्या हुआ? केवल प्रयोगशीलता ही इन कवियो के काव्य

का सृजन भले न करे पर बिना प्रयोगशीलता के वे एक पग आगे भी नही बढ सकते। ऐसी स्थिति म उन्हे कोई प्रयोगवादी कहता है तो चिढना नही चाहिए। हम कुछ दूर तक ही अज्ञेय जी का यह कथन ठीक मानते हैं कि 'प्रयोगो का महत्त्व कर्ता के लिये चाहे जितना हो सत्य का खोज, लगन उसम चाहे जितनी उत्कट हो सहृदय के लिए वह सब अप्रासगिक है।' किंतु यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कवि सत्य का जानने का साधन होने क कारण प्रयोग तो इस काव्य की रचना प्रक्रिया का एक अभिन्न अग ही बन जाता है, सहृदय को भी पहले प्रयोग की आत्मा ही समझनी होगी तभी वह कवि सत्य क स्तर तक पहुँच सकता है, बिना प्रयोग को समझे कवि सत्य का आस्वादन सम्भव नही फिर गृहीता पक्ष म भी प्रयोगो का उपक्षणीय कस मान लिया जाय ?

अनेय जी प्रयोग का महत्त्व न देकर उसक द्वारा की गई शोधो के परिणाम को देते हैं। वे यह भी कहत हैं कि अभी हम अन्वेषी है कवि सत्य के खोजी हैं। उन्ही की इन उक्तियो को आधार बनाकर हम—यह निष्कर्ष सरलतापूवक निकाल सकते हैं कि उनके इस प्रारंभिक काव्य म कवि सत्य का अभाव है और—असफल प्रयोगो की अधिकता है कर्ता के लिये इनका जितना चाहे महत्व हो सकता है किंतु सहृदय के निकट ये सब अप्रासगिक है।

[१८] साधारणीकरण अन्तर्विरोध

अनेय जी साधारणीकरण का भी प्रश्न उठाते हैं और कहते है कि न केवल सप्तक के कवि उसे मानकर चलते हैं प्रत्युत इसी से प्रयोगो की आवश्यकता भी सिद्ध करते हैं। उन्होने लिखा है कि युग के साथ राग वही रहने पर भी रागात्मक प्रणालिया बदल गई हैं। उनकी दृष्टि से इसलिये आज साधारणीकरण की कवि क लिए महान समस्या है। या तो वह यह प्रयत्न ही छोड दे सीमित सत्य को सीमित क्षत्र म सीमित मुहावरे क माध्यम से अभिव्यक्त करे—यानी साधारणीकरण ता करे पर साधारण का क्षेत्र सकुचित कर दे—अर्थात एक अन्तर्विरोध का आश्रय ले या फिर वह वहत्तर क्षेत्र तक पहुचने का आग्रह न छोड और इसलिये क्षेत्र के मुहावरे से बधा न रहकर उससे बाहर जाकर राह खोजने का जोखिम उठाय। इस प्रकार वह साधारणीकरण के लिए ही एक सकुचित क्षेत्र का साधारण मुहावरा छोडने को बाध्य होगा—अर्थात एक दूसरे अन्तर्विरोध की शरण लेगा ?'—इसी द्वितीय—अन्तर्विरोध का वरण करना अनेय जी कवि के लिए आवश्यक मानते हैं। इसी का वे एक उदार और व्यापक दृष्टि भी कहते हैं। वस्तुत यह निरूपण एक काल्पनिक वस्तु है कवि के सामने यदि नय युग के अनुरूप कोई साधारणीकरण की समस्या है तो उस उ होने अपने दुर्बोध प्रयोगों के माध्यम से सुलझान की जगह उसे उलझाई ही ज्यादा है।

[१९] शब्द की नयी रागोत्तेजक शक्ति की खोज

वे भाषा के प्रश्न का भी छेड़ते हैं और कहते हैं कि निरंतर प्रयोग से शब्दों का 'चमत्कार मरता रहता है और उनका चामत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है। या यह कि कविता की भाषा निरंतर गद्य की भाषा होती जाती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार की सृष्टि की समस्या बनी रहती है—वह शब्दों को निरंतर नया संस्कार देता चलता है और वे संस्कार क्रमश: सार्वजनिक मानस में पैठकर फिर वैसे ही जाते हैं कि—उस रूप में—कवि के काम के नहीं रहते।' कवि नित्य नये शब्दों का प्रयोग करे, पर शब्द भी तो साधन हैं, उनका लक्ष्य चमत्कार की सृष्टि करना नहीं है जबकि प्रयोगवादी कवि शब्दों के साथ चमत्कारिक क्रीडा करते हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि 'जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागात्मक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। उस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुन: राग का संचार हो पुन: रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है। किंतु साधारणीकरण का यह भ्रामक निरूपण भी है। साधारणीकरण के लिए आवश्यक यह नहीं होता कि अनजान नये दुर्बोध प्रतीकों और नये अप्रस्तुतों की भीड़ खड़ी कर दी जाय यह कार्य बौद्धिक व्यायाम की जरूरत रखता है, जब तक उन प्रतीकों और नये प्रयोगों का अर्थ न समझ लिया जाय तब तक उनके साथ साधारणीकरण हो ही नहीं सकता इस प्रकार यहाँ साधारणीकरण भावात्मक नहीं प्रत्युत एक बौद्धिक प्रक्रिया हो जाती है। साधारणीकरण के लिए आवश्यक होता है कि प्रतीकों या नये प्रयोग सुपरिचित हों वे परम्परा से छिन्न भिन्न न होकर उससे अनुबंधित हों, वे वैयक्तिक न होकर सार्वजनिक हों बौद्धिक न होकर भावात्मक हों, तो उनके साथ जनता या सहृदय वर्ग जल्दी ही तादात्म्य स्थापित कर सकता है। सुगम गीतों तथा राष्ट्रीय गीतों में इसी प्रकार के उपमानों का प्रयोग आवश्यक होता है। इस तरह के परिचित उपमानों का प्रयोग नये परिवेश में होने के कारण उनमें आवृत्ति का प्रश्न नहीं उठता। हमारा यह कहना है कि काव्य में परम्परा से बाहर के एक भी उपमान न हों हम परम्पराबद्ध उपमानों का आग्रह भी नहीं करते सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि जिन नए प्रतीकों का प्रयोग किया जाय वे हमारे जीवन में चुने गये हों जिन्हें हम नित दिन देखते हैं जिनकी विशेषताओं से परिचित हैं। अपरिचित और दूर की कौड़ी को प्रस्तुत करने वाले बुद्धि प्रसूत प्रतीक साधारणीकरण में विघातक होते हैं।

[२०] विभाजित सत्य को समूचा देखने का प्रयत्न

आधुनिक युग की विशेषीकरण की प्रवृत्ति का जिक्र करके अज्ञेय जी ने कवि के लिए साधारणीकरण की समस्या को और अधिक जटिल बताया है। उन्होंने लिखा

है कि आज कवि का काय समूचे ज्ञान विज्ञान की विशेषीकरण की प्रवृत्ति को उलाघकर उससे ऊपर उठकर, कवि को उसके विभाजित सत्य को समूचा देखना और दिखाना है। पर सत्य यह है कि प्रयोगवादी कवि अन्वेषी ही रहे हैं, सत्य उन्हे मिला ही नही, जिसका वे साधारणीकरण करते इसलिए वे हम सवस्वीकृत परम्परा को ही सन्देह की दृष्टि स देखकर और उस जटिल कहकर अपने काय पर आवरण डालने का काय करत है। स्वय अनेय जी ने यह स्वीकार किया है कि य (दूसरे सप्तक के) कवि भी विराम स्थल पर नही पहुचे हैं, लकिन उनके आगे प्रशस्त पथ है और एक आलोकित क्षितिज रखा। हम उनके इस कथन को आप्त वाक्य मानकर चल रहे है। इस सप्तक के कवियो क विषय म उन्होन जो अन्य बातें कही है उन्हें भी हम स्वीकारते हैं। उन्होन लिखा है कि यद्यपि सब कवियो म भाषा का परिमाजन और अभिव्यक्ति की सफाई एक सा नही है और अटपटे पन की मात्रा यूनाधिक मात्रा म प्रत्येक म मिलगी तथापि सभी का एसी उपलब्धि हुई है जो प्रयोग को सायक करती है।"

दूसरे सप्तक के कवि

दूसरे सप्तक मे निम्नांकित सात कवि हैं—सव श्री भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर हरिनारायण व्यास शमशेर बहादुर सिंह नरेश कुमार मेहता रघुवीर सहाय और धमवीर भारती। अपनी भूमिका म अनय जी ने लिखा है कि इन सात म मे कोई भी हिंदी जगत का अपरिचित हो एसा नहीं है लकिन किसी का कोई स्वतन्त्र कविता सग्रह नही छपा है अत यह कहा जा सकता है कि प्रकाशित कविता ग्रथ के जगत म ये कवि इसी पुस्तक क साथ प्रवश कर रहे है।

✓प्रथम तार सप्तक स लेकर द्वितीय सप्तक तक प्रयोगवाद का प्रयोगकाल रहा है। दूसरे सप्तक के सभी कवि प्रयोगवादी काव्य के रचयिता हैं इनम प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवियो का प्रथम सप्तक की भाति मिश्रण नही है किंतु प्रत्यक कवि का अपनी वयक्तिक विशेषताए हैं। य कवि अपन सत्य का बहुत अशो म विज्ञापित कर सक हैं। यहाँ सत्य स हमारा मतलब प्रयोगवादी सत्य स नहीं है अपितु मानवीय जीवन की मार्मिक सवदनाओ स है। हमारे जीवन की परिचित पर काव्य म अपरिचित अनुभूतियो को इन्होंने नूतन और अथवान समथ और शासन प्रतीको क माध्यम स व्यक्त किया है यह बात हम कह चुके हैं कि ऐसे प्रयोग सवत्र नहा मिलत किंतु जितन भी हैं वे प्रयोगवादी काव्य की उपलब्धियां हैं। यहा हम एस कुछ काव्यात्मक अशो को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं जिनक माध्यम म प्रयोगवाद का विकसित सवदनीय और साधारणीकृत स्वरूप देख सकत है।

श्री भवानी प्रसाद मिश्र का एक कविता बूद टपकी एक नभ से म आकाश

स बूदो क टपकन पर अनक उत्प्रेक्षाये की गई हैं ये अप्रस्तुत अपने आप म एक एक स्वत त्र बिम्ब का निर्माण करने म सक्षम हैं, प्रतीक अर्थ को व्यक्त करने म उलझन न डालकर उसे व्यापक और सुग्राह्य तथा चित्रात्मक बना देते हैं—

बूँद टपकी एक नभ से
किसी ने झुककर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो,
हँस रही सी आख ने जैसे
किसी को कस दिया हो
ठगा सा कोई किसी की आख
देखे रह गया हो
उस बहुत से रूप को रोमाच रोके
सह गया हो।

इस रचना के सारे प्रतीक यौनवादी हैं किंतु फिर भी कुण्ठा, अतृप्ति, निराशा उदासी का वातावरण न होकर नाम एव सहज प्रसन्नता है प्रतीको म क्षनगढता नहीं है। मामा यत रचना सवेद्य है। भवानी प्रसाद जी की सारी रचनायें स्पष्ट हैं, अयगत दुराव और प्रतीको की दुर्बोधता कहीं नहीं मिलती।

प्रतीको की ताजगी और शक्तिमत्ता का एक अय उदाहरण मैं धर्मवीर भारती की कविताओ म स द रहा हूँ। उनका 'चुम्बन' शीर्षक मुक्तक देखिए—

रख दिय तुमने नजर म बादलो को साध कर,
आज माथे पर, सरल सगीत से निर्मित अधर,
आरती के दीपको की झिलमिलाती छाह म,
बासुरी रखी हुई ज्यो भागवत के पृष्ठ पर।[४७]

यहाँ सरल सगीत स निर्मित अधर और भागवत क पृष्ठ पर रखी बासुरी क अप्रस्तुत विशेष मार्मिक और सशक्त हैं। यहा प्रयोगी का कवि सत्य क उदघाटन म समर्थ रूप म दिखाई देता है। सगीत स निर्मित अधर कहने म अनेक व्यजनायें—सरसता, गुन गुनाहट, ध्वनि मधुरता आदि निहित हैं। नजर म बादलो को साधने म सरसता स्निग्ध और प्रेममयी दृष्टि बोधित होती है। भागवत के पृष्ठ पर रखी बासुरी स पवित्रता उदात्त और आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना भी हो जाती है। आरती क दीपको की झिलमिलाती छाह स विशुद्ध प्रेममयी निष्ठा और त मयता की व्यजना हो रही है। मुक्तक आश्चर्यजनक नहीं लौकिक प्रेम की व्यजना करता है किंतु उसम प्रेम की व्यापकता, उदात्तता, पवित्रता, त मयता आदि भावनायें प्रतीकों के माध्यम म व्यजित हो रही हैं।

यहाँ मैं नरेशकुमार महता की 'चाहता मन' शीर्षक रचना से भी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ। इनमें भी प्रतीकों की नई पहचान पहल देखिए, केवल कलरव ही नहीं, उनमें अर्थ दीप्ति भी दृष्टव्य है—

गोमती तट
दूर पेंसिल रेख सा वह बांस झुरमुट
शरद दुपहर के कपोलों पर उड़ी वह धूप की लट
जल के नभ ठंडे बदन पर कुहरा झुका
लहर पीना चाहता है
तुम यहां बैठी हुई थीं अभी उस दिन।
लाख सी मन लाल
चिकने धीड सी वह बांह अपनी टेक पथ्थर पर यहां।

कौन जाने धूप उस दिन की कहाँ है
जो तुम्हारे कुन्तलों में गरम, फूली धुली, धौली लग रही थी।
चाहता मन
तुम यहाँ बैठी रहो
उड़ता रहे चिड़ियों सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आंचल।

उपर्युक्त प्रगीत में अनुभूतियों की संवेदना कम नये प्रतीकों का आकर्षण और बिम्ब विधान अधिक है। रेखांकित उपमान हिन्दी में नये हैं शोभन हैं और अर्थ स्फीति में सहायक हैं। ऊपर हमने तीन कवियों की तीन रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इनमें जो आस्वादनीयता के तत्व हैं वे शिल्पगत अधिक हैं, वस्तुगत कम, इसीलिए ये रचनायें सुन्दर होती हुई भी हमारे हृदय पर अक्षय प्रभाव नहीं डालतीं। किन्तु फिर भी प्रयोगवाद की इन्हें हम उपलब्धियां कह सकते हैं। जिस बौद्धिकता नीरसता जटिलता, और खुरदरेपन की चर्चा प्रयोगवाद के सैद्धान्तिक विवेचन में की जाती है वे बातें हमें व्यावहारिक रूप से प्रयोगवादी काव्य में कम ही मिलती हैं। इसका आशय यही है कि काव्य रचना किन्हीं विशेष पूर्व निश्चित प्रतिमानों के आधार पर नहीं हो सकती जहां जहां ऐसा हुआ भी है, वहीं वह नीरस जटिल दुर्बोध और उपेक्षणीय हो गया है। प्रयोगवाद ने छन्द शिल्प बिम्ब, प्रतीकादि के क्षेत्र में जो नवनिर्माण का कार्य किया है उनका प्रकर्ष हम नयी कविता के रूप में दिखाई देता है। वस्तुतः नयी कविता के लिए प्रयोगवाद ने भूमिका और खाद का कार्य किया है।

पारम्परिक अनुबन्ध

नयी कविता के स्वरूप और विशेषताओ पर चर्चा करने के पूर्व यहाँ प्रयोग वाद पर जो परम्पराहीनता का आरोप लगाया जाता है, उस पर विचार कर लेना चाहते है। इस सदभ म अज्ञेय जी का मत हम ऊपर दे चुके हैं। उनकी दृष्टि से परम्परा का क्या अर्थ है, यह भी स्पष्ट किया जा चुका है। हम तो यहाँ केवल यह विचार करना चाहते हैं कि क्या प्रयोगवादी काव्य पूणत परम्पराहीन है, या परम्परा के सूक्ष्म ततु उसमे विद्यमान हैं ? इसके फूलने फलने मे बाह्य प्रवत्तियाँ सक्रिय रही हैं, कवियो की मन स्थितिया भी तदानुकूल वातावरण के अनुरूप थी, अतएव इस प्रकार के साहित्यिक आदोलन को विकसित और युग प्रतिनिधित्व रूप धारण करने म सरलता हुई यह बात कही जा चुकी है। यदि हम ध्यानपूवक देखें तो प्रयोगवादी काव्य की एक दर्जन से भी अधिक ऐसी विशेषताय हैं जो हम छायावादी हालावादी तथा प्रगतिवादी काव्य मे ईषत रूप से मिल जाती हैं। उदाहरणाथ, वैयक्तिक चेतना, व्यक्तिवादी दष्टिकोण, अपने सुख दु ख का इतिहास पलायनशीलता, निराशा, उदासी आदि का चित्रण, परम्परागत रूढियो का तीव्रतम विरोध, नवीन भाषा और छदो का निर्माण-मुक्त छद का प्रवतन और अनुवतन, नए प्रतीको और अप्रस्तुतो का प्रयोग, प्राचीनो की उपेक्षा आदि प्रवृत्तिया छायावादी काव्य म हमे क्रमाधिक मात्रा म दिखाई देती हैं। इसी प्रकार भौतिकवादी दष्टिकोण, यथार्थवादी शली, वग, विशेष का आग्रह-बौद्धिकता, जन सामान्य और अनगढ भाषादि का प्रयोग हम प्रगतिवादी काव्य मे पात हैं। क्या यह सभव नही है कि परम्परागत काव्य की ये ही प्रवृत्तिया प्रयोगवादी काव्य मे अनुकूल परिवेश पाकर उदबुद्ध हुयी हो ? उदबोधन में सहायक परिस्थितियाँ और प्रेरणायें बाहर की थी, जिनका स्वरूप हम देख चुके हैं। अब इतनी अधिक प्रयोगवादी काव्य की मूल प्रवत्तियाँ क्रमागत काव्य मे मिल जाती हैं, तब यह कहना कि यह-परम्पराहीन है कोई अथ नही रखता। यह बात अवश्य है कि छायावादी काव्य तथा प्रगतिवादी काव्य म य प्रवत्तिया अपना-सिर नही-उठा सकी हैं, पर उनका अस्तित्व था, इस अस्वीकार भी नही किया जा सकता। प्रयोगवाद आसमान से उतर कर नहीं आया और न वह अचानक बिजली की कौंध ही है वह काव्य म अनेक वर्षो से अवदमित प्रवत्तियो के समयानुकूल विस्फोटन का प्रतिफल है जो कि पूर्ववर्ती काव्य की एक प्रतिक्रिया के रूप मे उदय हुआ। पहले उसका स्वरूप असगठित और अलक्षित था, पहला सप्तक इसका प्रमाण है किन्तु दूसरे सप्तक मे वह व्यवस्थित हुआ और शिल्पगत निर्माण की ओर से सवेदनाओ की ओर प्रत्यागत हुआ और १९५३ ई० में यह अपने प्रयोगवादी आवरण को त्यागकर नयी कविता के रूप मे हमारे सामने आया। यदि इन तर्कों के बावजूद भी कोई यह मानने को तयार न हो कि प्रयोगवाद की जडें छायावादी, हालावादी और प्रगतिवादी काव्य चेतना मे विद्यमान हैं, तो इससे कोई भी मुह नही बिचका सकता कि नयी कविता

और प्रयोगवाद के पीछे आज लगभग २५ वर्ष की सुदीर्घ परम्परा है, इतनी लम्बी परम्परा हिन्दी काव्य इतिहास में न तो छायावाद की है, और न प्रगतिवाद की। हालावाद तो चार पांच वर्षों में ही अपनी चिर मस्ती खो बैठा। इसलिए नये काव्य के विषय में परम्पराहीनता का प्रश्न पहले तो उठाया जा सकता था पर आज वह निरर्थक हो गया है। नये काव्य की अपनी एक नींव बन चुकी है भले ही वह अच्छी न हो पर उस नींव को कोई आज मिटाना भी चाहे तो भी नहीं मिटा सकता अतः एवं अब आवश्यक यह हो गया है कि हम इस नींव की परीक्षा तटस्थ होकर करें। विद्वानों ने यह साहित्यिक परीक्षण काय विपुल मात्रा में आरम्भ भी कर दिया है और वैचारिक मंथन से जहां नये काव्य की विशेषतायें प्रकाश में आ रही हैं वहाँ नया काव्य भी अपनी अटपटी चाल छोड़कर अधिक गम्भीर और वयस्कता की ओर अग्रसर हो रहा है। यहाँ हम अब नयी कविता के सद्धान्तिक प्रतिमानों को देखने के पश्चात उसकी विशेषताओं और सीमाओं पर विचार करेंगे।

नयी कविता

प्रयोगवादी काव्य का प्रमुख पत्रिका प्रतीक थी जिसका प्रकाशन इस शताब्दी के छठे दशक के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ। १९५३ ई० में नये पत्ते नाम से एक अन्य पत्रिका निकली। इसका सपादन पहले प० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने किया बाद में लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी इसके सपादन में सहयोग दिया। १९५४ ई० में नयी कविता शीर्षक पत्रिका निकली। इन पत्रिकाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य में पहली बार नयी कविता का आधिकारिक रूप व्यक्त हुआ। प्रथम तार सप्तक से प्रतीक तक प्रयोगवाद की उपलब्धि यात्रा है, नये पत्ते में इसी शिल्पात्मक उपलब्धि के आधार पर नयी कविता' की प्रथम अनुभूति हुई और नयी कविता से उसका प्रौढ़ स्वरूप दिखाई दिया। नयी कविता के सभी कवि समीक्षकों ने यह बात स्वीकार की है कि प्रयोगवाद नव लेखन की भूमिका मात्र है। उसकी प्रकृति में बहुत कुछ अस्थिरता के तत्त्व थे। उसके तत्त्वावधान में नये प्रयोग किए गये हैं। इनमें से कुछ सफल प्रयोगों के आधार पर नयी कविता की नींव पड़ी।

इसके पश्चात लक्ष्मीकान्त वर्मा ने नयी कविता के प्रतिमान' शीर्षक एक समीक्षात्मक ग्रंथ लिखा। इसमें उन्होंने विस्तार के साथ नयी कविता की विशेषताओं का आकलन किया है। १९६० ई० के आसपास रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने भी हिन्दी नव लेखन के नाम से एक पुस्तक लिखी। इसमें १९६० के पूर्व तक के प्रायः सभी नयी कविता सबंधी प्रतिमानों और विशेषताओं का परोक्षरूप से आलेखन हो गया है। अतएव इस कृति को हम नयी कविता की सद्धान्तिक मान्यताओं के निरूपणार्थ एक प्रामाणिक कृति मान सकते हैं। चतुर्वेदी जी नयी कविता के सद्धान्तिक प्रतिमानों

स आरम्भ से ही सबद्ध रहे हैं अतएव इस क्षेत्र मे किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए ।

१६५६ ई० मे अज्ञेय जी के सपादन मे ही 'तीसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ । इसकी भूमिका मे भी उन्होने नयी कविता की प्रमुख विशेषताओ और समस्याओ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । अपनी 'आत्मनेपद' शीर्षक कृति मे भी उन्होने 'नयी कविता' पर विचार किया है । डॉ० धर्मवीर भारती की 'मानव मूल्य और साहित्य' कृति भी नयी कविता की महत्वपूर्ण समस्याओ और विशेषताओ पर प्रकाश डालती है । हम नयी कविता की विशेषताओ के अनायन करते समय यथास्थान नयी कविता के इन कवि समीक्षकों की सामग्री का भी उपयोग करेंगे । नयी कविता पर इधर हिन्दी म प्राय सभी समीक्षको ने भी विपुल मात्रा मे विचार किया है जो नयी कविता सकाय से सबद्ध नही हैं । इस सदर्भ म इन नये पुराने समीक्षको का मत भी विचारणीय है । इस उपलब्ध सामग्री को भी हम अपनी विवेचना का अग बनायेगे और अत म इस मतवादी चर्चा को छोडकर हम 'नयी कविता' की व्यावहारिक समीक्षा प्रस्तुत करेंगे ।

नयी कविता की प्रमुख प्रवत्तिया

प० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने 'हिन्दी नव लेखन' म 'नयी कविता' की जिन प्रवत्तियो का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं

(१) नयी कविता नितात आधुनिक है । आधुनिकतम होना उसकी प्रथम अनिवार्य शर्त है ।

(२) एक पूर्णत नवीन, सुनिश्चित तथा रागात्मक दृष्टिकोण होना उसकी दूसरी अनिवार्य आवश्यकता है । पूर्णत नवीन होना, इसलिए कि परम्परागत दृष्टिकोण सारहीन जड तथा खोखला है ।

(३) नयी कविता मे सामान्य वस्तुओ तथा अकिंचन परिस्थितियों से रागात्मक सम्बन्ध होना बहुत जरूरी है ।

(४) उसम गहरे तथा तीखे व्यग्य (सटाइज आयरनी) की प्रवत्ति भी हो, किन्तु व्यग्य ऐसा हो जो जीवन के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण दे सके ।

(५) नयी छद-योजना, शब्दो के ध्वन्यात्मक प्रयोग तथा आतरिक अर्थों का समन्वय भी नितात अपेक्षित है ।

(६) बिखरे भाव चित्रो तथा मुक्त साहचर्य का निस्सकोच रूप म प्रयोग होना चाहिए ।

(७) उसम एक नये व्यापक तथा उदार मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने का अथक प्रयास होना बहुत आवश्यक है ।

(८) सामान्य जन जीवन के प्रति एक अनिवार्य कमन हो ।

(१०) नयी कविता का धरातल काफी हद तक बौद्धिक हो। बौद्धिक होना ही आधुनिक युग की अनिवार्यता है।

(११) नयी कविता में वर्तमान से असंतोष तथा भविष्य में आस्था हो।

(१२) आवेग, आवेश उत्साह, दया—नयी कविता में अनावश्यक हैं।

(१३) शिल्प की दृष्टि से खुरदरापन अनगढ़पन,—कंकरीट के पलस्तर की तरह—नयी कविता में बहुत आवश्यक वस्तु है।

(१४) नयी कविता—गद्य कविता हो। उसमें जीवन की स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हो।

(१५) वैयक्तिक भाव चित्रों की योजना करना नये कवि के लिए अनिवार्य शर्त है।

(१६) नयी कविता की संपृक्त अनुभूति के लिए पाठक का कुछ प्रशिक्षित होना आवश्यक है।

(१७) नये कवि के लिए कविता की रचना प्रक्रिया यथेष्ट जटिल होती है और वह बौद्धिकता से संपृक्त होती है।

(१८) सृजन के क्षण उतने विशिष्ट नहीं, जितने नयी कविता के आस्वादन के क्षण महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट होते हैं।

(१९) नयी कविता में क्षण का महत्व होता है। उसमें नये नैतिक प्रतिमान हैं और नया सौन्दर्य बोध होता है।

(२०) नये कवि अनिवार्य होते हुए भी आधुनिकता को परजन मानते हैं।

(२१) प्रेम और शृंगार की जो नग्नता और अश्लीलता का प्रदर्शन परम्परा से अनैतिक अथवा कुंठाग्रस्त माना गया है, उसे नये कवि नैतिक मानते हैं।

(२२) कैक्टस नये कवियों की सौन्दर्य चेतना का प्रतीक है जो ऊपर से देखने पर कटीला होता है किंतु भीतर रस प्लावित रहता है।

(२३) सामान्य तथा अकिंचन क्षणों को उनकी संपूर्ण असंगति में अंकित करने की चेष्टा नयी कविता का आधुनिकतम भाव बोध है।

(२४) डा० जगदीश गुप्त अर्थ की लय नयी कविता की अनिवार्य वस्तु मानते हैं। अन्त्यानुप्रास और कविता की आभ्यंतरिक शाब्दिक लय योजना को वे उपेक्षित करने का आदेश देते हैं।

(२५) डा० धर्मवीर भारती के प्रयास से इधर पिछले दिनों से धुरी हीनता का आन्दोलन या क्रुद्ध युवक की एक नयी स्थिति भी नयी कविता की एक अनिवार्य विशेषता के रूप में जुड़ गई है।

(२६) नये कवि और समीक्षकों का कहना है कि नयी कविता का विकास अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समान रूप से हो रहा है।

अभी नई कविता की इन सैद्धांतिक विशेषताओं की संख्या को और भी बढ़ाया जा सकता है किंतु ये भी अपर्याप्त नहीं हैं । आचार्यों ने सत्काव्य के जो जो लक्षण बताये हैं ठीक उनके विपरीत नई कविता की उपयुक्त सैद्धांतिक मान्यतायें हैं । या दूसरे शब्दों में कहें, कि प्रगीत काव्य का विरोधी रूप नई कविता है । यहाँ हम अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए प्रगीत काव्य और नयी कविता की परस्पर तुलना के कुछ पक्ष उपस्थित कर रहे हैं ।

प्रगीत काव्य और नयी कविता

प्रगीत काव्य में भावात्मकता अनिवार्य वस्तु है नयी कविता में उसे कोई स्थान नहीं । अपरिमित भावावेग दीप्त प्रगीत काव्य का एक दूसरा तत्व है नयी कविता में वह भी उपेक्षित है । भावान्विति प्रगीत का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व है नयी कविता उससे भी रिक्त है । वहाँ अन्विति नहीं बिखराहट को महत्ता दी जाती है भावावेश के असामान्य क्षणों में जहाँ प्रगीतकार पुरातनता आधुनिकता का विभेद भूल जाता है, वहाँ आधुनिकता को सलज्ज रूप से प्रस्तुत करना नये कवि का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है । प्रगीतकार की रचना प्रक्रिया सहज स्वाभाविक और अमिश्रित कोटि की होती है वहाँ नयी कविता में वह दुर्गम, जटिल और मिश्रित होती है । प्रगीत काव्य के साधारणीकरण में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती, पर नयी कविता में साधारणीकरण के क्षण विशेष महत्वपूर्ण होते हैं उसके लिए पाठकों या श्रोताओं को प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है । प्रगीत में जीवन की विशेष मार्मिक अनुभूतियाँ और भावनायें अभिव्यंजित होती हैं ये भावनायें उदात्त और विश्वासात्मक होती हैं। उसमें व्यक्ति वैचित्र्यवाद नहीं होता पर नयी कविता में क्षणों का महत्व है । नया कवि अपने जीवन के हर क्षण की वस्तु का काव्य में अमर कर देना चाहता है, विश्वासात्मकता नहीं वह व्यक्ति वैचित्र्यवाद को महत्व देता है ।

प्रगीत काव्य में संगीतात्मकता एक अनिवार्य वस्तु है किंतु नयी कविता में उसकी पूर्णत उपेक्षा है । अन्त्यानुप्रास, शाब्दिक अनुरणन और सुनिश्चित लय योजना और छंद विधान को भी नयी कविता प्रश्रय नहीं देती वह अर्थ की लय की पोषक है। अर्थ एक अमूर्त और निराधार वस्तु है वह चाक्षुष और श्रुतिपरक न होकर मानसिक वस्तु योजना है वह लय की सत्ता मानना नई कविता' की विलक्षण सूझ है । लय जीवन का एक प्रकृत तत्त्व है । भावनाओं के उद्रेक काल से लेकर उनकी अभिव्यंजना काल तक वह विद्यमान रहती है भावनायें या अनुभूतियाँ लयात्मक ही होती हैं किंतु नई कविता में उनका महत्व ही नहीं है, फिर लय कहाँ से आयगी ?

प्रगीत काव्य का शिल्प पक्ष भावानुभूतियों के अनुसार मृदुल, कोमल और श्रुति माधुर्य पूर्ण होता है । उसके शब्द सांगीतिक होने के कारण **हृदय में**

तक प्रतिगुंजित होते रहते हैं किंतु नयी कविता गद्यवती है उसका शाब्दिक पन खुरदरा होता है—कवरीट की भाँति और उसके प्रतीक और सौन्दर्य बोध पेक्टस की भाँति कटीले होते हैं। उसमें भीतर भले ही रस हो (जिसमें सन्देह है) किंतु उसे निगलने की प्रक्रिया ही असंभव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है।

इस तुलना से कोई यह न समझे कि मैं नई कविता का विरोधी हूँ और यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहा हूँ कि भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने प्रणीत काव्य के जो सब स्वीकृत तत्त्व माने हैं और जो परम्परा से अनुमोदित हैं उनका नई कविता में अभाव ही नहीं विरोधी स्वरूप भी है। नयी कविता का जो कुछ स्वरूप है वह तो सभी देख रहे हैं मुझे इस प्रसंग में यही कहना है कि नई कविता की सारी भूमिका और मान्यतायें नई हैं परम्परागत स्वीकृत तत्त्वों के प्रति उसमें विद्रोह भावना है और जब नयी कविता पर परम्पराहीनता का आरोप लगाया जाता है तब इसके मूल में यही दृष्टिकोण निहित रहता है।[१] परम्परा निश्चित रूप से अन्यथा की कसौटी में गठरी नहीं है जिसे नये कवियों पर लाद दी जाय किंतु यह भी सत्य है कि नये कवि निरे गद्य को कविता कहकर जनता को धोखा भी नहीं दे सकते।

अन्तर्राष्ट्रीयता

नये कवि समीक्षकों का यह कथन है कि आज इस प्रकार की कविता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लिखी जा रही है। हमारा यह कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसका विरोध भी हुआ है और हो रहा है। इस संदर्भ में स्पेनी ग्वेट ने लिखा है कि आधुनिकता को महत्त्व देना एक कृत्रिम मनोवृत्ति है। कोई भी कवि काव्य प्रणयन के समय यह नहीं कह सकता कि मैं नया लिखूँगा या पुराना। इसी प्रकार जीवन का बिखराव भी नये काव्य के लिये घातक वस्तु सिद्ध हो रही है। उसकी परिधि सीमित से सीमित तर होती जा रही है। गद्य और पद्य की भाषा में भी तात्त्विक अन्तर है जिसे कोई भी सहृदय अस्वीकार नहीं करेगा।

बुद्धि विशिष्ठता

नयी कविता की बौद्धिकता का भी विश्वव्यापी विरोध हुआ है। पश्चिमी समाज बुद्धिजीवी है अतएव वहाँ के काव्य में बौद्धिकता का प्रवेश आश्चर्य जनक नहीं

१ प्रयोगवाद के संदर्भ में मैंने परम्परा के प्रश्न पर विचार किया था और कहा था कि इस काव्य की कतिपय प्रवृत्तियाँ हमें छायावादी, हालावादी और प्रगतिवादी काव्य में मिल जाती हैं किंतु यह कथन कतिपय प्रवृत्तियों की परम्परा से सम्बन्धित है नई कविता या प्रयोगवाद की सैद्धान्तिक स्थापनाओं से नहीं। प्रयोगवाद और नई कविता के प्रतिमान तो प्राचीन काव्य का एकदम विरोध करके चले हैं।

कहा जा सकता किंतु भारतीय जीवन अभी भी बुद्धिवादी नहीं रहा, यहा अभी इतनी भौतिक समृद्धि भी नहीं हुई कि व्यक्ति आत्मकेंद्रित होकर अपने आप में एक द्वीप बन जाय और उसे दूसरे के अस्तित्व का बोध भी न हो। दूसरों के प्रति यह उदासीनता और उपेक्षा की भावना इंग्लैण्ड में सत्य हो सकती है किंतु भारत में इतनी जन निरपेक्षता अभी नहीं आई और उसका न आना ही सौभाग्य का लक्षण है किंतु नये कवियों ने अपनी बुद्धि के द्वारा उसे कल्पित अवश्य कर दिया है। यह तथ्य उसी प्रकार का है जिस प्रकार मास्को में पानी बरसने की खबर सुनकर विश्व के कट्टर भाववादी पानी न बरसने पर भी छाता लगाकर निकल पड़ते हैं चाहे उनके यहा पानी बरसे या नहीं इसका कारण यह है कि न यहीं, यहा-वहां तो बरस रहा है। ठीक यही वस्तु प्रयोगवादी कवियों की रही है। ये पश्चात जीवी कवि पश्चिम की हर बात की नकल करना चाहते हैं, चाहे वह अच्छी हो या न हो समयोचित हो या न हो। यह कथा उनके प्रति नहीं है जो पाश्चात्य प्रेरणायें ग्रहण करके अनुकरण और अनुवलन की भूमिका से ऊपर उठकर अपना कुछ देने में समर्थ हुए हैं, जैसे अज्ञेय जी धर्मवीर भारती आदि।

बौद्धिकता भी बुरी न कही जाती, यदि कवि अपने चिंतन के द्वारा कुछ नई वस्तु इस संसार को प्रदान करते। प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य प्राय सभी समीक्षा शास्त्रियों ने तो इस बात पर विशेष बल दिया है कि कवि को दार्शनिक होना चाहिए हमारे यहा उसे परभू स्वयंभू भविष्यद्रष्टा ब्रह्मा आदि कहा गया है। इन संज्ञाओं के द्वारा काव्य की बौद्धिक चिंतन का ही विशिष्टता का शासन किया गया है किंतु नये कवि इस क्षेत्र में नहीं आते। उनकी बौद्धिकता की छानबीन करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "नई कविता की बौद्धिक चेतना का दोष यह है कि वह विचारों का इन्द्रिय बोध से संयुक्त करने भावना से अनुप्राणित करने मार्मिक और प्रभावशाली बनाने के बदले उन्हें कथन मात्र रहने देती है। नया कवि सोच सोचकर बहुधा दूसरों की रचनायें पढ़कर विचार ही नहीं करता, वह भावों को भी सोचता है सोचकर उसकी भावसत्ता नष्ट कर देता है, बिना उपमानों से उन सोचे हुए भावों को संजोय, यह भी साधना है और इस सोच विचार में रस अंतर्धान हो जाता है। भावानुभूति के बदले उसके पास सोच विचार ही रह जाता है। यदि नयी कविता में गम्भीर चिंतन होता अनगढ़ होने पर भी उसमें दार्शनिक विचार होते, व्यक्ति अथवा समाज की समस्याओं का चित्रण होता तो भी साहित्य को उसकी देन महत्वपूर्ण होती। कठिनाई यह है कि बौद्धिकता की दुहाई देने पर भी उसमें कच्चा अकल के कारनामे ज्यादा दिखाई देते हैं चिंतन के नाम पर दूर की कौड़ी लाने का प्रयास ही अधिक होता है।"[1]

1 अनास्थावादी पण्डित कवि' शीर्षक निबंध—आस्था और सौन्दर्य,

डा० रामविलास शर्मा

नई कवितावादिया को छोडकर शायद ही कोई शर्मा जी क उपयु त्त कथन क प्रति अपनी अनास्था प्रगट करेगा। जिस कवि सय की चर्चा अनेय जी यार बार करत रहे हैं उसकी कलई भा उपयु क्त वक्तव्य से धल जाती है।

तीसरा तप्तक

[१] पूर्वाग्रह रहित अध्ययन की माँग

तीसरे सप्तक की भूमिका मे अन य जी ने नयी कविता से सम्ब धित जो बातें कही हैं उन्ह भी हम यहाँ विचाराय प्रस्तुत कर रहे हैं। उन्होंने लिखा है कि नई कविता को शास्त्रीय आलोचको स सहानुभूतिपूण तो क्या पूर्वाग्रहरहित अध्ययन भी नही मिला है यह आवश्यक हो गया है कि स्वय उनके आलोचक तटस्थ और निमम भाव स उसका परीक्षण करें। दूसरे शब्दो म परिस्थिति की माग यह है कि कविगण स्वय एक दूसरे के आलोचक बनकर सामने आवें।[१] इसी प्रसग को उन्होंने और आग बढाकर लिखा है कि नई कविता अगर इस काल की प्रतिनिधि और उत्तरदायी रचना प्रवत्ति है और समकालीन वास्तविकता को ठीक ठीक प्रतिबिम्बित करना चाहती है तो उसे यह त्रिगुण दायित्व स्वय आग बढकर ओढ लेना होगा। कृतिकार के रूप म नये कवि को साथ साथ वकील और जज दोनो होना होगा (और सपादक होने पर साथ साथ अभियोक्ता भी!)[२]

[२] केन्द्रीयकरण आत्ममूल्याकन विश्लेषण

इस प्रकार नये कवि का आज रचना करने का ही काय नही है अपनी रचना की वकालत करना विश्लेषण और मूल्याकन करने का भी दायित्व आ गया है। साहित्यिक दायित्वो का यह केन्द्रीयकरण आत्म मूल्याकन और विश्लेषण–केवल नई कविता की ही विशेषता हो सकती है सत्य य का लक्षण नही है। अपनी आवश्यकता के समय ही कविगण अपनी रचनाओ के विश्लेषण का काय करते है। यदि रचना अपना मूल मन्त य नही कह पाती तो निश्चित ही यह रचना का दोष और कलात्मकता का अभाव है इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। नये कवि इसे जानते है और उस पर आवरण डालने के लिए उसकी व्याख्या के तार स्वर झकृत करत हैं। कविता वह है जो एक कहे और दूसरा समझ जाय पर नयी कविता की स्थिति यह है कि स्वय कवि को ही उसकी स्पष्टता के प्रति सदेह है।

[३] नये शब्द नये अथ सस्कारो की आवश्यकता

नयी कविता की प्रयोगशालता के भाषा सम्बन्धी पहले आयाम पर चर्चा करते

---

१ तीसरा सप्तक, भूमिका प ११

२ तदेव, प १२

हुये अज्ञेय जी ने लिखा है कि वह "भाषा सम्बन्धी प्रयोगशीलता को वाद की सीमा तक नहीं ले गई है—बल्कि ऐसा करने को अनुचित भी मानती रही है। यह मार्ग 'प्रपद्यवादी' ने अपनाया जिसने घोषणा की कि चीजों का एक मात्र सही नाम होता है और वह (प्रपद्यवादी कवि) प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छन्द का स्वयं निर्माता है। वे यह भी कहते हैं कि शब्द अपने आप में सम्पूर्ण या आत्यंतिक नहीं है, किसी शब्द का कोई स्वयंभूत अर्थ नहीं है। अर्थ उसे दिया गया है वह संकेत है जिसमें अर्थ की प्रतिपत्ति की गयी है प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ प्रयोक्ता उसे नया संस्कार देता है। इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है—यही उसका कल्प है जिन्होंने शब्द को नया कुछ नहीं दिया है वे लीक पीटने वाला से अधिक कुछ नहीं है—भले ही जो लीक वह पीट रहे हैं वह अधिक पुरानी न हो। इस वक्तव्य द्वारा अज्ञेय जी का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण स्पष्ट है। वे नये शब्दों के निर्माण पर, उनके नये अर्थ संस्कार पर बल देते हैं और जो ऐसा नहीं करता उसे लीकवादी कहते हैं। कृतित्व का क्षेत्र उन्होंने लादवाद और अलादवाद की सीमा रेखाओं के बीच का माना है और कहा है कि क्षेत्र बहुत बड़ा है और कोई इस छोर के निकट हो सकता है तो कोई उस छोर के।" अज्ञेय जी के इस दृष्टिकोण से असहमत नहीं हुआ जा सकता किन्तु यह उनका दृष्टिकोण है, अधिकांश नई कविता की भाषा का सत्य नहीं है। नयी कविता की भाषा यत्र तत्र केवल लीक का ही नहीं, उनके वक्तव्य की सीमा रेखाओं का भी अतिरेक कर गई है किन्तु उन्होंने यह कहकर इस बात का परिमार्जन कर दिया है कि 'नये कवियों में ऐसों की संख्या कम नहीं है जिन्होंने विषय को वस्तु समझने की भूल की है और इस प्रकार स्वयं भी पथभ्रष्ट हुए हैं और पाठकों में भी नयी कविता के बारे में भ्रान्त धारणाओं के कारण बने हैं।

[४] विषय 'नये' वस्तु मौलिक"

काव्य विषय और वस्तु में पार्थक्य करते हुए वे लिखते हैं कि 'विषय केवल 'नये' हो सकते हैं, मौलिक नहीं—मौलिकता वस्तु से ही सम्बन्ध रखती है। विषय सम्प्रेष्य नहीं है वस्तु सम्प्रेष्य है। नये (या पुराने भी) विषय की कवि की संवेदना पर प्रतिक्रिया और उससे उत्पन्न सारे प्रभाव जो पाठक श्रोता ग्राहक पर पड़ते हैं और उन प्रभावों को सम्प्रेष्य बनाने का कवि का योग (जो सम्पूर्ण चेतन भी हो सकता है अंशतः चेतन भी और सम्पूर्णतया अवचेतन भी)—मौलिकता की कसौटी का यही क्षेत्र है। यही कवि की शक्ति और प्रतिभा का भी क्षेत्र है—क्योंकि यही कवि मानस की पहुँच और उसके सामर्थ्य का क्षेत्र है। वस्तु की सम्प्रेषण की शक्ति प्रयोगवादी और नयी कविता में कितना सामर्थ्य है इसकी चर्चा हम कई स्थलों पर पहले कर चुके हैं, उसकी पुनरुक्ति आवश्यक नहीं है।

[५] नकली आलोचक नकली कसौटियाँ

अज्ञेय जी आलोचकों पर व्यग्य करते हैं और कहते हैं कि 'नकनवी कवियों से कहीं अधिक सख्या और अनुपात नकली आलोचकों का है--धातु उतना खोटा नहीं है जितनी कि कसौटियाँ ही झूठी हैं। जब अज्ञेय और उनके सप्तकवादी यह मान कर चलते हैं कि केवल उनकी नयी रचना और नये प्रतिमान ही एक मात्र सत्य हैं शेष झूठ हैं तो मुझे इस आरोप के उत्तर में कुछ नहीं कहना।

[६] नयी शिल्प दृष्टि

शिल्प, तन्त्र या टकनीक के बारे में भी दो शब्द कहना अज्ञेय जी ने आवश्यक समझा है। वे लिखते हैं कि वास्तव में नयी कविता ने कभी अपने को शिल्प तक सीमित रखना नहीं चाहा न वैसी सीमा स्वीकार की' और फिर इस वक्तव्य के आगे लिखते हैं 'कि नया कवि नयी वस्तु को ग्रहण और प्रेषित करता हुआ शिल्प के प्रति कभी उदासीन नहीं रहा है क्योंकि वह उसे प्रेषण से काटकर अलग नहीं करता है। नयी शिल्प दृष्टि उसे मिली है यह दूसरी बात है कि वह सबमें एक सी गहरी न हो या सब दैसे पथ पर एक सी सम गति से न चल सके हो। उनके इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि नए कवि ने शिल्प को अपनी सीमा भले न स्वीकार की हो किंतु शिल्पाग्रह से वह मुक्त भी नहीं रहा है।

[७] काव्य कर्म के प्रति गम्भीर उत्तरदायित्व

अज्ञेय जी इस सकलन के कवियों के प्रति भी लगभग वही बात दुहराते हैं जो वे द्वितीय और प्रथम सप्तक में कह चुके है। वे लिखते है कि ये कवि किसी *सम्प्रदाय के नहीं है न सबकी साहित्यिक मान्यताएँ एक है न सामाजिक न राज* नीतिक न ही उनकी जीवन दृष्टि में ऐसी एकरूपता है। वे यह भी लिखते हैं कि 'प्रयोजनीय यह है कि सकलित कवियों में अपने कवि कर्म के प्रति गम्भीर उत्तरदायित्व का भाव हो, अपने उद्देश्यों में निष्ठा और उन तक पहुँचने के साधनों के सदुपयोग की लगन हो। जहाँ प्रयोग हो वहाँ कवि मानता हो कि वह सत्य का ही प्रयोग होना चाहिए। या काव्य में सत्य क्योंकि वस्तु सत्य का रागाश्रित रूप है इसलिए उसमें व्यक्ति वैचित्र्य की गुजाइश तो है ही, बल्कि व्यक्ति की छाप से युक्त होकर ही वह काव्य का सत्य हो सकता है। क्रीडा और लीला भाव भी सत्य-हो सकते हैं--जीवन की ऋजुता को उद्‌घाटित कर देती है और सस्कारिता भी। देखना यह होता है कि सत्य के साथ खिलवाड या पर्वटेशन मात्र न हो।'[१]

---

[१] तीसरा सप्तक, पृ० १९

[८] नयी कविता कवि व्यक्तित्व का मोक्ष

अज्ञेय जी काव्य में रचयिता के व्यक्तित्व के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि उसका महत्व रचना करने की क्रिया की तीव्रता में और कला की माध्यमिकता के परिष्कार में है। उनके अनुसार काव्य में कवि का व्यक्तित्व नहीं, वह माध्यम प्रकाशित होता है जिसमें विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनायें चामत्कारिक योग में युक्त होती हैं। काव्य एक व्यक्तित्व की नहीं एक माध्यम की अभिव्यक्ति है। टी एस इलियट के स्वर में स्वर मिलाकर वे यह भी कहते हैं कि कविता भावों का उन्मोचन नहीं बल्कि भावों से मुक्ति है वह व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं बल्कि व्यक्तित्व से मोक्ष है। इसे हम उनका निर्वैयक्तिकरण का सिद्धान्त कह सकते हैं। कलाकार की तटस्थता की यह चर्चा उन्होंने आत्मनेपद में कई स्थानों पर की है।

[९] सौन्दर्य बोध बुद्धि का व्यापार–अज्ञेय जी

मूल्यों की भी चर्चा करने लगे हैं और लिखते हैं कि यदि यह कहना उचित है कि मूल्यों का स्रोत मानव का विवेक है। तो यह कहना ठीक है कि सौन्दर्य बोध मूलतः बुद्धि का व्यापार है। उनकी दृष्टि से कलात्मक सौन्दर्य के मूल्य सामाजिक मूल्यों से अधिक गहरे और स्थायी होते हैं। लयमयता और वक्रता को उन्होंने कला के मूल्यों के प्रमुख उपादान माने हैं जो अभिव्यक्ति पक्ष से सम्बन्धित हैं। श्लील-अश्लील के विषय में आपका कथन है कि ये देश काल और समाज बद्ध हैं। प्रत्येक समाज और सामाजिक स्थिति के अनुरूप इनके रूप बदलते रहते हैं अतएव इनके कोई स्थायी प्रतिमान नहीं है। यह सामाजिक नैतिकता का प्रश्न है साहित्य का नहीं। साहित्य में ये सुन्दर और असुन्दर रूप में प्रस्तुत रहते हैं। शिव और सुन्दर को आप पर्यायवाची मानते हैं और कहते हैं कि जो सुन्दर है वह अनैतिक नहीं होगा। साहित्य में सत्य के प्रतिपादन पर आपका विशेष आग्रह है। मानव मूल्यों की भी आपने चर्चा की है पर कम। इस विषय पर डा० धर्मवीर भारती ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है[1] और आधुनिक युग के बदले हुए मानव मूल्यों को प्रस्तुत किया है। इन्हीं नये मानव और कलात्मक मूल्यों को नया कवि अपनी नई कविता में प्रस्तुत करना अपना इष्ट कार्य समझता है। मूल्य प्रकरण के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि जिन्हें आधुनिक युग के मूल्य ठहराया गया है, उनके निरूपण में सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना निहित है। उनकी नैतिकता युगनद्ध न होकर बहुत कुछ वैयक्तिक चेतना की उपज है। वे यथार्थ नहीं, आरोपित हैं। नये कवि जिन्हें मूल्य कहकर अपनी कविताओं में प्रस्तुत कर रहे हैं वे केवल उनकी दृष्टि से ही मूल्यवान हैं, जनता के लिए उनका कोई मूल्य नहीं। ऐसी स्थिति में क्या ये मूल्य जन निरपेक्ष

१ 'मानव मूल्य और साहित्य' में।

और कवि सापेक्ष नही हैं ? जब नयी कविता की नीव ही कमजोर है तब उस पर निर्मित होने वाली इमारत कितने दिन रुक सकेगी ? नयी कवितायें समय के प्रवाह म ठहर नही पा रही हैं, वे बुलबुलो की भाति पत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित होते ही विलीन हो जाती हैं। किंतु भले ही इनका कालजयी अस्तित्व न हो अस्तित्व तो है ही, हम उसकी कमजोरियो और सैद्धान्तिक मत मतान्तरो पर ध्यान न देकर उसकी विशेषताओ पर ध्यान देना है, और एक ऐसी ठोस सर्जनात्मक भूमिका का निर्माण करना है, जिसके आधार पर भविष्य की कविता की रचना की जा सके।

तीसरे सप्तक के कवि और उनका काव्य

तीसरे सप्तक मे जितने कवि हैं, उनके प्रयास और संदेश-पिछले कवियो से बहुत कुछ ठोस है, किंतु य कविगण भी सिद्ध नही हैं साधक और अन्वेषक ही हैं। इस सकलन म प्रयाग नारायण त्रिपाठी कीर्ति चौधरी मदन वात्स्यायन केदारनाथ सिंह कुंवर नारायण विजय देव नारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कुल १४३ के लगभग कवितायें सगृहीत हैं। ये सभी कवि नयी कविता क प्रमुख स्तभ मान जाते हैं। यहा हम इनम स २-३ कविताओ के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं ताकि प्रायोगिक रूप स नयी कविता की विशेषताओ पर प्रकाश पड सके। एक कविता है 'चाँद की चाह जिसे मैं बिना किसी चुनाव क यहा प्रस्तुत कर रहा हू कहना चाहिए कि बस यो ही बन्द पुस्तक खोलकर उसे यहा उद्धृत कर रहा हू—

सुनिये जनाब
मेरी एक दिक्कत है,
एक मिनिट दीजिए
इतना कष्ट कीजिए
मुश्किल मे जान है,
आप भी इनसान हैं
सुन तो लीजिए!

× ×

इधर तीन दिनो से
लटते ही खाट पर
तीव्र इच्छा होती है—
शून्य को पकडकर
मुट्ठियो मे भींच लू।
नारगी से चाद को
रसभरी से तारों को

केवडा म वसी हुइ किरनो को
पजो म पकडकर
कस कर निचोड
सारा रस खीच लू । —
गदता हथेली म जो
नही कुछ बाहरी
केवल मेरी ही उँगलियो का नाखून
क्या कहूँ ?

× ×

खुदा के वास्ते
मुह न बनाइय
कोई रास्ता बताइये !

कविता विजय देव नारायन साही की है और इसमे आतरिक विवशता भरी कमस का मार्मिक और सवेद्य चित्रण है। चाँद को नारगी तारा को रसभरी और कवडे म बसी हुई किरना क प्रयोग मे नयापन और स्पष्टता है। रचना भावात्मक और आवशमयी है। बौद्धिक चेतना इसम नमी है। शिल्प भी नयात्मक और प्रवाहमय है उसम खुरदरापन नही है। नयी कविता के सारे प्रतिमानो पर या तो यह कविता खरी नहीं उतरती, या फिर वे इसके मूल्याकन क लिए अपर्याप्त हैं। इसका विषय भी नया है और सप्रेष्य वस्तु भी साधारणीकृत है अतिरिक्त व्याख्या और वकालत करने की भी कवि को जरूरत नही पडती। सामाजिक मूल्यो की भी अवहलना नही है और सौन्दय बोध बौद्धिक भी नही है।

एक दूसरी नयी कविता देखिए—शीषक है असुरपुरी म दस से छ इच। कविता लम्बी है पूरा काव्य रूपक है। हम यहा मशीनो के उवाच के ही कुछ कुछ अश प्रस्तुत कर रहे हैं—

हम ईश्वर हैं आटामेटिक
पोर पोर मे घुस अदश्य ही
स्थूल जगत चालित करते हैं।
हम हलधर हैं हरक्युलीज हैं
धरणि हस्त अगिरा राम हैं
—
विद्युज्ज्वा अयस त्रिशूल धर
प्रलय सृष्टि का ताण्डव करते

सिम्बन भूत विचरते
डम-डम-डम
डम डम डम डम डम । आदि

यह रचना मन्न वात्स्यायन की है। यन्त्र शाला रूपी असुरपुरी का यह प्रत्यक्षदर्शी और भुक्तभोगी चित्रण सवथा मशीनी सभ्यता के अनुरूप है। मशीन के जीवन म सरसता कहा? बौद्धिकता, स्फीत शब्द विधान और संदर्भमयता तथा निराला के कुकुरमुत्ता की तरह आत्मस्तवन, एक तीखा व्यंग्य ही है। ये सब कविता को मार्मिक बनाने म सहयोगी सिद्ध हुए हैं। इसी रचना के आरम्भ म कवि ने धक धक खच खच, धक धक खच खच पदावली की कई बार आवत्ति से मशीनों की चलन की आवाज की ध्वन्यात्मकता प्रस्तुत कर दी है। बीच-बीच म भी शाब्दिक अनुरणन से मशीनें बोलती हुई सी प्रतीत होने लगती है।

अब एक नयी कविता म नये साल के उपलक्ष म वितरित की जाने वाली शुभ कामनाओं का स्वरूप भी देखिए—

नये साल की शुभ कामनायें!
खेतों की मेडों पर धूल भरे पावों को,
कुहरे म लिपटे उस छोटे से गाव को,
नातें के गीतों को बैलों की चाल को
करघे को कोल्हू को मछुओं के जाल को,
इस पकती रोटी को बच्चों के शोर को
चौके की गुन गुन को, चूल्हे की भोर को, —
वाट के गुलाब और जूडे के फूल को
हर नन्ही याद को हर छोटी भूल को
नये साल की शुभ कामनायें।

कदाचित यह कविता भी नये कविता के निकष पर खरी न उतरेगी, क्योंकि इसमें वह सब नहीं है जिसे अज्ञेय जी तथा नये कवि समीक्षक या य म आधुनिक बोध की दुर्बोधता के नाम से अवतरित करना चाहते हैं। यह रचना सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की है। उनकी सभी कविताओं म आस्था का स्वर मखरित है। जन चेतना का वस्तुगत और शिल्पगत स्वरूप तो उनकी उपयुक्त कविता म देखा ही जा सकता है। ऊपर उद्धत सभी कवितायें नयी कविता के शुभ विकास की सूचक है और उनके सम्मुख निश्चित रूप से मंगलमय भविष्य झांकता हुआ दिखाई देता है।

नयी कविता के नये स्वर

(१) शिल्पतन्त्र की अतिरेकता

नयी कविता पढने का श्रम-परिहार ही नहीं करता कहीं कहीं मनोरंजन भी

करती है एक उदाहरण देखिए—

प्रेम की ट्रेजेडी

→ △ →

(हाय !)

← △ ←

(नहीं चैन
जागते ही कट गयी रैन)

→←

(प्रेम यानी इश्क यानी लव !)

!'

!!'

△+△

— — — — — — —

?

(अरमानों के गाल पर चाटा
नरवरी का काटा)

← ? →

(मुँह बल में घाटा !!)

यह तीर त्रिभुज आश्चर्य बोधक चिह्न और प्रश्न चिह्न की सूत्रात्मक कविता है। श्री सयन्शफीउद्दीन को इसे लिखते समय कदाचित् अर्द्धविराम, पूर्ण विराम कोलन, सेमीकोलन ऋण गुणा भागादि के चिह्न स्मरण नहीं आये नहीं तो इनका प्रयोग भी इसमें किया जा सकता था। यह है शिल्प की अतिरेकता का दृश्य जिसके आधार पर नयी कविता को बदनामी मिली है। इसके अतिरिक्त नयी कविता की जिन विशेषताओं पर विकृति के आरोप लगाये जाते हैं, उन्हें भी इसी प्रसंग में देख लेना चाहिए ताकि इसके उभय पक्ष हमारे सामने स्पष्ट हो सकें।

(२) यौन प्रतीकों की बहुलता

सो रहा है झोंप अँधियाला
नदी की जाँघ पर
डाह से सिहरी हुई यह चाँदनी
चोर द्वारा से उझक कर
झाँक जाती है।

—अज्ञेय–हरी घास पर क्षणभर, पृ० ४८

इन पक्तिया म यौन प्रतीको की अधिकता है। चित्रण अधकार और उसम धीरे धीरे आने वाली चान्दनी का है किन्तु यहाँ रूपक है कि अधियाला रूपी नायक नदी रूपी परकीया की जाघ पर सो रहा है। स्वकीया चादनी डाह म सिहरी हुई उसे चुपके चुपके झाक जाती है। यहाँ बिम्ब तो निर्मित हुआ है किन्तु इतना स्पष्ट नही है जो वस्तु को सप्रेष्य बना द। इस प्रकार के यौन प्रतीको का प्रयाग अज्ञेय जी ने अपने काव्य म विपुल मात्रा म किय हैं।

प्रात धूप की जरतारी ओढनी लपेटे
अभी अभी जागी
खुमार से भरी
नितात कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघधूम क
औचक आलिंगन म पिसकर
रति श्रान्ता सी मलिन हो गई।

—भारती–सात गीत वर्ष प० १३७

भारती जी की उपयुक्त पक्तिया म प्रात कालीन वस्न मे एक घाटी का चित्रण है। इसम भी यौन प्रतीको का चुनकर प्रयाग है।

(३) जलते माथे पर सूने कुहरे की छाया निराशा

जलते माथ पर सूने कुहरे की छाया
टूटती पसलिया म रीता गूजता दद
खाली जेबो म हाथ दिए सामर्थ्यहीन
बिल्कुल यों खोकर
हम सभी उतर कर आय हैं इस घाटी मे।

—नयी कविता, प० ८२ अक २

इन पक्तियो मे जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण द्रष्ट य है।

मैं हू नदी तट की रेत
अर्पित हू
लेकिन किसी भी क्षण पावो तले से
वह जाऊगा।

—भारती, सात गात वष

धमवीर भारती की इन पक्तिया म भी निराशा उदासी अनास्था, विवशता और असहाय मनावृत्ति अकित है। यही बात उनकी निम्न पक्तियो म भी देखिए—

मैं चला जा रहा हू ऐसे
जसे लहरा पर विवश लाश बहती जाय। —ठडा लोहा।

(४) पथ हो जाय उज्ज्वल नयी आशा

निराशा ही नयी कविता का सत्य नही है उसमे आस्था, विश्वास और स्वर्णिम भविष्य की झांकी भी है—

'राग जाय दिशाओ मे बिखर
पथ हो जाय उज्ज्वल
और उस पल स्वग का गधव आए उतर
बस इतनी प्रतीक्षा मुझे भा है तुम्हे भी है।
—अजितकुमार—दो बात और एक तक।

(५) इन्द्रधनु रौंदे हुए ये

अज्ञेय की कविता का श्रेष्ठत्व भी उनके यौन प्रतीको और क्षणभगुर निराशा वादी दृष्टि मे न होकर आस्था म है। इन्द्रधनु रौंदे हुए ये,' 'आगन के पार द्वार तथा अरी ओ करुणा प्रभामय म उनके व्यक्तित्व की तटस्थता, कलात्मकता और आस्थावादी जीवन दृष्टि की सुन्दर अभिव्यजना हुई है। उनकी कल्पना की पहुच को अन्य कवि नही पा सके हैं। अनेक आरोपो के रहते हुए यह मानना ही पडता है कि वे एक प्रतिभा सम्पन्न, बहुअध्ययनशील और चिंतक कवि हैं। जीवन की वतमान नीहारिकाओ को भेदकर उनकी दृष्टि अन्तराल तक पहुची है और वहां मोतियो का सचयन किया है, यह दूसरी बात है कि मोतियों के साथ कभी कभी कीचड भी आ जाती है, पर महत्व कीचड का नही, मोतियो का ही होता है, अज्ञेय जी के काव्य का मूल्याकन उनकी कमजोरियो के आधार पर न होकर उनकी अच्छाइयो के आधार पर ही होना चाहिए। कवि म अभद्रता और निद्वद्वता भी है। वसे नये कवियो का एक यह सहज गुण है, जिस बात को अन्य व्यक्ति सामाजिक शीलवश नही कहना चाहते, यद्यपि उससे अभिज्ञ हैं उन अश्लील और अग्राह्य वस्तुओ को भी इन कवियो ने डके की चोट पर कहा है। य वस्तुयें जीवन का यथाथ तो हो सकती हैं, किन्तु कला का सत्य इनसे परे हैं। कला दुगध और विकृतिपूण वातावरण के यथाथ चित्रण म न होकर उसके उदात्त पक्षो को प्रस्तुत करने म निहित है। किन्तु यथाथ को यथाथ रूप म प्रस्तुत करना, य कवि अपनी ईमानदारी का तकाजा मानते हैं और यही मनोवत्ति काव्य को छायावाद और प्रगतिवाद के कगारो स खीचकर समाज और व्यक्ति के हृदय की दुबलताओ के निरे चित्रण तक ले गइ है—

(६) मदेसपन यथार्थानुभूति

मेरे मन की अधियारी कोठरी म
अतृप्त आकाक्षा की वेश्या
बुरी तरह खास रही है। —जगदीश गुप्त

अथवा त्वचा तनती गई।
गर्भस्थ शिशु
मटून की तरह फूलता चला गया।
—निबंध, पृ० १७३ अंक ३, ४

या निरन्तर घूमती हुई स्वप्न आड़ म निर्वेद
मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त म
तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव
धैर्य धन गदहा। —अज्ञेय।

ऐसे चित्रणों म यथार्थता हो सकती है पर क्या वे कला के शिव और सुन्दर तत्त्वों के भीतर परिगणित किये जा सकते हैं ? पति का अपनी पत्नी के प्रति संबोधन भी देखिये—

अब तुम ढल चुकी,
अब तुम चार चार बच्चों की मा हो
अब म —
—शरद देवड़ा।

यह भी आज क कतिपय नये पारिवारिक जीवन का यथार्थ हो सकता है पर कला म तो यह भद्देपन ही है। पारिवारिक जीवन का वास्तविक सौन्दर्य इसम निहित नहीं है। ऐसी रचनायें पढ़न वालों पर शुभ संस्कार नहीं डाल सकतीं, उनके हृदय को उदात्त नहीं बना सकती। नयी कविता को इस दुर्बलता से ऊपर उठना ही होगा। जब तक जीवन का विधायक संदेश नये कवि नहीं देंगे, तब तक उनकी कविता जन मानस का अंग नहीं बन सकेगी दुर्बलताओं से तो न्यूनाधिक रूप मे सभी ग्रस्त हैं, महत्व उनका नहीं है महत्व है उस शक्ति का जो उन्ह दुर्बलताओं से ऊपर उठाने मे योग दे सकें नयी कविता इस शक्ति और संदेश से बहुत कुछ विरहित है। ऐसी स्थिति म नये कवियों को अज्ञेय के आस्थावादी पथ का अनुसरण करना चाहिए—

हमम तो आस्था है कृतज्ञ होते
हम डर नहीं लगता कि उखड न जावें कहीं
—इन्द्र धनु रौंदे हुए य।

'आँगन के पार द्वार म अज्ञेय जी ने एक कविता मे कवि और काव्य का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए जो कुछ लिखा है उससे वर्तमान जीवन की विषमता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कविता इस प्रकार है—

मैं कवि हू
द्रष्टा, उन्मेष्टा
संधाता

मर्यवाह,
मैं कृतव्यय।
मैं सच लिखता हूँ
लिख लिखकर सब
झूठा करता जाता हूं।
तू काव्य
सदा वेष्टित यथाथ
चिर तनित
भारहीन, गुरु
अ-यय।
तू छलता है
पर हर छल म
तू और विशद, अभ्रान्त
अनूठा होता जाता है। —(पृ० ५७)

इस दृष्टि से नये कवि के लिए नया काव्य एक भानुमति का खेल होता जा रहा है। यह चिन्त्य दृष्टि है। नये कवियों को इसके भी ऊपर उठना होगा।

(७) कहीं कोई ठौर नहीं अनास्था

नयी कविता की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियों में एक नास्तिकता और आस्थाहीनता है। यह बौद्धिकता की अतिरेकतापूर्ण उपज है। धर्म और ईश्वर हमारे जीवन में दो ऐसे केन्द्र रहे हैं जहाँ मानसिक दृष्टि ने मानव समाज खण्ड-खण्ड होता हुआ भी अखण्ड रहा है किन्तु अब यह आधार शिला न होने के कारण वह निराधार हो गया है।

— लगता है, कहीं कोई ठौर नहीं,
आज का मनुष्य
गर्भ से धक्के देकर निकाला हुआ
ऋषि पुत्र"

—राजेन्द्र किशोर स्थिनिया अनुभव तथा अन्य कवितायें पृ०११

यह ठौरहीनता न तो नयी कविता के लिए शुभ वस्तु है और न मानव को। यदि सचमुच आज का समाज निराधार है तो कवि का दायित्व है कि उसके लिए किसी न किसी आश्रय का निर्माण करे, ताकि वह डूबने और रसातल जाने से बच सके।

"नहीं नहीं भय होगी रे जय, खुल जायेगा द्वार
अरे तुम्हारी बंधन डोरी टूटेगी हर बार।

आज निराधारता और आस्थाहीनता के विषम क्षणों में नये कवि को

गाय की उपर्युक्त पंक्तियों (हिन्दी रूपान्तर—हंसकुमार तिवारी) के स्वरों को दुह राना होगा यदि वह ऐसा नहीं करता तो मानव समाज तो ठौर पा ही लेगा नयी कविता को वही ठौर नहीं मिलेगा।

(८) क्षण के जीवन मे हो त मय

अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तु क्षणवादी दृष्टि है। यह भी क्षणभंगुर है। जीवन को क्षणों के सुखों मे नहीं, साधना म देखना है। यह अस्तित्ववादी मनोदृष्टि व्यक्तिवादी है। क्षण अपने आप म सपूर्ण, स्थायी, और सत्य नहीं हैं। फिर क्षण के जीवन म त मय होने का सदेश (अज्ञेय) समाज विरोधी है।

दृग युगल, करो सपन्न प्रणय
क्षण के जीवन म हो त मय।

यह भोगवादी जीवन-दृष्टि है। इसी कारण भोग उपासना का नयी कविता मे आधिक्य है—

आह! मेरी श्वास है उत्तप्त
धमनियों मे उमड आई है लहू की धार—
प्यार है अभिशप्त
तुम कहा हो नारि!

—अज्ञेय तार सप्तक प० ७७

या तुम्हे किस तरह बाध सकूगी
सुख की सीमा है
तुम्हारी राह म सदा ये
दो उरोजो के शिखर
न तान सकूगी। —सफेद चिड़ियाँ—विनोदचन्द्र पाण्डेय

वासना का प्रकृत स्वरूप भी देखिये—

मुझे तो वासना का विष
हमेशा बन गया अमत
बशर्ते वासना भी हो
तुम्हारे रूप से आबाद।
मेरी जिंदगी बरबाद—
इन फिरोजी होठो पर—। —भारती, द्वितीय सप्तक।

इस प्रकृतवादी दृष्टि के कारण नयी कविता म विरूपता आ गई है जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं।

(९) साप तुम सभ्य तो हुए नहीं—न होगे व्यग्य

नयी कविता म व्यग्य सृष्टि भी उल्लेखनाय है—व्यग्य प्रतीत म अज्ञेय की की साप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होग वाली रचना दृष्टव्य है।

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गव भरा मन्माता, पर
इसको भी पक्ति को दे दो।

अज्ञेय जा की उपयु क्त रचना को नयी कविता का मनीफेस्टा कहा जाता है। इसम समष्टिवाद की "यजना की गई है। नये काव्य का उपलब्धि म इसकी भी परिगणना की जायगी। कीर्ति चौधरी की निम्नाकित कविता भी इस प्रसग म देखी जा सकती है—

मैं मानू तो
अभि"यक्त मुझे करती है
जन मन की वाणी
मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी
तो दद हर सुख सौख्य भरे
यही नही कि अपने तन क, मन के
दुख ददों म
लिए भर। —कवितायें कीर्ति चौधरी, पृ० ८७

(१०) मौलसिरी की गाछ की ओर

नयी कविता म यत्र-तत्र अतियथार्थवादियों की मुक्त अनुषग सघन पद्धति का भा प्रयोग मिलता है—

मदान के किनारे वाली पटरी क उस
मौलसिरी क गाछ का ओर
जिसके नीचे की खुडढी घास म बठकर
एक दिन दो आने की विलायती मलाई की
बफ खाई थी।

यहा भावधार प्रवाह उखडा, असम्बद्ध और स्वचालित भावनाओं को द्योतक है। प्रपद्यवादी इस शली को विशेष प्रयुक्त करते हैं किंतु यह पद्धति मनोविश्लेषण क लिए तो उपयुक्त हो सकती है कला के क्षेत्र म यह विकृतियो का ही सृजन करती है। काव्य मे मुक्त अनुषग पद्धति उपेक्षणीय है यह बात मैं नही कहता, किंतु यदि इसका प्रयोग सहज भाव बोध के रूप म किया जाय, तो यह पद्धति उत्कृष्ट प्रगीतो के सृजन

मे साधक होती है। कीटस की Ode to Nightingale एक ऐसी ही उत्कृष्ट रचना है जिसकी मौलिक प्रति म शायद ही कही एकाध शब्द परिवर्तित किया गया हो। पर नयी कविता म इस पद्धति के द्वारा सहज सौ दय और भाव बोध को प्रस्तुत न करके अवचेतन मन की स्वप्नावलियो को अंकित करने की चेष्टा की जाती है। यह भी प्रकृतिवाद की कला के क्षेत्र म एक अनधिकार परिणति है।

तीसरे तार सप्तक की भूमिका मे अज्ञेय जी न यह तथ्य स्पष्ट कर दिया है कि नई कविता मे प्रतिभा सम्पन्न कृतिकारो का अनुधावन करने वाली स्वल्प पूँजी वाला 'प्रतिभायें अनेक हो गई हैं, जिनके कारण उसका वास्तविक स्वरूप भ्रांतियो से भर गया है। हमे उनके इस वक्तव्य पर सतोष है कम से कम वे भ्रांतियो का अस्तित्व स्वीकार तो करते हैं।



६ | साठोत्तरी काव्य : अकविता, युवा-लेखन

[१] बदलते सन्दर्भों में नये मानव मूल्य

आज युग-बोध, आधुनिकता, युवा लेखन की समस्यायें आदि विषयों पर जब चर्चा की जाती है तब उसका सीधा सा अर्थ होता है—इस युग के मानव की समस्यायें। इसे दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं—बदलते हुए संदर्भों में मानव के नए मूल्य युगीन जीवन मूल्यों और वस्तु स्थितियों का निम्नांकित कविता में अच्छा चित्रण किया गया है—

हम बरगद के झूमते हुए तने
हम अनबुझी चिनगारी से भीतप्रस्त
हम गंधहीन अगरबत्ती,
हम धूल पुल जलने वाली एक मोमबत्ती,
हम गुलदस्ते में सजे हुए फूल,
हम सरिताओं के डूबे हुए कूल
हम मीठी नीम की टूटी डगाल,
हम मूरत से खसी हुई माल
लहरों पर लहरें, जीवन गति मन्द
सीपियों में पल रहे घोंघे और शंख
जीवन में खून से नाखून आज लम्बे हैं
हम उन मीनारों के टूटे हुए खम्बे हैं,

आज का मानव आश्रयहीन भीतप्रस्त, गंधहीन, जलनपूर्ण, आडम्बरमय, जीवन की आशा में टूटा, लक्षित, क्षुधित, अनन्त भावनाओं और वासनाओं को सजोये, हिंसक और खण्डित व्यक्तित्व वाला है। उसका यह विकास या रूपान्तरण सहसा नहीं आधुनिक जीवन की विकासशील यांत्रिक स्थितियों के कारण हुआ है। काव्य कभी जीवन निरपेक्ष नहीं रहा, वह सापेक्षित वस्तु है अतएव उसमें इस प्रकार का चित्रण उसके जीवंत होने का लक्षण है।

काव्य के ये ही स्वर विविध रूपों में विभिन्न युवा कवियों की कविताओं में हम आज आत्यंतिकता के साथ प्राप्त होते हैं। युवा पीढ़ी का तात्पर्य साठोत्तरी

पीढ़ी से लिया जाता है। इन कवियों के सामने आधुनिक युग बोधों की विकरालता अधिक तेजी के साथ प्रगट हो रही है। आज अधिक तेजी के साथ यांत्रिकता, बौद्धिकता, शिक्षित बेकारी असंतोष, क्षोभ, भ्रष्टाचार, पक्षपात, शोषण, मानसिक दासतायें और व्यक्तित्व का विघटन बढ़ रहा है। प्रयोगवादी कवियों को इनका सामना इतनी तेजी के साथ नहीं करना पड़ा था। वे तो राहों के अन्वेषी ही रहे, नये कवियों को राहें मिली पर जीवन की अस्थिरता तथा ऊबड़ खाबड़ता आदि के कारण ये कवि 'अंधे युग' के 'आंगन के पार द्वार' नहीं खोज सके और जब ये द्वार खुले तो उनके हाथ से नयी कविता निकल चुकी थी। उन्हें प्राप्त हुआ—अकविता का परिवेश।

[२] अकविता आत्मा की अमुक्तावस्था

सैद्धान्तिक रूप में अकविता या एन्टी पोयट्री का अर्थ है—वह रचना जो वस्तु और शिल्प योजना की दृष्टि से परम्परागत अर्थ में कविता नहीं है। वह कविता है क्षणिक संवेदनाओं में। *वह आत्मा की अमुक्तावस्था का दूसरा नाम है।* उसमें रस के स्थान पर असंतोष है संविद् विश्रान्ति की जगह क्षोभ और रचना के नाम पर विघटन और विद्रोह के स्वरों का ऊहापोह है। यह धुरीहीन टूटी, पंगु या परम्पराहीन पीढ़ी अपने विकलांग को ही जीवन की समग्रता मानकर चला है, यह आत्मरत पीढ़ी अपने को ही सृष्टि का मूल केन्द्र समझने लगा है।

[३] नित नये वादों का आन्दोलन

अकविता के युग में जितने कवि आये वे अपने साथ अपना एक वाद लेकर आए। वादहीनता का नारा लगाने वाले ये कवि हीनवादी बने और वादों का एक नया आन्दोलन हिन्दी काव्य के क्षेत्र में उमड़ा है। यह कभी ठोसवादी बनी कभी ताजी या टटकी, कभी प्रतिबद्ध कभी सचेतन कभी अचेतन, कभी दिगम्बरवादी, कभी भूखीपीढ़ीवादी, कभी आत्मरतिवादी कभी यमुत्सावादी कभी अकारवादी और कभी अपत्रान्ति। इन अकवियों के लिए पटे ट्यूब का पट पट या टाइपराइटर की अनर्गल टिप टिप ही मधुर संगीत और अनजाने छन्दों की गुन गुन बनी और इन्होंने अर्द्ध व्यंजन या संयुक्त व्यंजनों की अनवरत पुनरुक्तियों के द्वारा अजीब गरीबवादी अकविताओं की रचना की। धन ऋण विराम पूर्णविराम, रिक्त चिन्ह अवतरण चिन्ह आदि को लेकर *मनोरंजक चित्र काव्य भी लिखे गये अर्थात्* इस कविता की एक प्रमुख विशेषता बनी एन केन प्रकारेण पाठकों को भड़काने की प्रवृत्ति।

निश्चित ही आज युग बोधों को नकारने की सामर्थ्य किसी में नहीं है पर समझदारी ही विशेष हो गई हो यह बात भी नहीं है।

[४] सूर्य की नयी लालिमा नया युग बोध

कुछ युवा कवियों ने विवेक के साथ युग चित्रों को प्रदर्शित किया है जिनके

माध्यम से हम आज की वस्तु स्थिति का बोध करने के साथ साथ कल की आने वाली कविता का भी पूर्वानुमान कर सकते हैं।

किताबों के पहाड़ों से घिरे
लालटेन की रोशनी में
अक्षरों पर झुके, ओ सिर !
जरा पूरब की खिड़की तो खोल
देख
आकाश रंग गया है
सूरज की लालिमा से।

श्री किरण जैन का यह 'नया युग बोध' है। उनका कवि अक्षरों के संसार से परे, दिमाग की खिड़कियां खोलकर पूर्व में उदित होने वाले बाल रवि की अरुणिमा को देखने का आत्मसंबोधन कर रहा है। खिड़की खोलकर पूर्व की ओर रंगे हुए आकाश को देखना ही उसका नया युग बोध है। यही वह नया आयाम है जो युवा पीढ़ी को विकास की नई दिशा दृष्टि प्रदान करता है। आज सचमुच युवा पीढ़ी को पूर्व में अर्थात् भारतीय संस्कृति के संदर्भ में उदित होने वाले नए सूर्य का स्वागत करना है। सूर्य जो आस्था का प्रतीक है, अंधे युग को समाप्त करने का संकल्प है, भटकों को राह देने वाला, बेकारों का काम और शिथिल भुजाओं तथा बन्द पखों को मुक्त आकाश प्रदान करने वाला है। वर्तमान के प्रति असंतोष की भावना और नए मोड़ों को आशा की दृष्टि से देखना—यह आस्थावाद नए काव्य को संजीवनी प्रदान करने में कृतकार्य हो सकता है।

[५] हम मरणासन्न मनुष्य के प्रतिनिधि

एक अन्य कविता में हम का विश्लेषण देखिए—

हम आतंक, विप्लव षड्यन्त्रों और
कालाबजारी में साझेदार
याज्ञिक हैं हम हमारे फण भी
दूसरों को निगलने के लिए
हरदम उठे रहते हैं
पर क्या होगा उस भगवान का
जो हमारे सबके हृदय में मरणासन्न पड़ा है
कहीं हम उसकी लाश भी
मंदिरों को नीलाम न कर दें।

अर्थात् आज हम वह सभी कर रहे हैं जो एक अमनुष्य कर सकता है। हमारे

सबके हृदय मे मनुष्यता मरणासन्न स्थिति मे है। कम से कम हम उसकी लाश मंदिरों म नीलाम कर पसे वसूल न करें। हम मनुष्यता की लाश ढो रहे हैं मे यह अवबोध होना जावन रचना की एक दिशा है। सम्भव है, सजीवनी मिलने पर वह हमारे जीवन म पुनरुज्जीवित हो सके। वर्तमान जीवन को स्वीकारते हुए भावी आशा की यह सूक्ष्म किरण नए काव्य का विकास के नए सोपान प्रदान करने म सक्षम सिद्ध हो सकती है।

[६] अब कहीं कोई यात्रा नहीं—गतिहीनता

वतमान जीवन की गतिहीनता और निरर्थकता का चित्रण करते हुए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने एक जगह लिखा है—

> अब कहा कोई यात्रा नही है,
> न अथमय, न अथहीन,
> गिरने और उठने के बीच मे कोई अतर नही।

मनुष्य आज अपने केन्द्र पर बडी तेजी के साथ घूम रहा है, इतना तेजी के साथ कि हर वस्तु का रंग तो गया है और वह भी दूसरा के लिए अपना रग और आकार खो चुका है पर उसकी ये परिक्रमायें उसे कहाँ ले जा रही हैं ? विकास कहाँ हो रहा है ? मनुष्य जहा था तहाँ है कोई अथमय उपलब्धि उसके पास नही। उन्ही की एक दुघटना कविता देखिए—

[७] एक त्रिकालिक दुघटना

> एक अदश्य इमारत मेरे ऊपर गिर पडी है
> जो 'नही है' उसके बोझ से मैं दब गया हूँ।
> एक अदश्य नदी मुझ पर फल गई है
> जो 'नही होगा उसकी धार म मैं बह गया हू।
> एक अदश्य सडक मेरे नीचे से निकल गई है
> जो 'नही था' उसकी चपेट से मैं कुचल गया हूँ।

अर्थात भूत, वतमान और भविष्य इन तीनो की निरथक सम्भावनाओ से आज का मानव कुचल रहा है। जो न था, न होगा और न है—फिर भी त्रस्त आज का मनुष्य केवल सम्भावनाओ के कारण शांति प्राप्त नही कर पाता। यह अस्थिर मन स्थिति युवा पीढी के लिए घातक सिद्ध होगी। हम असमथताओ के नही व्यथ सम्भावनाओ के पाटो म पिस रहे हैं।

[८] सारे सन्दर्भों से कटे हुये

इसी बात को कुछ बदले हुए सन्दर्भ मे शेरजग गग ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सारे मसूबे रख आए हैं ताक पर
हम सूने आगन से
धूल ढके दर्पण से जीर्ण हैं।
एक वक्त गुजर गया,
अपने से बात नही कर पाये
मरने को मिलता अवकाश नही,
हम ऐसे जीवन से भर आये
या ही दुर्घटना से घटे हुए
सारे सन्दर्भों से कटे हुए जीत हैं।

यहा वर्तमान जीवन के प्रति क्षोभ है, ऐकान्तिकता और अतिशय व्यस्तता है। जीवन से ऊब और सन्दर्भों से कटन की अकुलाहट है। युवा कवि और आगे बढकर इन कटे सन्दर्भों का जोड सकने म समय हो सकते हैं। उनके समक्ष अभी इस दिशा म भी पर्याप्त अवसर है।

[९] नागदेश के अधिवासी–व्यग्य

अकविता की एक और सशक्त विशेषता है उसकी व्यग्य क्षमता। जहा व्यग्यकार निर्वैयक्तिकता क गुण से युक्त हैं वहा निश्चित ही उनके व्यग्य प्रभावशाली और तिलमिलाने वाले बन गये हैं, शेष स्थानों पर उनम रूखापना और गद्यात्मकता है। यहा हम कुछ स्वस्थ व्यग्य कविताओ के उदाहरण दे रहे हैं जिनसे युवा कवियो को इस दिशा म नई दिशा सकेतो का अवबोध हो सके।

आज हम सब नागदेश के अधिवासी
हमारे चारो ओर नाग ही नाग हैं
कुछ काले हैं कुछ कबर कुछ अजगर
हम उन्हें दूध देकर पाल रहे
टेककर माथा सिर पर उठा रहे ?

यहा नाग भ्रष्टाचार का प्रतीक है। भ्रष्टाचार का विरोध न करना, चुपचाप विषपान करना भी एक भ्रष्टाचार है। इस तरह आज हम प्रत्यक्षत भले ही भ्रष्टाचार न करें, किंतु सक्रिय रूप स उसका विरोध न करने के कारण उसे प्रोत्साहन अवश्य दे रहे हैं।

पाक के सन्दभ म विमलेश का अधोलिखित व्यग्य भी युगीन जीवन की विड म्बनाओ को अच्छा तरह प्रस्तुत करता है—

जाओ, दो आने का तेल लाओ,
और टूटी कमर पर मालिश कराओ

क्योंकि तुम्हारे हिमायतियों ने
पट्टी तुम्हारी कमर पर बांधने के बजाय
अपनी आंखों पर बांध ली है
अपने मन में भी देखो कितनी घायली है।

आज का अपनापन भी विसंगतियों से भरा हुआ है और साठोत्तरी काव्य इन्हीं के विश्लेषण का प्रयास है।

[१०] आत्महत्या के विरुद्ध

डा० देवराज की 'आत्महत्या' का एक प्रसंग यहाँ और दृष्टव्य है। ६ छोटी कविताओं में विभक्त यह आपकी एक लम्बी सी कविता है जिसका अंतिम अर्थात उपसंहारात्मक अंश यहाँ प्रस्तुत है—

तुम्हारी खुदकुशी करने की बात मेरे दोस्त,
न मुझे पसन्द है न तुम्हारी भाभी को।
फिर भी कानूनी पाबंदियों के बावजूद
यह मानना ही पड़ेगा
कि एक जनतन्त्री नागरिक होने के नाते
अपने जीने मरने के जिम्मेदार तुम हो
न कि इस या उस लोक की सरकार।

इन पंक्तियों द्वारा आज के आदमी के बीच औपचारिकताहीन सम्बन्धों और संवेदनाहीन बौद्धिकता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अगर दोस्त आत्महत्या करता है, तो कवि की पत्नी को नाहक ही दुख होगा उसे कितना कुछ रोना पड़ेगा, महज इसी लिए वह आत्महत्या न करे यह तर्क भी कम वजनदार नहीं। यह व्यंग्य युगीन मानवीय सम्बन्धों की विकलांग स्थितियों को अनावृत कर रहा है। यदि इसे हम बौद्धिकता कह सकें, तो यह साठोत्तरी पीढ़ी की एक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है।

[११] कुछ भी सही न होने की पीड़ा

साठोत्तर युग में न सही होने की स्थितियों के भी जो चित्र अंकित किये गये हैं वे भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं—

लोग देश के उत्तर से दक्षिण तक, और पूरब से पश्चिम तक
कुछ भी सही न होने की तनी हुई रस्सियों में
लटके हैं! लटके हैं!! लटके हैं!!!
भूख से मरते तड़पते, लोगों को
कहा गया वे लोग अधिक अन्न उपजाने के महान
कार्य में लगे हैं, आन्दोलन नहीं करते हैं

और ये रंग रोगानदार मुखड़े
चाँद के टुकड़े अपने लिए पूरी घृणा तयार कर चुके हैं
और लोग उन पर बेझिझक नाक साफ करते हैं
'नाक साफ करते हुए लोग' भून दिये जाते हैं गोलियों से
व्यवस्था, कानून और अनुशासन के नाम चढ़ाकर
आफेह सर दर्द करता है क्या यह देश
उन्हें सौंप कर हम कहीं मर जायें ? —कुंतल कुमार जैन।

कुछ भी सही न होने की यह पीड़ा गलत भाषणबाजी, चाँदी के चाँद से टुकड़े मुखड़े, अनुशासन के नाम पर अत्याचार, श्वासा के भीतर त्रास, तमाम आदर्शों के नकाबों के पीछे-पीछे मूठों के द्वारा फैलाई गई अव्यवस्थायें और हर मन की अंधी सहमी बदबूदार गुफायें अब आज किसी का भी अजनबी नहीं हैं साठोत्तरी पीढ़ी उन्हें अपना इष्ट बना कर चल रही है किन्तु यह कहना नितान्त भ्रम है कि उसमें जीवन दृष्टि का अभाव है, यह कोरी समकालीन है, आधुनिक नहीं, उसमें ऐतिहासिक चेतना नहीं—उसका सारा संघर्ष एक अच्छे मानव के लिए ही है, उसका यह आत्म संघर्ष एक ऐसा महाभारत है जहाँ युद्ध के बिना मुक्ति नहीं कौरवों की विशाल वाहिनी के बीच सैकड़ों अभिमन्यु आज कुचले जा रहे हैं किन्तु यह कम गौरव की बात नहीं कि वे संघर्षरत तो हैं।

पौराणिक सदर्भों और ऐतिहासिक चेतना सम्पन्न कीर्तिलता की ये पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—"जल में उपजे और उसके कीचड़ को चूसकर पनपने वाले ओ कमलकुल श्रेष्ठ! शेषनाग पद पर सुशोभित हो मक्खियों की तरह क्या तुम भी जन विदेह बन गये ? तो अब मेरा अभिशाप लो कल ही दल्बदल कोई अगस्ति, तुम्हारे इस सागर का आचमन कर जायेगा और तुम्हारा पाला हुआ चमचों सा शेषनाग, अवसर पाकर तुम्हें ही डस जायेगा। (आज तुम हो, कल इस शय्या पर कोई दूसरा आ जायगा।) इन सारी कविताओं को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि अकविता कहे जाने वाले रचनाकार सदर्भों से कट हैं, व जीवन विकास की शृंखला से जुड़े हैं, वे भुक्तिवादी नहीं, मुक्तिवादी हैं च्युत संस्कृत नहीं ऐसा उन्हें मानने का भ्रम पाला गया है।

(१२) भूखी पीढ़ी काम परिवेश में

फैशन परस्ती, अंध-अनुकरण, अज्ञान और आत्मप्रदर्शन के मोह में अकविता के आन्दोलन में ऐसा भी बहुत कुछ लिखा गया है जो हेय है कुत्सित है जीवन की अति-यथार्थ स्थितियों का नग्न वृत्त है, प्रतीकात्मक और फन्टेसियों की असंगतियों से भरा

हुआ है। विशेपरूपेण काम के क्षेत्र म भूखी पीढ़ी ने जिस नग्नता का इजहार किया है वह निन्दनीय है। यथा, शुभा ने रजस्राव से कुल्ला करना, पतित रज (लिक्र) मे स्नान करने, उसकी एयरकंडीशड ओवरी म सोने, फर्टिलाइज्ड होने और इससे भी अधिक खुले शब्द और चित्र साहसिकता के नाम पर भले ही किन्हीं की प्रशंसा के पात्र हो किन्तु व्यक्ति सत्य होते हुए भी कविता के सामाजिक परिवेश में ये अनपेक्षित हैं। आक्रोशी मुद्राओ में भी कुर्सीधारियों को अश्लील गालियाँ देना न तो संवेगो का विवेकीकरण है और न भावों का बौद्धिकीकरण। अकवियो का यह अ-यक्तित्व और अमानवीय रूप निश्चित ही साठोत्तरी पीढ़ी का एक प्रमुख स्वर रहा है किन्तु है वह उपेक्षणीय ही।

(१३) एक कुत्ता रात भर रोता रहा

न जाने कहाँ खो गई मेरी नदी जिसम मैंने नावें चलाई थी' (श्रपिता अग्रवाल) मैं फिर दहकूँगा ढलते सूरज की तरह और छाऊँगा अपनी रक्ताभा लहरो पर, पेडो पर, चट्टानो से निकल बहते झरनो पर (सुरेश ऋतुपर्ण) आदि म जो रामांटिक दृष्टिकोण और भावी जीवन के स्वप्ना की रूप रेखायें हैं (रोमानी) वे भी परम्परा से जुडी हुई हैं कही नही चिर परिचित प्रतीको को उठाकर कही गई ये बातें भी सहज ग्राह्य हैं। एक कुत्ता रात भर रोता रहा, मेरे आसपास और मैं सोता रहा, फिर दिन भर मैं हाफता रहा, रोता रहा और वह कुत्ता कीचड मे पूंछ दबाय सोता रहा (अशोक अग्रवाल)—इस कविता मे दिन मे आदमी को कुत्ते के स्तर पर हाफना और रोना और फिर रात को कुत्ते का रोना—और इस तरह मानवीय जीवन की यह अनवरत क्रियाशीलता भी सहज ग्राह्य है। किन्तु वजरंग बिश्नोई जैसे अकवियो की भी कमी नही जिनकी कविताओ का अर्थ (अनर्थ) समझाना सरल नहीं—आओ तम्हे दिखायें बिजली के लटटुआ से झरती रगीन रोशनियो की साजनी करवट के नीचे काठ के मच पर सामने से सरत रेखाओं सी उग आई दो धारी कटारो के इस चमचमाते हुए ज्यामितिक वन को –

(१४) केवल पर्याय हाथ मलने का

एक दूसरा कविता का उदाहरण देखिए—

एक इंच भूमि जहाँ रहने के लिए नही
कोई कुछ भी अपना कहने के लिए नही,
सचाई पर पर्दा डालकर
मैं अपना देश उसे कहता हू
धुए को गात बनाकर मैंने गाया है
एक बार सुना झूठ अब तक दुहराया है

अथ कुछ नहीं दिन भर चलन का
केवल पर्याय हाथ मलन का
अपने हाथो दुख को मारकर
रोज रोज नई मौत सहता हू

यह 'एक देश गीत' है। आधुनिक युग के अपने देश पर इसमे मार्मिक व्यंग्य समाहित है। जिस देश मे अपना कहने लायक कुछ भी नही, रहने को छप्पर नही तन ढाकने के लिए वस्त्र नही, खाने को दानानही वही हमारा देश है। जहां 'कोई बात नही करता, बात नहा सुनता, कोई स्वजन नही, सब शोषण म मग्न हैं यह हमारा देश है। जहा के प्राचीन वभव और जय स्मतिया को दुहराता रहा, जिसे अनन्त को भी सहारा देने वाला रहता रहा, पर जो अपने देशवासियो को भी जीने की सुविधा न दे सका वही हमारा देश है। निश्चित ही ये व्यग्य आँखें खोलने वाले एव अंधविश्वासों पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करने वाले हैं। इस अथ मे नयी पीढी अद्य युग को नयी वाणी और नय स्वर परिवश प्रदान कर रही है। इस दिशा मे आगे बढकर अभी बहुत कुछ ऐसा ही अर्जित किया जा सकता है।

युवा लेखक आज अपनी अधिकाश शक्ति विवस चीत्कार आत्मसघष, घुटन, कटु वातावरण से ऊब, छटपटाहट, अनास्थामयी जीवनी शक्ति तथा अतृप्त काम पिपासाओ के चित्रण म लगा रहा है। निश्चित ही आज इनसे विद्रोह की आवश्यकता है। पर ये उपादान अपने आप म साध्य नहा अच्छे जीवन की उपलब्धि के साधन हैं। किन्तु हमारा आज का युवा वग पतझड की गध ग्रीष्म का उच्छवास मरूभूमि की तपन और जीवन की वितृष्णा का प्रतीक बन रहा है। वस्तुत आज के जीवन की गति विधिया इतनी विकट नही हैं जितनी कि वे प्रकट की जा रही हैं। ये सुख दुख पहले भी आख और मन के खेल रहें हैं और आज भी सभव हैं। निश्चित ही आज शहरो के जीवन म अपूव परिवतन आया है किन्तु अभी उनके सुधार की सम्भावना है। अभी भी 'आगन के पार द्वार' खुले हुए हैं 'नाव के पाव' टिकाने के लिए अभी भी जगह है, 'सूनी नाव अभी भी मनु के होने की सम्भावनाओ से भरी हुई है' 'चांद का मुख टेढा अवश्य दिखाई देने लगा है किन्तु अभी भी अकेले कण्ठ की पुकार' म शक्ति है 'काठ की घटियाँ अभी भी बज सकती हैं' 'अभी भी आत्मजयी' आत्महत्या के विरुद्ध हैं और व इन विपम परिस्थितियो को अधिकार मे कर सकते हैं। युवा लेखको को केवल सज्ञाहीन दशक नही बनना है वरन इसके आगे बढकर उन्हें अपने परिक्षेत्रो म नय आयामों की शोध करनी है। उनके द्वारा शोधी गई दिशायें ही नये काव्य को विकास की सम्भावनायें देंगी और युवा कविया को इतिहास क पृष्ठो म स्थान मिल सकेगा अन्यथा आज का समस्त लेखन परस्पर और आत्म सघष मे घुट पिस कर समाप्त हो जायेगा।

युवा लेखक युयुत्सा की भावना को भी अधिक प्रश्रय दें पर यह भावना व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर अवमूल्यन, कथनी और करनी मे विभेद, मोहभग, असतोष, किंकर्त्तव्य विबोध, अधेरापन, भटकाव, अनुत्तरता, सकीणता, यांत्रिकता, विद्रोह के खोखलेपन, अतियथार्थता आदि के विरुद्ध हो। आज का युवा लेखक एक बधे हुए मुहावरे मे भी बधता जा रहा है, उसे आगे बढकर इन सकीर्णताओं को तोडकर सघषमयी पर निर्मल जीवन धारा की सजना मे अपनी शक्ति व्यय करना है।

परिशिष्ट

[यहा पश्चिम की उन कलावादी काव्य-प्रवृत्तियो का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जिनका छायावादोत्तर हिन्दी काव्य-प्रवृत्तियो पर गहरा प्रभाव पडा है।]

अतश्चेतनावाद

सिगमड फ्रायड (१८५६–१९३९ ई०) इसके जनक हैं। इनके अनुसार जीवन के सभी कामो के मूल म 'काम वासना' प्रमुख वस्तु है। बाल्यकाल मे यह काम वासना मातृरति (Oedipus Complex) के रूप मे परिणत हो जाती है। बाल्यकालीन ये ही अतृप्त काम-वासनायें आगे चलकर व्यक्ति का चरित्र निर्माण करती हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य का मानस मुख्याश म अवचेतन है, और ईषत् मात्रा मे चेतन। अचेतन मस्तिष्क मे ही वे काम वासनायें छिपी पडी रहती हैं, जिनकी पूर्ति व्यक्ति अपने दैनदिन जीवन म सामाजिकता, रीति रिवाज, धर्म या समाजभय के कारण नही कर पाता, अपने चेतन मस्तिष्क के द्वारा व्यक्ति इन सामाजिक और सास्कृतिक बधनो की विरोधी वत्तियो का दमन कर देता है किन्तु ये काम वासनायें मरती नही प्रत्युत अचेतन मस्तिष्क म जाकर अपने प्रकाशन का समुचित अवसर खोजने लगती हैं। सुअवसर पाकर ये ही मनोव्याधियो, स्वप्नो, दिवास्वप्नो, साहित्य, कला आदि के रूप मे व्यक्त हो जाती हैं। कला के रूप मे जो काम वासनायें व्यक्त होती हैं उनम और स्वप्नो मनोव्याधियो के रूप म व्यक्त होने वाली दमित वत्तियो मे कोई तात्विक भेद नही है, हा एक को कुरुचिपूर्ण और दूसरे को सुरुचिपूर्ण कहा जाता है। कला म कलाकार अपनी कल्पना द्वारा अपनी अतृप्त, कुठाओ को छद्ममय आवरण दे देता है जिससे उनका प्रकाशन बिना हिचक के किया जा सके। यह छद्मपूर्ण आवरण देना ही कलाकार की सृजनशीलता का रहस्य है। यही छद्ममय प्रकाशन कला मे उदात्तीकरण के नाम मे पुकारा जाता है। यही छद्ममय आवरण कुठाओ, काम वासनाओ का कलात्मक रूप कलात्मक सौंदर्य कहा जाता है जो पाठको के आह्लाद का कारण है। यह प्रेषणीयता भी दमित काम भावनाओ की पाठक मे उपस्थिति के कारण रस पेशल होती है। पाठक या श्रोता अपनी ही दमित कुंठाओ की छाया जब दूसरी जगह देखता है, तो वह आह्लादित हो उठता है। कलाकार अपनी अचेतन पापानुभूतियो से परिचालित होकर काव्य-रचना मे प्रवृत्त

माध्यम से वह अपनी दमित काम वासनाओं का प्रगटीकरण करके उनके दश से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार फ्रायड के अनुसार कलाकार का मानस रुग्ण रहता है और काव्य सृष्टि आत्मोपचार का एक साधन है। इस प्रकार काम भावना या (लिबिडो) को फ्रायड जीवन व्यापिनी शक्ति मानता है, जिससे छोटे बड़े सारे मानवीय क्रिया-व्यापार परिचालित होते हैं।

एडलर और काल युग भी अवचेतनावादी विचारक हैं किन्तु ये फ्रायड से किंचित मतभेद रखते हैं। एडलर विकृत काम वासना को मूलभूत शक्ति न मानकर हीनता की भावना (इनफारियर काम्प्लेक्स) को सर्वस्व मानता है। यह शारीरिक या अन्य हीनताओं के फलस्वरूप बाल्यकाल से ही व्यक्ति के अवचेतन में बद्धमूल हो जाता है। उसी के निवारणार्थ, क्षतिपूर्ति के रूप में व्यक्ति के जीवन में सत्ता और महत्वाकांक्षाओं की सृष्टि होती है। साहित्य और विविध कलायें, हीन भावना की ग्रंथि से उत्पन्न क्षति पूर्ति का साधन हैं। बालक में बुद्धि विकास के मूल में भी यही वस्तु रहती है। अभाव की अनुभूति व्यक्ति को ग्लानि से भर देती है प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्ति उस अभाव या हीनता की भावना को नष्ट करने के लिए अग्रसर होता है। एडलर के अनुसार जो व्यक्ति जितना अधिक मेधावी या प्रतिभा सम्पन्न होगा उसके हृदय में उतनी ही अधिक ग्लानि या आत्महीनता की ग्रंथियां होती हैं। आत्म ग्लानि ही प्रभुत्व सत्ता को उग्र करती है। इस प्रकार व्यक्ति शक्तिशाली प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः शक्तिहीन होते हैं। उसकी क्षतिपूर्ति का प्रयत्न वैयक्तिक स्वार्थ परायणता और अहंकार का हेतु होता है। इस प्रकार का व्यक्ति अधिक प्रतिक्रियावादी और स्वच्छन्दतावादी होता है। एडलर का यह भी कहना है कि साहित्य कला, शिक्षा, मनोविज्ञान आदि का लक्ष्य व्यक्ति या कलाकार की मिथ्या अहमूलकता को नष्ट करके विश्व बन्धुत्व या सामाजिक भावना का विकास करना भी है। दस्तोयेवस्की ने यही कार्य करके साहित्य सर्जना के क्षेत्र में महानता प्राप्त की।

युग जीवनेच्छा को मानवीय जीवन के विकास की मूल धुरी मानते हैं। उनके अनुसार जीवनेच्छा ही व्यक्ति में जीवित तथा अमर रहने की प्रबल भावना का सृजन करती है। यह वासना लोक वित्त और पुत्र– इन तीन मार्गों से अभिव्यक्त होती है। साहित्य और कलायें सदा जीवित तथा अमर रहने की लालसा के ही प्रतिफलन होते हैं।

युग ने काम वासनाओं तथा हीनता की ग्रंथियों को जीवनेच्छा में ही समाहित कर लिया है। उनके अनुसार जीवनेच्छा ही इन दो रूपों में अभिव्यक्त होती है। इन्हीं को आधार बनाकर उन्होंने आत्ममुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्वों का विभाजन भी किया है। अन्तर्मुखी व्यक्तियों में प्रभुत्व कामना प्रमुख रहती है बहिर्मुखी में काम वासना। प्रथम शासक या नेता होना चाहता है, दूसरा शासित। प्रथम, अपने को

सबसे अधिक महत्व देता है, दूसरा, दूसरो को। ये दोनों ही वासनाएँ प्रत्येक व्यक्ति मे रहती हैं किन्तु किसी में कोई कम, कोई अधिक या प्रबल रहती है। इस प्रकार युग का मत समन्वयवादी है ये काम-वासनाओ को फ्रायड की तरह दमित न मानकर अविकसित मानते हैं। युग कलाकार के हृदय म दो विरोधी प्रवत्तियों का द्वन्द्व मानते हैं। एक ओर उसका व्यक्तिगत जीवन और वैयक्तिक-सुख साधन है, दूसरी ओर सजना की उदात्त प्रेरणा है। इनके परस्पर द्वन्द्व से कलाकार विकल रहता है, कला मे 'सामूहिक अचेतन' की मूल प्ररणा काय करती है। यह 'सामूहिक अचेतन' व्यक्तिबद्ध न होकर प्राणि मात्र स सम्बन्धित कल्याण-भावना है। चेतना इसी सामूहिक अचेतन से उत्पन्न होती है। युग के अनुसार जब किसी व्यक्ति या युग की चेतना समय के अनुकूल नही रहती तो उसकी क्षतिपूर्ति के लिए सामाजिक अचेतन सजग रहता है।

इस मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित साहित्य म यथायवादी शली का अनुगमन करके जीवन की कुण्ठाओ, दमित काम वासनाओ, निराशा, उदासी, विश्व खलित मन स्थिति को काय का वर्ण्य बनाया गया। इस प्रकार यौन विचारो और दमित वासनाओ तक कलायें सीमित हो गई। लेखक अपनी विलासिता की पूर्ति करना अपना वक्तव्य समझने लगे और साहित्य के क्रमागत सभी प्रतिमान उपक्षित हो गये। जो काय अभी तक छद्मवेश म होता था अब वह खुले आम और नग्न रूप म होने लगा। फलत दुबल, अन्तर्द्वन्द्व प्रधान और चरित्रहीन पात्रा और नायको को प्रश्रय दिया गया, उन्ह साहित्य का नायकत्व दिया गया और वैयक्तिक काम वासनाओ की पूर्ति को सवस्व मानकर क्षणवादी मनोदृष्टि को परमता प्रदान का गई। क्षणो क सुखो म ही जीवन का सार समझा जान लगा। कलाकार अचेतन रूप से नही प्रत्युत सचेतन होकर अपनी पापानुभूतियो का प्रकाशन करन लगे। कवि की सत्ता अत्यन्त ऐकान्तिक और मनोमयी हो गई। वयक्तिकता और अवचेतन की दमित, सडी गली वस्तुओ को वाणी देना ऐसे कलाकारो का चरम लक्ष्य बन गया। फलत इस साहित्य का देश-विदेश सवत्र गहरा विरोध हुआ। रोजेस फ्राई न लिखा है कि फ्रायड के सिद्धान्त केवल अधम साहित्य का ही चर्चा करने मे समथ है उत्तम साहित्य उसकी पहुच के परे है। यह एक कलावादी सिद्धान्त है। हिन्दी के सभी प्रयोगवादी कवि इस मत से प्रभावित रहे हैं।

प्रतीकवाद

प्रतीकवाद का जन्म फ्रच काव्य मे उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दशको मे हुआ। थोडे ही समय म इस कलावादी सिद्धान्त का प्रभाव साहित्य तथा कलाओ के सभी अगोपागो पर गहराई के साथ पडा। प्रतीकवादी फ्रेंच कवियो म बोदलेयर, वर्लेन, मलार्मे रेम्बो, एरी द रेन्ये वर्हेरेन, गस्ताव कान, क्लोदल, प्रूस्त, वालेरी आदि प्रमुख हैं।

इन कवियो का विश्वव्यापी प्रभाव पडा है। जर्मनी के रिल्के, रूस के ब्लोक, आयरिश कवि योटस, अमेरिका के हायान और ह्विटमैन तथा इग्लैण्ड के टी०एस० इलियट उनमे से कुछ प्रमुख हैं। इलियट अमेरिका के थे पर इग्लैण्ड म आकर बस गये थे।

जिस समय प्रतीकवाद आन्दोलन के रूप मे जन्म ले रहा था उस समय फ्रान्स मे कतिपय दुघटनाओ के पश्चात् तीसर गणतन्त्र (१८७० ई०) की स्थापना हो चुकी थी। शिक्षा का व्यापक स्तर पर निशुल्क रूप से प्रचार हो रहा था। इस समय समाज आभिजात्य वग तथा विस्तत जन साधारण के रूप म विभक्त था। साधारण वग नव चेतना के प्रकाश से पुरोहितवग तथा उसकी दुबलताओ से पूणत अभिज्ञ हो रहा था। इसम आभिजात्य तथा पुरोहित वग के प्रति प्रतिक्रियाएँ होने लगी थी। आभिजात्य वग भी इससे सजग हो रहा था और अपना प्रभुत्व कायम रखने तथा जनता म समादर पाते रहने के लिए प्रयत्नशील था। उसने प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक धार्मिक स्कूल खुलवाये जिनमे द्वारा उच्च धार्मिक शिक्षा का प्रसार काय प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार एक ओर जन सामान्य वग था और दूसरी ओर पुरोहित वग। साहित्य के रूप म जब ये वग ढले तो उनसे एक ओर यथायवाद का प्रवतन हुआ और दूसरी ओर प्रतीकवाद का। एक के जनक थ एमिल जोला और दूसरे क मलार्मे। जोला न भौतिक विज्ञान का आश्रय लिया और स्थूल, भौतिक यथाथ और प्रकृत वादी प्रवत्तियो को जन्म दिया। मलार्मे ने यथाथवाद या प्रकृतवाद का विरोध करते हुए सूक्ष्म अमूत सौन्दयपरक और प्रतीकवादी वत्तियो का प्रश्रय दिया।

तत्कालीन जन सामान्य की मनोवृत्तियो का सबल लेकर प्रकृतवाद फ्रान्स की धरती की उपज थी। वह आगस्त कौंत जिले तेन और रेनें असे समीक्षका तथा साहित्यिको की मनोवत्ति का सहज विकास था। इसके साथ ही प्रकृतवाद समसामयिक शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान विकासवाद और भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित नई शोधो से प्रभावित भी हुआ था। ईषत मात्रा म इसन इतिहास सम्बन्धी नये अनुसधानो से भी प्ररणा ग्रहण की। प्रकृतवाद ने यथाथवादी शली का अनुगमन किया। सामाजिक मनोवत्ति की प्रमुखता के कारण यथाथवाद ने कवियो की व्यक्तिनिष्ठता तथा उनके वयक्तिक सवेदनो को नही उभरने दिया।

प्रतीकवाद प्रकृतवाद के विरोध म प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित होने के कारण उनकी सभी मूल प्रवत्तियो का विखण्डन करने अग्रसर हुआ। उसने यथाथवाद की जगह रहस्यवादी शली को गृहीत किया और तत्कालीन पारनशनिज्म (Parnassianism) का विरोध किया। प्रतीकवाद न अपने देश से बाहर की विचारधाराओ से भी प्रेरणाएँ ग्रहण की। कांट फिख्टे, शेलिंग हीगल, शापेनहावर आदि उनकी प्रमुख

प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। पारनेशनिज्म धारा के कवि—गातिया लेकांत, हरदिया आदि यथार्थ वस्तुमूलकता को लेकर अग्रसर हो रहे थे। मलार्मे ने उनका विरोध तथा अपने प्रतीकवाद का समर्थन करते हुए लिखा है कि "पारनेशन-कवि विषय वस्तु को उसके यथार्थ रूप में ग्रहण करते हैं और उसी रूप में हमारे सामने प्रस्तुत भी कर देते हैं। इस प्रकार उनमें रहस्यवृत्ति का अभाव रहता है। रहस्य के कारण विषय वस्तु को समझने के प्रयत्न में धीरे धीरे विश्वास करने का जो सम्मोहक आनन्द हमें प्राप्त होता है उससे हमारा मस्तिष्क वंचित रह जाता है। कविता का आनन्द तभी मिलता है जबकि हमें संतोष हो कि हम उसकी वस्तु का थोड़ा थोड़ा करके अनुमान लगा रहे हैं परन्तु स्पष्टतया कथन कर देने से कविता का तीन चौथाई आनन्द नष्ट हो जाता है। हमारी मनस चेतना को वही प्रिय है, जो संकेत करता हो सचेत करता हो।" मलार्मे के इस सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार के काव्य की सर्जना हुई, उसमें कथन स्पष्ट न होकर अस्पष्ट रखा गया और प्रतीकों की बहुलता जान बूझ कर रखी गयी।

प्रतीकवाद का प्रारम्भ बोदलेयर के द्वारा हुआ था पर उसकी शैली सम्बन्धी विशेषताएं वीलियर्स (Villiers del Isle Adam) की 'एक्सेल' (Axel) नामक कृति से प्रकाश में आयी। बोदलेयर एडगर एलन पो के सौन्दर्यवाद से प्रभावित हुआ है।

प्रतीकवादी अपनी संवेदनाओं तथा भावनाओं को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करते थे अतएव इन्होंने प्रतीक योजना की विविध शैलियों का अनुवर्तन किया। इनके सिद्धान्त अन्तर्विरोधों से भरे हुए हैं। इनके अनुसार हमारी अनुभूतियाँ एक दूसरे से संश्लिष्ट, गतिशील और अग्राह्य होती हैं। इन्हें न तो ठीक ठीक शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है और न स्मरण-शक्ति के द्वारा ही स्मरण किया जा सकता है। मलार्मे के अनुसार अभिव्यंजना की यह प्रक्रिया त्वरित होती है। इतनी त्वरित कि अनुभूति और अभिव्यंजना मूलतः दो पृथक वस्तुएँ न रहकर एकमेव हो जाती हैं। इस प्रश्लिष्टता के कारण काव्य के वस्तु और शैलीगत भेद नहीं किए जा सकते। फिर प्रत्येक कवि की संवेदनाओं तथा अनुभूतियों में भी पार्थक्य रहता है अतएव उन्हें पूरे परिवेश में रूपायित करने के लिए कवि को नई शैलियों का अवलम्बन भी लेना पड़ता है। नये बिम्ब और नये प्रतीकों का बाहुल्य इसी कारण उसकी रचनाओं में हो जाता है। मलार्मे यह भी कहता है कि अनुभूत विषय अकथनीय अनुपम और त्वरित होने के कारण उसका ज्यों का त्यों प्रस्तुतीकरण असम्भव है। कवि केवल उसका संकेत भर कर सकते हैं। वे अभिव्यक्त नहीं केवल व्यंजित हो सकते हैं। इस प्रकार अन्तर्मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदनायें ध्वनियाँ, प्रतिध्वनियाँ और रहस्यपूर्ण संकेत ही उनके काव्योपादान बने और अस्पष्टता का ... गयी विशे

पता मानी जाने लगी। इन्होंने ध्वनि तथा सुगन्ध की अजीब-अजीब धारणाएँ भी व्यक्त की।

प्रतीकवादियो ने रोमांचो को अशेष महत्व दिया तथा अन्तर और बहिर्जगत की धारणाओ, भावनाओ और बौद्धिकचेतनाओ को उपेक्षित कर दिया। ये प्रकृति का प्रत्यक्ष स्वरूप मिथ्या मानते थे। वास्तविक सृष्टि उन्होंने अमूर्त और अपार्थिव मानी, अन्त जिस ससार की इन लोगो ने सृष्टि की वह हमारा जीता-जागता ससार न होकर —दुर्बलताओ विभ्रमो निराशा कुण्ठा, उदासीनता, भ्रमित दुश्चेष्टाओ का असामाजिक ससार है। ऐन्द्रिक चेतना इनकी प्रमुख वस्तु योजना है।

१८८५ ई० से लेकर १८९२ के बीच म विपुल मात्रा मे प्रतीकवादी रचनाएँ लिखी गई। इस समय अकेले पेरिस से लगभग एक सौ प्रतीकवादी पत्रिकाएँ निकलती थी जिनके माध्यम से Edourd Dugardin, Teodor de Wyzwa Remy de Gourmount आदि समीक्षक और प्रतीकवादी कवि इस आन्दोलन के मूल्यो और विशेषताओ का विज्ञापन कर रहे थे। सबसे पहले १८ सितम्बर १८८६ को 'फिगरो' नामक पत्र म प्रतीकवादी आलोचक मोरोआज ने प्रतीकवाद के उदय की उद्घोषणा की थी किन्तु आगे चलकर यह आलोचक प्रतीकवादी धारा को छोडकर शास्त्रीयता की ओर लौट गया।

प्रतीकवाद के पुरस्कर्त्ताओ मे से प्रमुख बोदलेयर के अनुसार काव्य का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नही है। नैतिकता का आग्रह काव्य शक्ति की क्षीणता का कारण होता है। काव्य काव्य के लिए है और इसके बाहर उसका कोई प्रयोजन नही है।

'Poetry has no end beyond itself, if a poet has followed a moral end he has dismissed his poetic force and the result is most likely to be end'

प्रतीकवाद का एक अन्य कवि वर्लेन ने भी काव्य में किसी भी उत्तरदायित्व का बन्धन स्वीकार नही किया है। वह निर्बाध रूप से आत्मपीडन, परपीडन आदि न्यूरोसिस के सभी लक्षणो का प्रदर्शन काव्य म करना चाहता था। इस सन्दर्भ म उसका कथन है कि स्नायु व्यतिक्रम के रोगी की भाँति मैं वयस्क जीवन के उत्तरदायित्व को अत्यन्त कठोर समझता हू और एक दूसरी बाल्यावस्था मे पलायन पसन्द करता हू।[1]

प्रतीकवादी वग्नर व सगीत से भी प्रभावित रहे हैं। इस सम्बन्ध म मलार्मे का कथन है कि काव्य एक प्रकार का सगीत ही है। वह हमारी इन्द्रिय चेतना को जागृत करता है और मन की अमूर्त तरगो को झकृत। मलार्मे एक ऐसे संगीत का

१ Literature and Psychology लूकस द्वारा उद्धत अंश

स्वप्नदर्शी था जिसके स्वर ग्रह उपग्रहों से झंकृत होकर अन्तरात्मा में सौन्दर्य–चेतना भर देते थे।

व्यक्तित्व की दृष्टि से सभी प्रतीकवादी कवि दुर्बल अप्राकृतिक, अधार्मिक, अस्वस्थ और आत्मकेंद्रित रहे हैं। वे अनैतिक कुत्सित और घृणास्पद कार्यों में भी लिप्त रहे हैं। वर्लेन के जीवन में शराब, कविता जेल, अस्पताल और दुष्टतापूर्ण कार्य ही प्रमुख थे। प्रतीकवाद के ही एक समर्थ कवि रिम्बो ने एक बार उसे अपने पूर्व आघातों का प्रतिकार लेते हुए निर्दयतापूर्वक मारपीटकर एक गड्ढे में डाल दिया था। बाल्देयर भी चरित्रहीन था। गोर्की के शब्दों में फ्रांस को वह ऐसी विषाक्त और निराशा से परिपूर्ण रचनायें दे गया जिनके कारण वह अपने जीवन काल में विक्षिप्त और मरने के पश्चात कवि कहलाया और बाद में विस्मरण कर दिया गया। 'दि माडर्न राइटर एण्ड हिज वर्ल्ड' में जी० एस० फ्रेशर ने रिम्बो और मलार्मे के प्रति अपना अभिमत देते हुए लिखा है कि 'मलार्मे की तरह वह (रिम्बो) क्या कर रहा है, इसका न तो उसे ज्ञान था और न वह जानना ही चाहता था। वह शराबी की तरह मस्त होकर अव्याहृत रूप से बोलता जाता था और उसने काव्य तथा जीवन को एक तो किया पर विभ्रम और अव्यवस्था को जन्म देकर।'

लाफोग भी प्रतीकवादी निकाय का एक प्रतिनिधि कवि था। उसकी चतुर उक्तियाँ आस्थाहीनता और वक्तमौजी एक होशियार स्कूली लड़के के समान कही गई हैं। कोर्बियर भी इसी सम्प्रदाय का एक प्रमुख कवि है। विल्सन ने उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह दिन भर सोता और रात्रि भर जीवन की अनुभूतियाँ एकत्र करता था और कविताएँ लिखता था। पेरिस में, वेश्याओं से उसकी विशेष मैत्री थी क्योंकि अपने समान वह उन्हें भी समाज से बहिष्कृत समझता था।' लाफोग और कोर्बियर दोनों तपेदिक के मरीज थे और क्रमशः २७ और ३० वर्ष में मर गये।

फ्रांसीसी काव्य में इस आन्दोलन के पूर्व भी प्रतीकों का प्रयोग हुआ था। ईसाई मत के परम्परागत प्रतीक थे किन्तु वे सरल सुगम और जन सामान्य थे किन्तु प्रतीकवादी कवियों ने अपनी रोमांचकारी अनुभूतियों की सांकेतिकता के लिए जिन प्रतीकों का प्रयोग किया वे पूर्णतः नवीन, बुद्धि विशिष्ट, दुरूह और जन निरपेक्ष थे। फल यह हुआ कि प्रतीकवाद साहित्यिक जगत से जल्दी ही मर गया। इसी प्रतीकवाद का अनुग्रहण कर हिन्दी के प्रयोगवादी कवि अग्रसर हुए थे। फलतः उनका काव्य भी बुद्धि विशिष्ट प्रतीकात्मक, अस्पष्ट रोमांचपूर्ण और अमूर्त अनुभूतियों की सांकेतिकता से भर गया और अल्प काल में ही काल कवलित हो गया।

बिम्बवाद

बिम्बवाद के प्रवर्तकों में टी० एस० ह्यूम का नाम प्रमुख है। अंग्रेजी साहित्य

में इसका प्रचलन इजरा पाउण्ड के द्वारा हुआ। टी० एस० इलियट भी इसके उन्ना यकों मे एक प्रमुख कवि रहे हैं। बाद म राड और लारेंस जसे कवि भी इस आन्दोलन मे दीक्षित हुए हैं। विम्बवाद १६०८ म एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप म प्रचलित किया गया था। पाउण्ड विम्बवादी (इमेजिस्टस) शब्द के आविष्कारक हैं। उनक अनुसार जिसके द्वारा निमिष मात्र म बौद्धिक तथा सवेदनात्मक जटिलता का प्रकाशन हो जाय, वह बिम्ब है।[1]

सम इमेजिस्टस पोयटस नीर्थन से सन १९१४ म बिम्बवादियों का पहला सकलन प्रकाशित हुआ इसम उन्होने अपन आन्दोलन से सम्बन्धित निम्नांकित मान्यताओ को उदघोषित किया—

(१) विषय का प्रत्यक्ष प्रतिपादन (डायरेक्ट ट्रीटमन्ट आफ दी सबजेक्ट)
(२) प्रस्तुतीकरण की मितव्ययता (एकोनामी आफ प्रिजेन्टशन)
(३) बिम्ब का सिद्धान्त (दि डाकट्रिन आफ दि इमज)
(४) व्यवस्थित लय प्रयोग (दि यूज आफ आर्गेनिक रिदिम)

ये लोग सामान्य भाषा और सम्यक शब्दों क प्रयोग पर विशेष बल देत थे। सम्यक शब्द से इनका आशय उस शब्द स था जिसका स्थान उसका कोई अन्य पर्यायवाची या समलकृत शब्द ग्रहण न कर सके। य कठिन किंतु स्पष्ट कविताएँ लिखन के पक्षपाती थ। सुन्दरतम और ध्वन्यात्मक होते हुए भी बिम्बवादी अनिश्चित विशेषताओ को प्रश्रय देने के पक्ष मे नही थे। नवीन लयो के निर्माण पर य विशेष जोर देते थे और उनका यह भी एक सिद्धान्त वाक्य था कि प्राचीन लयें पुराना मनोदशाओं की द्योतक हैं अतएव उनका प्रयाग कभी न किया जाय।

इन मान्यताओ के कारण विम्बवादियो की भाषा सक्षिप्त, सूक्ष्म और चित्रात्मक हो गयी है। टी० एस० इलियट के वेस्ट लण्ड म इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है पर इस प्रकार की कविताओ को लिखने म पाउण्ड तथा हिल्डा डूलिट को विशेष सफलता मिली है। य कवि क्षणिक मनोदशाओ को काव्य म व्यक्त करने की चष्टा करत रहे हैं। अल्पमात्रा मे इन पर प्रभाववादी चित्रकला का भी प्रभाव पड़ा है।

अनेक कमजोरिया क रहते हुए भी बिम्बवाद न भाषा तथा शैली के नवीन प्रयोग करके का य के रूपात्मक बन्धनो की रूढ़िग्रस्तता से मुक्त किया है। अतुकान्त तथा मुक्त छन्दो की अवतारणा की। काव्य तथा सगीत मे सामजस्य स्थापित करने

1 'An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time' —Ezra Pound
The Trend in Modern Poetry P 81

का प्रयास किया और सौंदयवाद की प्रतिष्ठा की। यह सिद्धान्त भी कला के लिए कला को मानने वाला सिद्धान्त है। यीटस, जेम्स ज्वायस, गर्ट्रड स्टीन, प्रूस्त, वेलेरी, रिल्के, ह्विटमन, एलेक्जेण्डर ब्लोक, सैंडबर्ग आदि जसे कवि भी इससे प्रभावित रहे हैं।

टी० एस० इलियट

इलियट के आरम्भिक कवि–गुरु फ्रांसीसी प्रतीकवादी कवियों में से जूल लाफोग और कौबियर रहे हैं जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में पिछले निबंध में संकेत किया जा चुका है। एडमंड विल्सन ने लिखा कौबियर को रोमांटिक कहा है जो 'उदास मन, अस्वस्थ दिमाग, तेजी से काम करता हुआ, कराहता हुआ, अश्लील मजाक करता हुआ, नम्बरी कैदियों के कपड़े पहिनकर अपने को प्रसन्न किया करता था।' लाफोग भी जीवन का अस्वस्थ पक्ष लेकर आगे बढ़ रहा था। इन दोनों के अतिरिक्त इलियट गोतिए और इजरा पाण्ड से भी प्रभावित रहे हैं। गोतिए फ्रांस के प्रमुख रोमांटिक कवियों में से एक था जिसकी विचारधारा क्षयशील और उच्छृंखलता से भरी हुई थी। इजरा पाउण्ड को एक लेखक ने 'अन्तरराष्ट्रीय आवारागर्द' की संज्ञा दी है जिसका डा० रामविलास शर्मा ने मुक्त स्वर से समर्थन किया है। दि क्रियेटिव एक्स पीरिमेन्टस में सी० एम० बावरा ने पाउण्ड के व्यक्तित्व और कृतित्व की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'निस्सदेह पाउण्ड में कोई ऐसी वस्तु है जो हमें उससे दूर ठेलती है। उसका अगाध विद्वता का दावा उसके अपने निर्देशनों से सिद्ध नहीं होता। उसकी कविता में जिस व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं, उससे सहानुभूति भी नहीं होती। उसके पद्य की गति अक्सर कानों को अप्रिय लगने वाली होती है। उसकी रचनाओं पर लड़का लड़क भड़क की छाप रहती है जो भद्दा लगती है मानो कवि सर्वज्ञ हो। उसके राजनीतिक विचार विक्षुब्ध और पाशविक होते हैं और इनसे उसे गद्दार का नाम मिला है जिससे किसी को ईर्ष्या नहीं हो सकती। (आस्था और सौन्दर्य पृष्ठ २२६ से उद्धृत)

डा० रामविलास शर्मा जी के अनुसार पाउण्ड जैसे लेखक पूँजीवादी सभ्यता की वह सड़ांद है जिन्हें इग्लैंड और अमरिका के साधारण पूँजीवादी लेखक भी सहन नहीं कर पाते। इलियट पर ऐसे ही लेखकों का प्रभाव पड़ा है जिसको गुरु मानकर हिन्दी के प्रयोगवादी कवि अग्रसर हुए हैं।

डा० शर्मा जी ने इलियट के 'वेस्ट लैंड' का भी विश्लेषण किया है और अपना मन्तव्य देते हुए लिखा है कि इलियट के स्वप्न उस पुरुषार्थहीन व्यक्ति के स्वप्न हैं जिसकी गिनती न जीवित व्यक्तियों में हो सकती है और न मृतकों में। इलियट ने बौद्धिकता की बड़ी हिमायत की है। संकेत से अपने प्रकाण्ड ज्ञान की घोषणा की है लेकिन इस

बजर प्रदेश से निकलने के लिए मिथ्या यात्राएँ करने के और कुछ टाटका के उसके पास कुछ नही है। न तो उसकी कविता पूँजीवादी समाज की विषमताओ का चित्रण करने म समथ है न उसकी बौद्धिकता, समाजवाद की ओर एक भी कदम उठाने को तयार है।" इलियट रुग्ण कल्पना का कवि है। उस लन्दन-ब्रिज पर चलते हुए सब आदमी मुर्दे लगते हैं। इस कल्पना म मानवता-विरोध के विपुल कीटाणु हैं। इस कल्पना के सहारे कही भी स्वस्थ जीवन के चिह्न दिखाई ही नहीं देते। (आस्था और सौन्दर्य, पृ० २३२)

डा० शर्मा ने यह भी प्रमाणपूवक सिद्ध कर दिया है कि इलियट के Prufrock and other Observation (1917) नामक ग्रन्थ के अनेक वाक्य हिन्दी म प्रयोग वादी कवियों के सिद्धान्त वाक्य बन हैं। यथा

And Indeed there will be time
To wonder Do I dare ?
and Do I dare ?
And in short, I was afraid
× ×
It is impossible to say
What I mean !

इलियट के वेस्ट लैंड मे विविध भाषाओं के अपरिचित सन्दभ आये हैं। क्लिष्ट सन्दभता के कारण वह ग्रन्थ दुर्बोध हो गया है। पहली बार जब पाउण्ड ने इसे काट छाट कर इलियट को दिया था तो स्वय व भी उसको नही समझ पाये थे। क्लिष्टता, अस्पष्टता और प्रतीकात्मकता इस सीमा तक है कि ग्रन्थ से अधिक पष्ठ सन्दर्भों के विश्लेषण रूप म अन्त मे जोडे गये हैं। वेस्ट लैंड का अन्त शान्ति शान्ति शान्ति इस भारतीय उपनिषद के वाक्य से होता है। यही पंक्तियाँ सम्पूर्ण कृति के खोखलेपन को एक नवीन आशा और आस्था म परिणित कर देती हैं। यह मानना पडेगा कि विविध प्राचीन भाषाओं का इलियट का गम्भीर अध्ययन था। संस्कृत के पुराण, आगम निगमो का भी उसने व्यापक रूप से पारायण किया था और व्यापक अध्ययन के आधार पर ही उसने अपने अनेक सन्दभगत प्रतीकों का चयन किया था पर परवर्ती कवियों तथा हिन्दी के प्रयोगवादियों ने जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, वे अध्ययन की विस्तत भूमिका पर आधत न होकर फशनगत रूप मे ही सर्वाधिक रूप से व्यवहृत हुए हैं।

वेस्टलैंड मे प्रथम महायुद्ध के पश्चात हारे थके, उदास, निराश यूरोपीय जीवन का खोखलापन प्रदर्शित किया गया है। आदमी किंकर्तव्यविमूढ है। कहा जायें ?

क्या करे ? वह स्वय नही जानता। इलियट इसम बिम्बात्मक शैली का प्रयोग करते हैं और एक के बाद दूसरा चित्र चल-चित्र की भाति चलता चला आता है। इनमे परस्पर कोई भी ऐतिहासिक या किसी अविवतिपूर्ण विषय वस्तु का क्रम-विधान नही है। सब कुछ अव्यवस्थित विश्रृखलित, बीच बीच म कवि विभिन्न कवियो के उद्धरण भी देता चलता है। इसम इलियट ने तिरेसियस (Tiresias) नाम का एक अद्धनारी पात्र भी उपस्थित किया है। कविता के बीच-बीच मे अनेक स्त्री-पुरुष स्वर श्रुति गोचर होते हैं जो व्यक्ति की अन्तश्चेतना के विभिन्न स्वरो के प्रतीक हैं। पूरी रचना व्यग्य प्रधान है और दृष्टिकोण विघातक है। सृजनात्मक या विधायक दृष्टिकोण यदि कुछ कहा जा सकता है तो अन्तिम पक्ति ही है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इलियट की यह कृति अग्रेजी म ही नही विश्व म चर्चा का विषय रही है और इसी कृति के आधार पर उन्हे विश्व व्यापी यश और कीर्ति भी मिली है। उनके कृतित्व की अनेक दुर्बलताएँ हैं किन्तु उन पर ध्यान न देकर यदि हम उनके नाटककार और समीक्षक-रूप पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि उन्होने साहित्यिक ससार को केवल खोखलापन ही नही दिया कुछ ठोस वस्तुयें भी दी हैं।

उन्होने एक ओर आई० ए० रिचर्ड्स के समीक्षा सिद्धान्त (मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद) की कमियो को निकालकर उसकी पृथक रूप से समीचीन व्याख्या की, दूसरी ओर कवि और कलाकार के लिए परम्परा का ज्ञान आवश्यक सिद्ध किया। उनका कथन है कि प्राचीन साहित्य के अध्ययन स परिष्कृत समीक्षात्मक सवेदनो का उद्भव होता है, साथ ही आग आने वाली पीढ़ियो की रचनात्मक प्रतिभाओ को मूल्यवान प्रेरणाएँ भी मिलती हैं—

'No poet nor artist of any art has his complete meaning alone His significance his appreciation is the appreciation of his relation to the dead poets and artists'

Selected Essay P 15

इलियट ने काव्य सर्जना के विकास म कवि व्यक्तित्व के पूर्ण विलयन या निर्वैयक्तिकता को पूर्णत अनिवार्य मानते हैं। इस सम्बन्ध म उनका कथन द्रष्टव्य है–

The progress of an artist is a continual self sacrifice, a continual extinction of personality"

Selected Essay P 17

वे अतिशय भावुकता और व्यक्तिनिष्ठता को काव्य का विघातक तत्व मानते हैं। आपके अनुसार श्रेष्ठ कवि रचना प्रक्रिया के समय अपने 'स्व' को निर्मूल्य कर उसे व्यापक समष्टि मे मिला देता है। यह सारा कार्य कवि की भावना की सुतीव्रा वस्था म सहज ही हो जाता है, कवि को कोई चेतन प्रयास नहीं करना पड़ता।

इलियट ने काव्य म बुद्धि तथा भावना के सतुलित सयोग की भी चर्चा की है। काव्य को वह सवेगो की अभिव्यक्ति न कहकर उनका पुन सृजन कहता है। आत्माभिव्यक्ति न कहकर उस 'आत्म' का उदात्तीकृत या सशोधित रूप कहता है। अपने वस्तुमूलक प्रतिरूपता (आवजेक्टिव कोरिलेटिव) सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए आपन कहा है कि आत्मगत सवेगो का अधिक से अधिक निरपेक्ष, निर्लिप्त और वस्तुमुखी चित्रण हो। सवेगो का विवरण न देकर उनका अभिनयात्मक चित्रण किया जाय, इसस पाठक की आस्वादनीयता पर कोइ कलात्मक प्रभाव नही पड़ेगा।

काव्य व्यापार को इलियट चिन्तन विशिष्ट या बुद्धि प्रसूत न मानकर रागात्मक वस्तु कहता है—

The fuction is not intellectual, but emotional

Selected Essay P 138

कविता की भाषा के लिए उसने सवेद्यता तथा अप्रस्तुतो बिम्बो प्रतीको आदि की योजना के पीछे युग की जीवित समसामयिकता का आलोक आवश्यक प्रतिपादित किया है। वह अन्योक्ति-विधान को काव्य के लिए आवश्यक वस्तु मानता है। उसके इस विचार पर फ्रास के प्रतीकवादियो का गहरा प्रभाव पड़ा है।

अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ— ह्वाट इज क्लासिक' शीर्षक निबन्ध म उसने महान कलाकार की महत्ता का निर्देशन करत हुए यह स्पष्ट विज्ञापित किया है कि वह देश काल की सम्पूर्ण चेतना का प्रतीत होता है। वतमान का उपासक होते हुए भी वह अतीत का ममज्ञ और भविष्य का स्वप्न दृष्टा होता है। उसके अनुसार महान कृतियो की रचना तभी सम्भव है जबकि एक उन्नत सभ्यता हो समृद्ध भाषा हो और स्वय कवि या कलाकार उन्नत और सवेदनशील हो।

इस प्रकार वचारिक जगत म इलियट का प्रदेय निश्चित ही मूल्यवान है। मौलिक चिन्तन के क्षेत्र मे उसे नव युग का सुकरात' कहा गया है। अग्रजी काव्य म उसके आगमन से एक युगान्तर हुआ है। किन्तु हिन्दी के प्रयोगवादियो ने उसके कृतित्व का ठोसपन ग्रहण न करके वेस्टलण्ड' का खोखलापन, दुर्बोधता सदभमयता और अस्पष्ट प्रतीकगभता ही ग्रहण की है।

अतियथार्थवाद

अतियथार्थवाद का जन्म भी अन्य विचारधाराओ के समान फ्रान्स में ही हुआ था। यहाँ के कवि और कलाकारो से प्रभावित होकर इग्लण्ड मे भी इसे प्रश्रय दिया गया। इसके उदभव और विकास के कारण पर प्रकाश डालते हुए एक प्रसिद्ध मनोवज्ञानिक समीक्षक एफ० एल० लूकस ने लिखा है कि प्रथम महायुद्ध की राजनीतिक तथा सामाजिक चहल-पहल के पश्चात फ्रास म लगभग ७० वर्ष से चले आने वाल पलायनवादी और रोमाटिक लेखको ने अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर अतियथार्थ ?

वाद को जन्म दिया। १९१६ में प्रथम महायुद्ध के काल में दादावाद का जन्म हुआ। इसमें कला तथा जीवन के प्रति पूर्णत विद्रोह की भावना थी। अपनी वैयक्तिक कुण्ठाओं और समाज निरपेक्षता के लिए यह बदनाम था। ये ही प्रवृत्तियाँ जब और अधिक उग्र हुईं तो कुछ व्यक्तियों ने दादावाद का अतिक्रमण करके १९२२ में अति यथार्थवाद की उदघोषणा कर दी।

इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए हर्बर्ट रीड ने लिखा है कि हीगल के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त के द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि जीवन और समाज का विकास किस प्रकार प्रत्येक क्षण होने वाले दो वस्तुओं के परस्पर द्वन्द्व से हो रहा है। इस द्वन्द्वात्मकता को कलायित करना ही अतियथार्थवाद है। रीड ने यह भी उद-घोषणा की कि द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के सहारे हम एक ओर अतीत की कला के विकास को समझ सकते हैं दूसरी ओर वर्तमान युग की विद्रोहिणी कला की तात्विकता भी देख सकते हैं।

अतियथार्थवाद परम्परा का विद्रोह करके चलता है और विगत चार शता-ब्दियों के साहित्य और कलाजन्य कार्यों को तो वह सामन्तवाद और पूँजीवाद का प्रतीक कह कर घृणा की दृष्टि से देखता है।

इसकी द्वितीय विशेषता यह है कि यह वाद काव्य कला को बौद्धिक बना देने का विरोध करता है। काल्पनिक तत्वों की उपस्थिति को अनिवार्य प्रतिपादित करने के कारण यह वाद कलाकार को पूर्णत स्वतन्त्र मानता है। इसका सिद्धान्त वाक्य है कि कवि या कलाकार की भावना धारा पर किसी भी प्रकार का वस्तुगत या शिल्पगत बंधन नहीं लगाया जा सकता। कला को वह कवि की संवेदनाओं और चिन्ताओं का अवरुद्ध प्रकाशन मानता है।

फिलिप सौपौल (Phillipe Saupault) तथा आन्द्रे ब्रेतन (Andre Bre ton) ने प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड के मनोविश्लेषण का विवेचन करते हुए यह उद्घोषित किया कि यदि बिना किसी सोच विचार के स्वगत (Monologue) के रूप में लगातार अटूट क्रम में व्यक्ति अपनी संवेदनाओं को शब्द रूपों में प्रस्तुत करता जाय तो इस असम्बद्ध शब्द-रचना के द्वारा उसके अवचेतन मस्तिष्क पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा। ये शब्द चित्र एक ओर भाव-बिम्ब के रूप प्रकट होंगे और दूसरी ओर व्यक्ति के अन्त जीवन के सानुकूल होंगे। वस्तुत यह फ्रायड के सम्मोहन (हिपनाटिज्म) प्रक्रिया की व्याख्या थी। इसी प्रक्रिया के अनुसार १९२१ ई० में अंग्रेजी में दि मैगनेटिक फील्ड शीर्षक रचना का प्रकाशन हुआ जिससे प्रेरणा-ग्रहण करके वहाँ अति यथार्थवाद का प्रचलन तेजी से हुआ।

फ्रांस में अतियथार्थवादी आन्दोलन का सबल अनुभूति बोदलेयर की **'बोहेम'** शीर्षक रचना की अंतिम दो पंक्तियों के द्वारा हुई। वैसे यहाँ के सभी **प्रतीकवादी**

कवि लाट्रीमेन रिम्बा मलार्मे आदि अतियथार्थवादी रचना प्रक्रिया का प्रश्रय देकर के ही चले हैं और १८७० ई० से ही यहां इस बात के स्पष्ट संकेत मिल जाते हैं। किन्तु अतियथार्थवादी शब्द का प्रयोग पहले यहां अपोलनियर से प्रभावित होकर किया गया। इसने यह शब्द एक ऐसी वस्तु के लिए प्रयुक्त किया था जो भौतिक यान्त्रिक तथा लाचन गोचर वास्तविकता के ऊपर हो। आंद्र ब्रेतन इस आन्दोलन के परिचालक रहे हैं और उनके सहयोगियों में फिलिप, शूपोल, लुई आरागां जार्नी ह्यूने रेनक्वल, ई० मेसेंस पाल ऐलुअर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इन लोगो के प्रसार और प्रचार का प्रमुख पत्र लितर स्यार था। सवप्रथम १९१९ ई० में रिवोल्यूसन सुररियलिस्त की स्थापना की गई। यही १९३० में सुररियलिज्म तथा सर्विस दला रेवाल्यूशन के रूप में परिणत हो गया।

आंद्रे ब्रेतन ने १९२४ तथा १९३० में अपने दो घोषणा-पत्रों के द्वारा अतियथार्थवाद के मौलिक सिद्धान्तों की उद्घोषणा की। उसने सवप्रथम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का अनुसरण किया। वह इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण (मटेरियलिस्टिक कन्सेप्सन आफ हिस्ट्री) प्रमुख मानता था और सामाजिक क्रांति की आवश्यकता का प्रतिपादन करता था किन्तु मार्क्स ऐंजल्स की भांति केवल आर्थिक दृष्टि बाध को जीवन विकास का प्रस्थान बिन्दु मानना वह एक भ्रांति मानता था। इस तरह एक ओर वह मार्क्सवाद का समर्थन करता है और दूसरी तरफ उसका विरोध। ह्यूने ने भी ब्रेतन के विचारों का समर्थन किया है। उसके अनुसार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसरण के द्वारा एक ओर अतियथार्थवाद का काय क्रांतिकारी कार्यों के द्वारा सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण को सामने रखकर बुजआवा का विरोध करना है और दूसरी ओर जीवन के उत्पादन और अनुत्पादन में विश्वास करना है। उसने अतियथार्थवाद की अखण्डता का भी विज्ञापन किया है कि उसका कोई अंश पृथक नहीं किया जा सकता। अपने विभिन्न काय व्यापारों को मिलाकर वह एक है और इसी संश्लिष्ट स्थिति में उसकी महत्ता है। उसने यह भी लिखा है कि लेखक के उद्देश्य को ध्यान में रखे बिना अतियथार्थवादी कविता का रसास्वादन नहीं किया जा सकता। अतियथार्थवाद के लिए व्यक्ति और कला अन्योन्याश्रित हैं अभिन्न हैं। अपनी सामाजिक मनोवृत्ति के द्वारा अतियथार्थवाद मानव की मुक्ति चाहता है और इस काय के लिए अपने समस्त साधनों का प्रयोग करता है।

इस प्रकार अतियथार्थवादी कम्युनिज्म से प्रभावित होते भी उससे अपना तत्व पृथक रखते हैं। इन दोनों के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए ज्यां पाल सार्त्र ने लिखा है कि इनका सम्बन्ध केवल बौद्धिक धरातल पर है। अतियथार्थवादी स्वतःचालित लेखन प्रक्रिया तथा सम्मोहन अवस्था विशेष को ही महत्व देकर चलते हैं। उनके अनुसार इसी प्रक्रिया के अवलम्बन द्वारा मध्यगम विकेन्द्रित हो सकता है।

अतियथार्थवादी आत्मगत तथा वस्तुगत सभी प्रकार की वस्तुओं को नष्ट करने का प्रयास करता है। जो कुछ है उस सबका विनाश करके एक महान शांति की ओर अग्रसर होना उनका लक्ष्य है। इनका मत है कि जब जन्म मरण, सुख दुःख, सत्य मिथ्या भूत-वर्तमान प्रषणीय अप्रेषणीय सभी अपना विरोधी भाव त्याग देंगे, तभी मानवता के सभी अन्तर्विरोधों का उपसंहार होगा। यह स्थिति परम होगी[1]। इसी के लिए सामाजिक क्रांतियां आयोजित की जाती हैं। अतियथार्थवाद की सामाजिक क्रांति का यही स्वरूप है। प्राचीनता कला संस्कृति आदि के उपादानों के प्रति भ्रांति करके उन्हें नष्ट करने का नारा मार्क्सवाद का भी है किन्तु विनाश के बाद निर्माण की ओर प्रत्यागत है। वर्गहीन समाज उसके अनुसार आदर्श समाज है। अतियथार्थवाद इसका केवल प्रथम विनाशवाला अंश ही ग्रहण करता है निर्माण वाला नहीं।

अतियथार्थवादी अनुभवों का चतुर्थ आयाम भी कहा जाता है जो मूलतः मानसिक विकृतियों से सम्बन्धित वस्तु है। १९२८ ई० में अतियथार्थवादियों ने जो मार्टिन चारकोट के उन्माद सम्बन्धी अन्वेषण के प्रकाशन की पचासवीं जयन्ती मनाकर उसे अपने गुट का एक समर्थ लेखक स्वीकार किया था।

१९३६ ई० लंदन में अतियथार्थवादी चित्रों की एक प्रदर्शनी की गई। इसका परिचय-पत्र सम्प्रस्तुत करते हुए हर्बर्ट रीड ने कहा कि 'इतनी अधिक अपरिचित विशेषताओं से युक्त आन्दोलन का महत्त्व समझने में असमर्थ समाचार पत्रों ने मजाक घृणा और अपमान का सेना लेकर इसका सामना किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस समय तक अतियथार्थवादी विचारधारा का प्रभाव विश्व व्यापी हो गया था और उसने कला की अन्य शाखाओं को (चित्रादि को) प्रभावित कर लिया था। इन सभी माध्यमों से अतियथार्थवादी कलाकार स्वतः चालित लेखन शैली का सहारा लेकर अपने मन की अव्यवस्थित और असंगत कल्पनाओं, स्वप्नों, दिवास्वप्नों तथा फैंटेसीज को यथावत रूप में प्रकट करना अपना धर्म मानने लगे थे।

अतियथार्थवादी कलाओं को मूलतः स्वप्न से सम्बन्धित किया गया है और स्वप्न को प्रकृति की अपरिहार्य आवाज कहा गया है जिस पर व्यक्ति की इच्छा अनिच्छा कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। यह भी कहा गया कि व्यक्ति की मूल चेतनता और वास्तविकता का आवास केन्द्र स्वप्न ही है उन्हीं के द्वारा हम उसके व्यक्तित्व और कृतित्व की यथार्थता को समझ सकते हैं। निगूढ़ भावों और संवेदनाओं की व्यंजना शक्ति केवल स्वप्न ही कर सकते है। हर्बर्ट रीड ने कला और स्वप्न की प्रक्रिया को एक कहा और परस्पर तुलना करना भी कठिन माना।

उसने यह भी माना कि यदि हम अपने स्वप्न दूसरों से कह सकें तो हम लगातार रूप से सोचकर कविता लिखा सकते हैं। यह वक्तव्य रीड ने अपने मिथ, ड्रीम एण्ड पोयम्स शीर्षक निबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। इसी बात को कुछ दूसरे

१ व्हाट इज लिटरेचर, के चतुर्थ अध्याय।

शब्दों में जार्ज ह्यूने ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है "हम जानते हैं कि अतियथार्थवादी कृतित्व पूर्णतः विचारों के स्वचालन पर आश्रित है और आत्मा स्वयं अपने अवचेतन की आवाज सुनती है। कवि या कलाकार इसे बिना किसी तर्क का आधार पहुंचाए हुए ज्यों का त्यों उतार देता है। ह्यूने का यह वक्तव्य रीड द्वारा सम्पादित सूररियलिज्म नामक कृति में अपने एक निबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

अतियथार्थवादी उत्तम काव्य रचना के लिए तंद्रा (ट्रेन्स) की अवस्था को छोड़कर और कोई मानसिक अवस्था उपयुक्त नहीं मानते। रीड ने यह स्वीकार किया है कि उनकी सभी रचनायें तंद्रा की सहज अवस्था में ही रची गई हैं।

अतियथार्थवादी यह मौलिक रूप से मानकर चलते हैं कि व्यक्ति की प्राकृतिक आवश्यकतायें किसी भी प्रकार पाप से सम्बन्धित नहीं हैं। उनका दमन करना ही विकृति का कारण है। इसीलिए उनका कथन है कि व्यक्ति की आदिम और मौलिक प्रवृत्तियों के प्रकाशन पर कोई बंधन न लगाया जाय। मौलिक वृत्तियाँ स्वयं ही प्रकाशित होकर, (एक दिन आयेगा जब तृप्त होकर) नष्ट हो जायेंगी। इसी आधार पर नैतिक मान्यताओं के वे एकदम विरुद्ध हैं। उनका यह बद्धमूल विश्वास है कि आधुनिक युग में नैतिकता एक भ्रम यापना वस्तु है।

अतियथार्थवाद कविता की प्रयोगात्मक शक्ति पर भी अमित बल देता है और वह सृजन के किसी भी रूप को तब तक विकृत नहीं मानता जब तक कि वह कलाकार के आत्म प्रकाशन में बाधक न हो। आत्म प्रकाशन से तात्पर्य यहाँ कलाकार के व्यक्तित्व में निहित अन्तर्विरोधों के स्थापन से है। इन अन्तर्विरोधों का ही यथावत चित्रण अतियथार्थवाद की मौलिक बात है। इन अन्तर्विरोधों का सामंजस्य कलाकार अपने कल्पना लोक में करता है। इस तरह अतियथार्थवाद में एकान्त काल्पनिक पक्षों की प्रमुखता हो जाती है। इस कार्य की सम्पन्नता के लिए वह प्रचलित मिथ्स का भी सहारा लेता है जो सृजन कार्य तथा अभिव्यंजना में साधक होती है। यही कारण है कि अतियथार्थवादी काव्य में स्थानीय अवदान मालाओं (मिथ्स) की प्रचुरता मिलती है।

अतियथार्थवाद को हर्बर्ट रीड ने कला के क्षेत्र में रोमांटिक सिद्धान्त कहा है। डेवीज इसका पूर्ण समर्थन करते हैं। डेवीज का यह भी कथन है कि वस्तुतः यह आन्दोलन इंग्लैण्ड में फ्रांस से न आकर यहीं जन्मा और विकसित हुआ है। ह्यू साइक्स डेवीज का इस प्रसंग में स्पष्ट कथन है कि इंग्लैण्ड का १९वीं शताब्दी का स्वच्छन्दतावाद ही बीसवीं शताब्दी की परिस्थितियों और मनःस्थितियों के अनुसार अतियथार्थवाद में ढल गया। उन्होंने लिखा है कि अतियथार्थवाद ऐतिहासिक शक्तियों द्वारा स्वभावतः एवं अनिवार्यरूपेण यहीं पर उद्भूत हुआ। यह प्रेरित नहीं हुआ किया गया है। यह सहसा किसी दैवी प्रकाश से उत्पन्न नहीं हुआ वरन अन्य सभी

मूल्यवान आन्दोलनों की भांति इन समस्याओं के एक निश्चित स्पष्टीकरणों के द्वारा जन्मा है जो हम एतिहासिक क्रम से उस संस्कृति द्वारा प्राप्त हुई हैं, जिसमें हम पैदा हुए हैं 'हिन्दी म प्रयोगवादी भी अपने को बहुत कुछ अप्रभावित कहकर यहीं की परिस्थितियों से उद्भूत रोमांटिक काव्य चेतना का अग्रदूत कहते हैं। किन्तु जिस प्रकार इंग्लैण्ड म यह विचारधारा फ्रेंच से आई, तद्वत हिन्दी म भी यह वहीं की वस्तु है। अंग्रेजी म इसे पहले सुपर रियलिज्म कहा गया किन्तु जो शब्द प्रचलित हुआ वह फ्रांसीसी 'सुरीयलिज्म' ही है, यद्यपि अतियथार्थवादी आन्दोलन की प्राय सभी विशेषताएँ 'सुपर रियलिज्म' पद के द्वारा ही व्यक्त होती हैं। मूलत प्रेरणा फ्रांस की ही रही है इंग्लैण्ड की कतिपय परिस्थितियों का समान वातावरण पाकर वे वहां पल्लवित जल्दी हो गईं। पर भारत म जिस नकेनवाद' पर अतियथार्थवाद का गहरा प्रभाव पड़ा उसे पल्लवित होने के लिए अनुकूल परिस्थितियों का अभाव ही रहा है इसीलिए उसम क्षणिकता रही है। हिन्दी काव्य म यह एक उन्माद था जो आंधी की भांति आया और वैसा ही चलता बना।

अतियथार्थवाद की दुर्बलताओं को स्पष्ट करने के पूर्व हम एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे अतियथार्थवाद का सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही रूपों म देखा जा सके। जो कविता म यहां उद्धृत कर रहा हू उसे जार्फ्रेय ने अपनी ट्रेंड्स आफ माडर्न पोयट्री म उद्धृत की है। कविता इस प्रकार है—

'There is an explosion of geraniums
in the ballroom of the hate !
There is an extremely unpleasant odour
of decaying meat
arising from the depetalled flower
growing out of her ear
her arms are like pieces of sand paper
or wings of leprous birds in taxis
and where she sings her hair stands on end
and lights itself with a mill on
Little lamps like glow-worms
You must always write the last
two letters of her christian name
Upside down with a blew pencil'
—Gascoyne's—And the
Seventh Dream in the Dream of Isis"

इस कविता में शुद्ध मानसिक स्वचालित (प्योर साइकिक आटोमेटिज्म) शैली का प्रयोग किया गया है और कवि का लक्ष्य है अवचेतन में छिपी हुई विकृतियों को प्रस्तुत करना तथा असम्बंधित बिम्ब योजना द्वारा पाठकों को आतंकित करना।

इस प्रकार की रचनाओं का इंग्लैंड में सबसे पहले बड़ा विरोध किया गया। विरोधकर्ता थे प्रीस्टले। आरम्भिक अवस्था में अतियथार्थवादी रचनाओं का यहाँ घृणा, उपेक्षा आदि की दृष्टि से देखा गया जिसकी चर्चा स्वयं हर्बर्ट रीड ने की है। उनके कथन को हम पहले उद्धृत कर आये हैं। स्वचालित लेखन, लोक कथाओं तथा प्रचलित अवधारणा का सहारा लेने के कारण अतियथार्थवादी रचनाएँ स्वयं में अवस्थित हो गई हैं। उन्हें पढ़कर पाठक के हृदय पर कोई समाहित प्रभाव नहीं पड़ता। किसी विशिष्ट और अन्वितिपूर्ण संवेदना भी जागृत नहीं होती। बिम्ब योजना इतनी क्लिष्ट स्थायी है कि उसमें किसी मूर्त वस्तु की कल्पना असम्भव नहीं तो कष्ट साध्य और बौद्धिक अवश्य हो जाती है। डाली ग्लासर ने अपनी बिम्ब योजना की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'मैं अपनी कल्पना में एक सरलात्मक बिम्ब उत्पन्न देता हूँ (यह बिम्ब अंतश्चेतना से सवेग की तीव्रता के कारण उठता है) इस उग विवेक पर परखता हूँ। इस प्रकार एक के पश्चात दूसरा, तीसरा, बिम्ब बनता और मिटता जाता है। मेरी रचनाओं में छोटे छोटे बिम्ब किसी एक के द्वारा बिम्ब के चारों ओर नहीं घूमते अपितु एक के बाद दूसरे बिम्ब में परिणत होते रहते हैं। एक बिम्ब और दूसरे बिम्ब में निर्माण पुनर्निर्माण और विनाश तथा विरोध का सम्बन्ध होता है।' बिम्ब योजना की यह निर्माणात्मक प्रक्रिया अस्पष्टता और अव्यवस्था की जननी सिद्ध हुई है। इस प्रकार अतियथार्थवादियों ने कला के क्षेत्र में अराजकता को प्रश्रय दिया है। इसी कारण ये न तो लोकप्रियता प्राप्त कर सके हैं और न समाज में श्रद्धा सम्मान और स्थायित्व ही अर्जित कर सके हैं। इनके चित्र और संवेदनाएँ अस्पष्ट और दुर्बोध होने के कारण साधारणीकरण का स्तर भी प्राप्त नहीं कर सकी हैं।

अतियथार्थवादी मस्तिष्क के बाह्य प्रकाशित भाग को अव्यवस्था का ठोस रूप कहते हैं। इस प्रकार मूलतः यह आन्दोलन काव्य में क्रमबद्धता का विरोध करके उसके स्थान पर अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला आन्दोलन रहा है। प्राचीन और परम्परागत वस्तुओं के उन्मूलन का भी अतियथार्थवादी नारा लगाकर चले हैं। यह भी उनका विद्रोही कार्य है। समाज के मान्य नियमों, रीतियों, नीतियों और नैतिक प्रतिमानों में भी इन्हें कोई आस्था नहीं यह तथ्य भी उनकी अराजकतावादी मनोवृत्ति का द्योतक है।

कविता का स्वप्न से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ना भी अतिशयोक्तिपूर्ण कार्य है। ईषत मात्रा में भले ही स्वप्न काव्य प्रेरणा का कारण हो जाय पर यह एक सार्वत्रिक सत्य नहीं है। कालरिज को 'कुबला खाँ' की रचना करने के लिए प्रेरणा स्वप्न लोक

१

स मिली थी पर सभी कवि तो स्वप्न से ही प्रेरणायें ग्रहण नहीं करते। इसी प्रकार तन्द्रा की अवस्था विशेष में की गई रचनायें कवि की वैयक्तिक मन स्थितियों की ही अभिव्यंजना करेंगी, सामाजिक दृष्टि से वे स्वस्थ और उदात्त हों, यह आवश्यक नहीं है। मूलत यह अतिवैयक्तिक प्रयास है। अतियथार्थवादी आन्दोलन एक गुट तक ही सीमित रहा है और अंग्रेजी के अतियथार्थवादी कवियों की रचनाएँ दि न्यू एपाक्लोप्स (The New Apocalypse) के नाम से १८३९ तथा १९४१ में उसी प्रकार से आई हैं जिस प्रकार हिन्दी में प्रयोगवादी कवियों के 'तार सप्तक' आये हैं।

अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद यूरोपीय जगत की एक अत्याधुनिक साहित्यिक प्रवृत्ति और दार्शनिक विचारधारा है। इसके आरम्भिक स्रोत हम जर्मन दार्शनिक हुसरल और हैडेगर तथा डेनिश चिन्तक कीर्कगार्ड (१८१३–१८५५ ई०) की चिन्तना धारा में दिखाई देते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में सबसे पहले इसका अवतरण फ्रांस में ज्यां पाल सार्त्र (१९०५ ई०) ने किया। १९४३ ई० के आस-पास अस्तित्ववाद एक आन्दोलन के रूप में प्रचलित हुआ।

यह भी एक भौतिक और निरीश्वरवादी सिद्धान्त है। इसके अनुसार मानव जीवन निरुपाय अवश और निरर्थक है। उसमें यदि कोई वस्तु मूल्यवान है तो वह क्षण है। प्रत्येक क्षण ही अतुलनीय है। जब मनुष्य पूर्णत विवश और यत्नहीन हो जाता है तभी उसके जीवन में वास्तविक अस्तित्व का बोध प्रारम्भ होता है और इस निरुपायता को नष्ट करने के लिए अस्तित्ववाद मानवीय स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थन करता है।

इसका सिद्धान्त वाक्य है Existence preceeds essence' अर्थात् अस्तित्व स्थिति तत्त्व के पूर्व रहता है। यहाँ अस्तित्व से तात्पर्य मानवीय कर्म समूह है जो निरुपायता की स्थिति के बोधक हैं और तत्त्व उसकी मौलिक प्रकृति के बोध के लिए आया है। अस्तित्ववाद की और भी कई परिभाषायें प्रस्तुत की गई हैं। यहाँ हम उनमें से दो तीन उद्धृत कर रहे हैं ताकि इस वाद का मूल स्वरूप अच्छी तरह से समझ लिया जा सके।

जूलियन बेन्द्रा के अनुसार अस्तित्ववाद भाव तथा विचार के प्रति जीवन का विद्रोह है। एमानुएल मौनियर की दृष्टि से भावों और वस्तुओं के अतिवादी दर्शन के विरोध में मानवीय दर्शन ही अस्तित्ववाद है। एलेन अस्तित्ववाद को परम्परागत दर्शन की दृष्टि न कहकर अभिनेता की दृष्टि कहता है। इसका आशय यह है कि अस्तित्ववाद में जीवन की समस्याओं पर विचार भुक्त-भोगियों की ओर से होता है।

अस्तित्ववादी यह मान कर चलते हैं कि व्यक्ति के कारण उसके जीवन को

सबसे बडी चुनौती मत्यु है। जन्म के साथ उसका भी जन्म हो जाता है। मनुष्य उसका कुछ भी नही कर सकता। मनुष्य उसके सम्मुख लचर और प्रयासहीन है अतएव मत्यु और जन्म के बीच के अल्प काल म ही वह अपने जीवन को एक पूण मूल्य प्रदान करने की चेष्टा करता है। मत्यु कब आ जाय इसका भी तो कोई ठिकाना नहीं अतएव जीवन के प्रत्येक क्षण को चरम मानकर उसका आस्वादन करना उसका सलक्ष्य हो जाता है।

जीवन को पूण मल्य प्रदान क प्रश्न को लेकर अस्तित्ववादी २–३ भागो म विभक्त हो गये हैं। एक वग है जो ईश्वर म निष्ठ रखने वाला है और मानवीय जीवन को उसके साथ एकाकार करके जीवन की चरम रम्यता प्रतिपादित करता है। किर्कगाड, यास्पस आदि इसी वग के प्रतिनिधि अस्तित्ववादी हैं। उनके इस मत को क्रिश्चियन अस्तित्ववाद कहा जाता है। Existentialism from within' म एलेन न इसकी विस्तत याख्या की है।

दूसरा वग ईश्वर म आस्था नही रखता। वह पूणत निरीश्वरवादी है। इसका प्रतिनिधित्व सात्र करत हैं। इसकी व्याख्या उन्होंने व्हाट इज लिटरेचर म ता की ही है, उनका समग्र साहित्य इसका भाष्य है।

अस्तित्ववाद का एक पक्ष वह है जो राजनीति स सम्बद्ध रहता है। स्वय सात्र अस्तित्ववाद के राजनीतिक मन्तव्य के प्रति स्पष्ट नही हैं किंतु इसकी विस्तत याख्या अल्बर्ट कमु अपनी अपनी सुख्यात कृति ल होमे रिवोल्त म प्रस्तुत की है।

अस्तित्ववाद का स्वरूप समझन के लिए यहा हम सक्षेप म सात्र के साहित्यिक काय पर एक दृष्टिपात करेंगे। वे एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार है। उनके प्रबुद्ध व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण उन्हें १९६४ का नोबिल पुरस्कार भी दिया गया किंतु इसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। एक अच्छे उपन्यासकार क साथ-साथ वे कहानीकार और नाटककार भी हैं। मौलिक रूप स वे प्रज्ञावान चिंतक तो है ही। कुछ समय तक सम्पादक और अध्यापन काय भी करते रहे हैं। आपके नाटको मे इन कमरा 'द फ्लाइज' रिसपेक्टेबिल प्रास्टीटूट, 'लूसीफर एण्ड दि लाड इन दि मेस कीन आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। दि रोड टू फ्रीडम आपकी प्रसिद्ध उप यास माला है। इसमे आपने १९३८ से ४० तक की फ्रास की पतितावस्था का चित्रण किया है। 'इटमेसी आपकी बहुचर्चित कहानियो का सग्रह है।

आपके साहित्य म जितने भी पात्र आये हैं वे सभी लगभग एकाकी निष्क्रिय जड हारे थके उदास-हताश हैं। सात्र ने मानव प्रकृति को मौलिक, आदिम और पाशविक रूप मे अकित किया है। आपकी शली यथायवादी है जो प्रकृतवादियो से मिलती जुलती है। प्रकृत शैली का अनुसरण करने के कारण सार्त्र अपन साहित्य म

यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण किया है। इस क्षेत्र में वे मनुष्य और पशु के बीच कोई अन्तर नहीं रखते। आपके लिए ये सारी मूल प्रवृत्तियां अतियथार्थवादी कवियों की तरह ही जीवन की प्रकृत आवश्यकतायें हैं जिन पर किसी प्रकार का नियमन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सार्त्र पात्रों के चेतन नहीं अचेतन मन का चित्रण क्रम बद्ध रूप से करते हैं। यह क्रमबद्धता इतनी विशृंखल और अव्यवस्थित होती है कि पाठक उसे समझ ही नहीं पाता। कहीं एक वाक्य पेरिस से सम्बंधित है तो दूसरा म्यूनिख से तीसरा अन्य किसी स्थान से। उनके कथन कथा पुंजों में वृत्ताकार होते हैं। चित्रपट या फ्लैशबैक शिल्प योजना और जेम्स ज्वाइस के अन्तकथन की पद्धति का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। आप निरन्तर उपमाओं से खचित चित्रात्मक गद्य भाषा का प्रयोग करते है। यहां उदाहरण रूप में आपकी भाषा का कुछ अनुवाद रूप दिया जा रहा है—

'ऊपर निर्जन स्टेशन एक बड़े श्यामल बुलबुले के समान था, धूल और धुए से भरा शराब और पसीने की गन्ध और चमकती रेल की पटरियों से भरा।'

यह यथार्थ है कि जिस चित्रफलक को लेकर सार्त्र चले हैं वह विस्तृत और बहुरंगी होता है उदासी और निराशा की उसमें गहरी कालिमा रहती है। वस्तुतः दो महायुद्धों के बीच के जीवन को वे अपने साहित्य में रूपायित करने की चेष्टा करते हैं।

आपके सभी पात्र शतरंज के मुहरों की भांति ही शिकंजों में ग्रस्त हैं जिनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। इन्टीमसी शीर्षक कहानी की नायिका इसी प्रकार की है। आपका पात्र मैथ्यू आपके संघर्षमय जीवन का पूरा पूरा प्रतिरूप माना गया है। सार्त्र की ही तरह उसका भी जन्म १८०५ में पेरिस में होता है। सार्त्र की ही भांति उसके भी माता पिता प्रोटेस्टेंट हैं और शिक्षा दीक्षा भी पेरिस में ही होती है। सार्त्र की तरह ही वह भी वहीं पर दर्शन का प्रोफेसर नियुक्त होता है और द्वितीय महायुद्ध के आतप से तपकर वह बाहर निकलता है। मैथ्यू सार्त्र की ही भांति इधर उधर भटकने वाला असहाय दुर्बल और उदासी के वातावरण से भरपूर है। भूलों, भटकावों, भटकाओं में रहते हुए भी सार्त्र अपने जीवन में प्रगतिशील शक्तियों का साथ देते हैं किंतु मानवीय जीवन और समाज का तटस्थ चित्रण होने के कारण सार्त्र की कृतियों में विचित्र अवसाद और असहायता का चित्रण मिलता है। स्वयं मैथ्यू अनिश्चित अन्तर्द्वन्द्वमय अधकचरा है। उसका आधा जीवन यों ही बीत जाता है और अमानवता के अनेक रोगों से वह उत्पीड़ित है। वह स्वयं सोचता है कि वह मनुष्य के समान दिखता है या नहीं? यह अवसाद की चरम सीमा है। जीवन के विषय में सार्त्र इन्टीमेसी कहानी में अपने विचार प्रगट करते हुए कहता है 'कि बाढ़ तुम्हें बहा ले जाती है। यही जीवन है। हम न समझते हैं न निर्णय दे सकते हैं। केवल बह सकते हैं।"

सबसे बडी चुनौती मृत्यु है। जन्म के साथ उसका भी जन्म हो जाता है। मनुष्य उसका कुछ भी नही कर सकता। मनुष्य उसके सम्मुख लचर और प्रयासहीन है अतएव मृत्यु और जन्म के बीच के अल्प काल में ही वह अपने जीवन को एक पूर्ण मूल्य प्रदान करने की चेष्टा करता है। मृत्यु कब आ जाय, इसका भी तो कोई ठिकाना नहीं, अतएव जीवन के प्रत्येक क्षण को चरम मानकर उसका आस्वादन करना उसका सम्भव हो जाता है।

जीवन का पूर्ण मूल्य प्रदान के प्रश्न को लेकर अस्तित्ववादी २–३ भागो में विभक्त हो गये हैं। एक वर्ग है जो ईश्वर में निष्ठ रखने वाला है और मानवीय जीवन को उसके साथ एकाकार करके जीवन की चरम स्थापना प्रतिपादित करता है। किर्कगार्ड यास्पर्स आदि इसी वर्ग के प्रतिनिधि अस्तित्ववादी हैं। उनके इस मत को क्रिश्चियन अस्तित्ववाद कहा जाता है। Existentialism from within' में एलेन ने इसकी विस्तृत व्याख्या की है।

दूसरा वर्ग ईश्वर में आस्था नही रखता। वह पूर्णत निरीश्वरवादी है। इसका प्रतिनिधित्व सार्त्र करते हैं। इसकी व्याख्या उन्होंने ह्वाट इज लिटरेचर में तो की ही है, उनका समस्त साहित्य इसका भाष्य है।

अस्तित्ववाद का एक पक्ष वह है जो राजनीति से सम्बद्ध रहता है। स्वयं सार्त्र अस्तित्ववाद के राजनीतिक मन्तव्य के प्रति स्पष्ट नहीं हैं किन्तु इसकी विस्तृत व्याख्या अल्बर्ट कैमुअयु ने अपनी सुख्यात कृति ल होमे रिवाल्ते में प्रस्तुत की है।

अस्तित्ववाद का स्वरूप समझने के लिए यहाँ हम संक्षेप में सार्त्र के साहित्यिक कार्य पर एक दृष्टिपात करेंगे। वे एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। उनके प्रबुद्ध व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण उन्हें १९६४ का नोबिल पुरस्कार भी दिया गया किंतु इसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। एक अच्छे उपन्यासकार के साथ-साथ वे कहानीकार और नाटककार भी हैं। मौलिक रूप से वे प्रभावान चिंतक तो हैं ही। कुछ समय तक सम्पादक और अध्यापन कार्य भी करते रहे हैं। आपके नाटकों में इन कैमरा, 'द फ्लाइज' रिसपेक्टेबिल' प्रास्टीट्यूट, 'लूसीफर एण्ड द लार्ड इन दि मेस कीन आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। दि रोड टू फ्रीडम' आपकी प्रसिद्ध उपन्यास माला है। इसमें आपने १९३८ से ४० तक की फ्रांस की पतितावस्था का चित्रण किया है। इंटमेसी आपकी बहुचर्चित कहानियों का संग्रह है।

आपके साहित्य में जितने भी पात्र आये हैं वे सभी लगभग एकाकी, निष्क्रिय जड हार थके, उदास-हताश हैं। सार्त्र ने मानव प्रकृति को मौलिक, आदिम और पाशविक रूप में अंकित किया है। आपकी शैली यथार्थवादी है जो प्रकृतवादियो से मिलती जुलती है। प्रकृत शैली का अनुसरण करने के कारण सार्त्र अपने साहित्य में

यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण किया है। इस क्षेत्र में वे मनुष्य और पशु के बीच कोई अन्तर नहीं रखते। आपके लिए ये सारी मूल प्रवृत्तियां अतियथार्थवादी कवियों की तरह ही जीवन की प्रकृत आवश्यकतायें हैं जिन पर किसी प्रकार का नियमन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सार्त्र पात्रों के चेतन नहीं अचेतन मन का चित्रण क्रम बद्ध रूप से करते हैं। यह क्रमबद्धता इतनी विशृंखल और अव्यवस्थित होती है कि पाठक उसे समझ ही नहीं पाता। कहीं एक वाक्य पेरिस से सम्बंधित है तो दूसरा म्यूनिख से, तीसरा अन्य किसी स्थान से। इनके कथन कथापूजा में बहुतायत होते हैं। चित्रपट या फ्लेशबेक शिल्प योजना और जेम्स ज्वाइस के अन्तःकथन की पद्धति का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। आप निरन्तर उपमाओं से खचित चित्रात्मक गद्य भाषा का प्रयोग करते हैं। यहां उदाहरण रूप में आपकी भाषा का कुछ अनुवाद रूप दिया जा रहा है—

ऊपर निजन स्टेशन एक बड़े श्यामल बुलबुले के समान था, धूल और धुएँ से भरा, शराब और पसीने की गंध और चमकती रेल की पटरियों से भरा।'

यह यथार्थ है कि जिस चित्रफलक को लेकर सार्त्र चले हैं वह विस्तृत और बहुरंगा होता है उदासी और निराशा की उसमें गहरी नीलिमा रहती है। वस्तुतः दो महायुद्धों के बीच के जीवन को वे अपने साहित्य में रूपायित करने की चेष्टा करते हैं।

आपके सभी पात्र शतरंज के मुहरों की भांति ही शिकंजों में ग्रस्त हैं जिनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। इंटीमसी शीर्षक कहानी की नायिका इसी प्रकार की है। आपका पात्र मैथ्यू आपके संघर्षमय जीवन का पूरा पूरा प्रतिरूप माना गया है। सार्त्र की ही तरह उसका भी जन्म १६०५ में पेरिस में होता है। सार्त्र की ही भांति उसके भी माता पिता मर चुके हैं और शिक्षा दीक्षा भी पेरिस में ही होती है। सार्त्र की तरह ही वह भी वहीं पर दर्शन का प्रोफेसर नियुक्त होता है और द्वितीय महायुद्ध के आतप से तपकर वह बाहर निकलता है। मैथ्यू सार्त्र की ही भांति इधर उधर भटकने वाला, असहाय दुर्बल और उदासी के वातावरण से भरपूर है। भूला, अटकाया भटकाओं में रहते हुए भी मात्र अपने जीवन में प्रगतिशील शक्तियों का साथ देते हैं किन्तु मानवीय जीवन और समाज का तटस्थ चित्रण होने के कारण सार्त्र की दुनिया में विचित्र अवसाद और असहायता का चित्रण मिलता है। स्वयं मैथ्यू अनिश्चित अन्तर्द्वन्द्वमय अधकचरा है। उसका आधा जीवन यों ही बीत जाता है और अमानवता के अनेक रोगों से वह उत्पीड़ित है। वह स्वयं सोचता है कि वह मनुष्य के समान दिखता है या नहीं? यह अवसाद की चरम सीमा है। जीवन के विषय में सार्त्र 'इंटीमेसी' कहानी में अपने विचार प्रगट करते हुए कहता है कि वह तुम्हें बहा ले जाती है। यही जीवन है। हम न समझते हैं न निर्णय दे सकते हैं। केवल वह सकते हैं।

इस प्रकार के वक्तव्य मानवीय शक्ति का हनन करते हैं, उसके ग
िराते हैं। व्यक्ति की असमर्थता बताते हैं तथा उससे पलायन सिखाते हैं।
को इसके बदले क्या देना था। आज उन्मादक कलाकार के रूप में प्रकट न ह
जारियों, विकृतियों और जीवन की दुर्बलताओं के समाचार हैं इसलिए एक
समीक्षक ने उसके साहित्य को रुग्णता का साहित्य कहा है। इसा साहि
जन को प्रेरणा न मिलकर उसमें विरक्ति की भावनाओं की जागृति हो। य
नाम पर जीवन की विरूपता का यह चित्रण साहित्य का नित्य लक्षण नहीं
सकता। अस्तित्ववाद का इसी आधार पर अनेक समीक्षकों ने विरोध किया